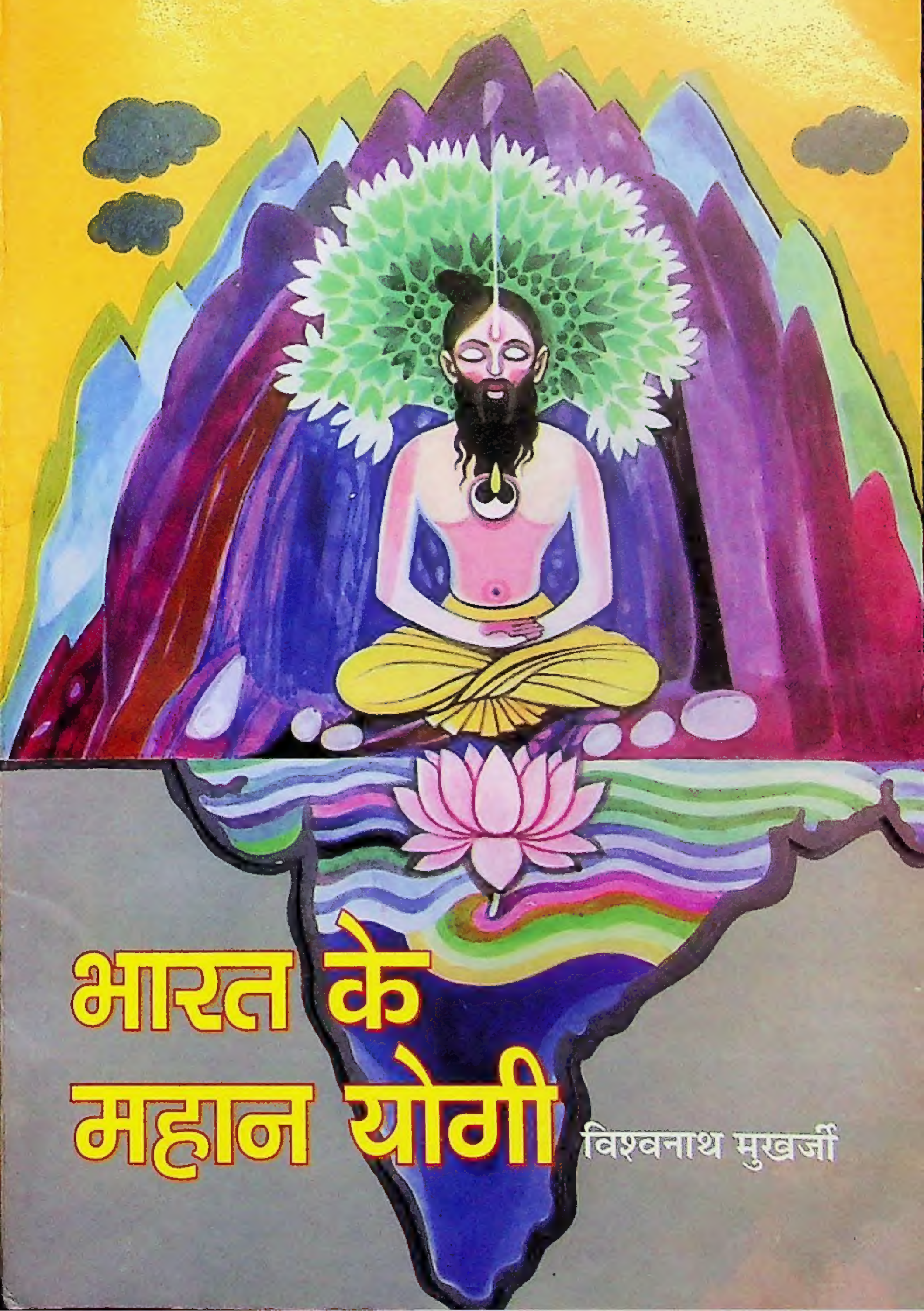
खण्ड : एक-दो



भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

भारत के महान् योगी

प्रथम तथा द्वितीय खण्ड

विश्वनाथ मुखर्जी

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

BHĀRATA KE MAHĀNA YOGĪ
(Part 1-2)
[*Category* : Spiritual Biography]
by
Vishwanath Mukherjee

ISBN : 978-81-89498-98-6

संस्करण : 2019 ई०
[Edition : 2019]

Publisher	*प्रकाशक*
ANURAG PRAKASHAN	**अनुराग प्रकाशन**
Chowk, Varanasi - 221001	चौक, वाराणसी–221 001
[U.P. INDIA]	[उत्तर प्रदेश, भारत]

Phone & Fax : (0542) 2404282
E-mail : sales@vvpbooks.com • vvpbooks@gmail.com
Shop at : www.vvpbooks.com

मुद्रक
वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०
चौक, वाराणसी–221 001

माननीय सत्यनारायण मोदी
को
सादर

अपनी बात

भारतवर्ष योगियों-सन्तों का देश है। अनादिकाल से न जाने कितने महात्मा परमब्रह्म परमात्मा के दर्शन तथा मोक्ष के लिए साधना करते आ रहे हैं। वास्तविक योगी या संन्यासी वही व्यक्ति होते हैं जो कर्मफल की चिन्ता नहीं करते। गीता में इस सम्बन्ध में श्रीकृष्ण ने कहा है—

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥

किसी देश या जाति की कसौटी उसकी आध्यात्मिकता और बौद्धिक स्वरूप होती है। इस दिशा में भारत कितना समृद्ध है, इसका प्रमाण वेद, उपनिषद्, पुराण और ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों के निर्माता ऋषि-मुनि थे जो हमारे पूर्वज थे। इन ग्रन्थों के निर्माण में उनका कोई स्वार्थ नहीं था। वे मानव जाति के कल्याण के लिए लिखते रहे। महाभारत में व्यासजी ने लिखा है—

''मनुष्यलोके यच्छ्रेयः परं मन्ये युधिष्ठिर।''

इसी मनुष्य लोक या जीवन में जो कल्याण है, उसे ही हम श्रेष्ठ या अच्छा समझते हैं (वनपर्व १८३/८८)। यही भारतीय संस्कृति की विशेषता है जिसका प्रचार महर्षि अगस्त से लेकर रामतीर्थ स्वामी तक विदेशों में करते रहे। हमने अपना विचार किसी पर लादा नहीं और न बल प्रयोग करके अनुयायी बनने को बाध्य किया। जिन लोगों ने भारतीय संस्कृति को परखा, अपने अनुकूल पाया, वे स्वतः आकृष्ट हुए। ऐसे ही सन्तों का जीवन विवरण लिखने का प्रयास किया है। इसमें कितनी सफलता मिली है, इसका निर्णय पाठक करेंगे।

इस ग्रन्थ को लिखने में अनेक ग्रन्थों से सहायता ली गयी है। केवल यही नहीं, उन सन्तों की जन्मभूमि की यात्रा भी करनी पड़ी है। उनके शिष्यों और भक्तों से अनेक विवरण प्राप्त हुए हैं। ऐसे लोगों के प्रति सश्रद्ध कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

योगियों की जीवनी लिखते समय केवल योग विभूति पर नहीं बल्कि उनके दर्शन तथा विचारों पर भी प्रकाश डाला गया है। योग क्या है, धर्म क्या है, इस सम्बन्ध में उनके विचारों को स्थान देने का प्रयास किया गया है ताकि पाठकों को इस सम्बन्ध में जानकारी मिल जाय।

प्रथम संस्करण समाप्त होने पर यह निश्चय किया गया कि पूर्व प्रकाशित दो पुस्तकों को एक भाग में प्रकाशित किया जाय। इसकी शुरुआत ७-८ भाग से की गयी है। आगे इस शृंखला में ३-४ तथा ५-६ भागों को दो खण्डों में प्रकाशित किया जायेगा ताकि पाठकों पर आर्थिक बोझ न पड़े।

अन्त में उपनिषद् के उस वाक्य को कहना पसन्द करूँगा जो इस चराचर जगत् के लिए सत्य है—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

—लेखक

अनुक्रमणिका

१

तन्त्राचार्य सर्वानन्द

त्रिपुरा जिले का एक छोटा-सा जनपद जिसका नाम है—मेहार। इस जनपद के जमींदार थे—श्री जटाधर। थे तो जमींदार, पर चालचलन, रोबदाब बादशाहों की तरह रखते थे। नित्य दरबार लगाते थे। पार्षदों से शासन के बारे में विचार-विमर्श करते थे। पण्डित मण्डली में शास्त्रार्थ कराते थे।

उन दिनों सुदूर दिल्ली में लोदी-वंश का शासन समाप्त हो गया था और अब सैयद-वंश के बादशाह मुबारकशाह सिंहासन पर विराजमान थे। भारत का शासन अस्थिर था। जगह-जगह स्वतन्त्र राज्य उभर रहे थे।

१४ जनवरी, सन् १४२६ ई. के दिन मकरसंक्रान्ति थी। शुक्रवार और अमावस्या तिथि थी।[१] दास-वंश के कुलदीपक जटाधर दरबार में आये तो देखा—सभी लोग आ गये हैं, पर सभा-पण्डित बाणेश्वर भट्टाचार्य नहीं आये हैं। कारण पूछने पर पण्डितों ने बताया कि आ रहे होंगे। शम्भुनाथ भट्टाचार्य के प्रथम पुत्र बाणेश्वर भट्टाचार्य अपने युग के असाधारण पण्डित थे। उन्हें पण्डित समाज ने 'आगमाचार्य' की उपाधि दी थी।

आगमाचार्य के स्थान पर उनके छोटे भाई सर्वानन्द को आते देख जटाधर के भौंहों पर बल पड़ गये। मेहार का बच्चा-बच्चा जानता है कि सर्वानन्द की तरह मूढ़ व्यक्ति शायद ही कोई हो। इतने महान् पण्डित-वंश में ऐसी जड़बुद्धि वाला बालक न जाने कैसे पैदा हो गया?

जटाधर ने पूछा—"आगमाचार्य कहाँ रह गये?"

सर्वानन्द ने कहा—"आज भाई साहब नहीं आ सकेंगे। यही कहने के लिए उन्होंने मुझे भेजा है।"

पार्षदों में से किसी ने पूछा—"क्या उनके स्थान पर आज का कार्य तुम करोगे?"

घर से चलते समय बड़े भाई ने चेतावनी दी थी कि दरबार में अधिक देर मत रुकना और न बात करना। पता नहीं क्या कह बैठो। दूसरे हमारे जटाधर महाराज

---

१. सर जान वुडरफ ने अपनी कृति 'शक्ति एण्ड शाक्त' में यही लिखा है। ज्योतिष-गणना के अनुसार यही सही तिथि है।

स्वभाव के क्रोधी हैं। न जाने क्या कर बैठें। उनके कारण अपनी गृहस्थी चलती है। न हो, साथ में शिवनाथ को लेते जाओ। बच्चा साथ रहेगा तो जल्द वापस आ जाओगे।

मनुष्य सोचता कुछ है और ईश्वर कभी-कभी भवितव्य करा बैठते हैं। सर्वानन्द इसके पूर्व कभी दरबार में नहीं आया था। यहाँ की साजसज्जा, रंगढंग विस्मय के साथ देखने लगा।

तभी एक दरबारी ने कहा—"पण्डितजी के भाई भले ही बेवकूफ हों, पर आगे चल कर पण्डित-वंश का प्रभाव पड़ेगा। कुछ लोगों को बुद्धि देर से आती है।"

दूसरे दरबारी ने कहा—"आपका ख्याल सही है। महाकवि कालिदास को ही लीजिये। बचपन में कितने मूर्ख थे और अपने जीवनकाल में विश्व-प्रसिद्ध हो गए।"

जटाधर ने कहा—"इसमें बहस करने की कोई जरूरत नहीं। भट्टाचार्य परिवार का लड़का है। घर में नित्य नक्षत्र, वार, तिथि की चर्चा होती होगी। आज कौन-सी तिथि और वार है, पूछिये। नक्षत्र बताने में कठिनाई हो सकती है।"

दूसरे दरबारी ने पूछा—"आज कौन-सी तिथि है, भाई?"

इस बहस के कारण सर्वानन्द घबरा गया था। अनजाने में उसके मुँह से निकल गया—"पूर्णिमा।"

इतना सुनना था कि सारी सभा अट्टहास से गूँज उठी। जटाधर ने तीखे स्वर में कहा—"जाओ, चुल्लूभर पानी में डूब मरो। भट्टाचार्य-वंश के तुम कलंक हो। जिसे तिथि-नक्षत्र का ज्ञान नहीं, वह क्या पण्डिताई करेगा?"

जटाधर के तीखे स्वर का सबसे अधिक प्रभाव सर्वानन्द के पुत्र शिवनाथ पर पड़ा। वह दरबार से दौड़ता हुआ घर आया। अपने पिता के अपमान की सारी कहानी माँ को सुनाई। सर्वानन्द की मूर्खता के कारण पत्नी वल्लभा को नित्य ताने सुनने पड़ते थे। वह सोचती, मेरे पति बहुत भोले हैं, पर जिस घटना को देख कर उसका किशोर बालक अपमानित अनुभव कर रहा है, वह जरूर भयानक घटना रही होगी। बड़े भाई तथा पत्नी दोनों ही क्षोभ से फटे पड़े।

पूरे परिवार की फटकार ने उसे बुरी तरह झकझोर दिया। उसने सोचा—इससे अच्छा है कि जाकर नदी में डूब मरूँ। मैं परिवार के लिए बोझ मात्र हूँ। बिना किसी से कुछ कहे वह चुपचाप घर से बाहर चला गया। आम तौर पर कोई उसके आने-जाने पर ध्यान नहीं देता। आज तो लोग उससे बुरी तरह चिढ़े हुए थे।

धीरे-धीरे दिन ढलता गया। आज क्रोध से भरे रहने के कारण वल्लभा ने पति से खाने के लिए भी नहीं पूछा। तीसरे पहर ध्यान आया कि आज न उन्होंने भोजन माँगा और न खाना खाया। आखिर कहाँ चले गये? जेठ से कहने पर वे उसे खोजने निकले।

ठीक इसी समय घर का पुराना नौकर वृद्ध पूर्णानन्द आया। आज वह जरूरी काम से काफी दूर दूसरे गाँव में चला गया था। घर आने पर उसे सर्वानन्द के बारे में सारी कहानी ज्ञात हुई तो वह सबसे अधिक व्याकुल हो उठा।

घर का प्रत्येक प्राणी इस बात से अच्छी तरह परिचित है कि पूर्णानन्द सबसे अधिक आदर सर्वानन्द का करता है। जैसे यक्ष अपने धन की खबरदारी करते हैं, ठीक उसी तरह पूर्णानन्द उसे अपनी ऑखों का तारा समझता है। हर जगह अपमानित होकर जब वह बूढ़े पूर्णानन्द के पास आता है, तब पिता-माता दोनों का स्नेह एक साथ उसे प्राप्त हो जाता है। पिछले सैंतीस वर्षों से पूर्णानन्द उसके पीछे साये की तरह लगा हुआ है। केवल वही जानता है कि सर्वानन्द कौन है?

उसके गुरु वासुदेव भट्टाचार्य ने एक दिन उससे कहा था—"पूर्णा, तू चिन्ता मत कर! माँ जगज्जननी ने कहा है कि जब मैं अपने पौत्र के रूप में पुनर्जन्म लूँगा, तब मुझे सिद्धि प्राप्त होगी। उस समय तेरी सहायता से ही कार्य सिद्ध होगा। तू मेरे परिवार से अलग मत होना। तुझे जो मन्त्र दिया है, उसका पाठ करते रहना।"

यह आज की बात नहीं है। उस समय पूर्णानन्द किशोर बालक था। वासुदेव के परिवार में नौकरी करने आया था। धीरे-धीरे ज्ञात हुआ कि उसके मालिक सामान्य व्यक्ति नहीं हैं। असाधारण तान्त्रिक हैं। योगी पुरुष के रूप में इनकी ख्याति है। अपने मालिक की कृपा से वह स्वयं भी महाशक्ति का उपासक बन गया। मालिक उसे गुरुमन्त्र देकर उसके गुरुदेव बन गये। पूर्णानन्द मूढ़ और अशिक्षित था, परन्तु उसमें अनुभूति और विश्वास की कमी नहीं थी। उसने आश्चर्य के साथ देखा कि उसके गुरु साधना के माध्यम से वाक्‌सिद्ध पुरुष हो रहे हैं। ऐसे योगी पुरुष की सेवा करना कम गौरव की बात है! ये सारी बातें पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य की हैं।

पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जसोर जिला (बांग्ला देश) के सरशुना गाँव में कांचन पाकड़ाशी रहते थे। वहाँ किसी बात पर उनका मन उचट गया तो वे पश्चिमी बंगाल के वर्धमान जिला के अन्तर्गत पूर्वस्थली गाँव में आकर बस गये। पेशागत इनकी उपाधि आचार्य थी। आगे चल कर इन्होंने भट्टाचार्य के रूप में उसे अपना लिया। कांचन पाकड़ाशी के पुत्र वासुदेव भट्टाचार्य हुए। भट्टाचार्य परिवारों में संस्कृत पठन-पाठन की परम्परा है। बंगाल में भट्टाचार्य ही कुल-पुरोहित एवं राज्य के द्वार-पण्डित होते हैं।

कुल परम्परा के अनुसार वासुदेव संस्कृत चटशाला में अध्ययन करते रहे। बचपन से ही मेधावी थे। अपनी प्रतिभा के कारण जल्द ही पूर्वस्थली के विद्वानों में इनकी धाक जम गयी। लेकिन इससे वासुदेव को प्रसन्नता नहीं हुई। विद्वत्ता का प्रदर्शन करना उन्हें पसन्द नहीं था। वे सत्य की खोज में जुट गये। शक्तिमन्त्र में दीक्षित होने के

बाद उनके मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि एक बार प्रत्यक्ष रूप से मुझे जगन्माता के दर्शन हो जायँ। कठोर साधना से ही यह सम्भव है। जब मन में यह धारणा उत्पन्न हुई, तब वासुदेव निरन्तर आहार-निद्रा त्याग कर साधना में दत्तचित्त हो गये। स्वामी की यह हालत देख कर पूर्णानन्द ने गृहस्थी का सारा भार अपने ऊपर ले लिया। देवी की कृपा अगर उसके स्वामी पर हो जाय तो उसे भी दर्शन मिल जायेगा।

भक्त की साधना से देवी का आसन डोल उठा। वे भक्त पर प्रसन्न हुईं। वासुदेव की एकनिष्ठ उग्र-साधना सफल हुई। उनका अन्तर एक अपूर्व आनन्द से उद्भासित हो उठा। उनकी चेतना में सहस्र चन्द्रप्रभा प्रकाशित हो उठी। उस प्रकाश के भीतर से देवी की वाणी प्रस्फुटित हुई—

"वत्स, धैर्य रखो। अभी समय नहीं आया है। मेहार में तुम्हारे वंश का एक युवक सिद्धि लाभ करेगा। उसे इष्ट देवी दर्शन देंगी।"

भविष्यति भवद्वंशे वंगे मेहारसंज्ञके;
स्थिरो भव द्विजश्रेष्ठ त्वं मां कलयसीच्छया।

इस आकाशवाणी को सुनते ही वासुदेव का हृदय आनन्द से उछल पड़ा। अवर्णनीय उत्साह से वे परिपूर्ण हो उठे। लगा, जैसे उनकी सारी तपस्या सफल हो गयी है। इतना वे समझ गये कि मेरी साधना का फल मेरे ही वंशधर को मिलेगा। इष्ट देवी उसे दर्शन देंगी। इसका अर्थ यह हुआ कि उनका वंश साधकों का वंश होगा।

लेकिन यह दर्शन मेहार में होगा। यह मेहार किस जिले के, किस स्थान का नाम है? मेहार का क्या महत्त्व है? हर परिचित-अपरिचित से वे पूछते रहे कि मेहार नामक स्थान कहाँ है? कोई भी उनके इस प्रश्न का जवाब नहीं दे सका। उनकी आकुलता बढ़ती गयी। कम-से-कम निर्वाण के पूर्व एक बार वे उस पवित्र भूमि को देख लेना चाहते हैं, जहाँ उनके वंशधर को सिद्धि मिलेगी। अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि अब पर्यटन करूँ, शायद कभी किसी मेहार-निवासी से भेंट हो जाय और वह उस स्थान के बारे में बता सके। पूर्णा को साथ लेकर एक दिन वे कामाख्या देवीदर्शन करने आये।

यह दैवयोग था कि उन्हीं दिनों मेहार के भूस्वामी शिवानन्द देवीदर्शन करने आये थे। चारों ओर दर्शनार्थी कलरव कर रहे थे। वासुदेव दूर एक वृक्ष के नीचे चुपचाप बैठे जगन्माता के चिन्तन में निमग्न थे। उनके चेहरे से एक प्रकार की ज्योति निकल रही थी। इस तपोनिष्ठ ब्राह्मण को देखते ही शिवानन्द आकृष्ट हुए। सम्भवत: कामाख्या देवी की प्रेरणा से ही वे वासुदेव आचार्य के प्रति आकर्षित हुए थे। शिवानन्द स्वत: इनके निकट आये और प्रणाम किया। वासुदेव ने हाथ उठा कर आशीर्वाद दिया और तब पूछा—"कहाँ से आ रहे हो, भगत?"

शिवानन्द ने कहा—"मेहार से।"

"मेहार से?" शिवानन्द के हृदय के रक्त में उबाल आ गया। प्रसन्नता की उत्तेजना से वे चौंक उठे। मेहार की तलाश में अब तक न जाने कहाँ-कहाँ भ्रमण कर चुके हैं। आज वही मेहार उनके निकट, उनकी आँखों के सामने उपस्थित है। उनके स्वप्नों का मेहार, उनकी साधना-भूमि, जहाँ उनके वंशधर को साधना करनी है, जहाँ देवी दर्शन देंगी, जहाँ उनकी मनोकामना पूरी होगी। धन्य हो कृपामयी, अपनी सन्तान पर अवश्य कृपा करती हो।

अपने को संयत करते हुए वासुदेव ने कहा—"अच्छा हुआ कि आप मिल गये। पिछले कई दिनों से कामाख्या देवी की कृपा से मेहार के बारे में चिन्तन कर रहा था। मैं वहाँ निवास करना चाहता हूँ। कोई व्यवस्था हो सकती है?"

योगी की बातें सुन कर शिवानन्द विस्मय से उनकी ओर देखने लगे। देवी की कृपा से कह उठे—"आप जैसे साधक को मेहार अपने यहाँ स्वागत करने में गौरव का अनुभव करेगा। मैं आपके निवास की पूरी व्यवस्था कर दूँगा। आपके आगमन से मेहारवासी धन्य हो उठेंगे।"

योगी के ज्ञान की परीक्षा लेने के लिए शिवानन्द ने धर्मचर्चा आरम्भ की। शिवानन्द को अपने अध्ययन पर गर्व था। थोड़ी ही देर में उन्हें यह आभास हो गया कि यह व्यक्ति पारस पत्थर है। आज तक इसे कोई पहचान नहीं सका। यह सौभाग्य की बात है कि आज उन्होंने इस पारस को पहचान लिया। संक्षिप्त बातचीत करने के बाद वासुदेव मेहार रवाना हो गये।

मेहार आकर वे कई दिनों तक चारों ओर घूमते रहे। डाकातिया नदी के किनारे घना जंगल, शायद यहाँ प्राचीनकाल में ऋषि-मुनि तपस्या करते रहे होंगे। साधना करने लायक यही उपयुक्त भूमि है। जंगल के भीतर वे काफी दूर तक चले गये। इस स्थान पर देवी उनके वंशधर को कहाँ दर्शन देंगी? यह प्रश्न अनुत्तरित रह गया।

मेहार में वासुदेव सपरिवार बस गये। शिवानन्द को जैसे स्वर्ग मिल गया। वासुदेव को साधना करने के अलावा जितना समय मिलता, उसमें शिवानन्द से धर्म, दर्शन पर विचार-विमर्श करते। शिवानन्द के दरबार के वे सभापण्डित नियुक्त हुए।

पूर्णानन्द शूद्र जाति का था। पहले वासुदेव उसके हाथ का पानी नहीं पीते थे। उसे गुरु-मन्त्र देने के बाद से उसकी सारी सेवाएँ ग्रहण करने लगे थे। उन्हें अपनी साधना की ओर विशेष ध्यान देना था। आहार-निद्रा से वे दूर होते गये। क्रमशः साधना कठोर होती गई। शीतकाल में शीतल जल में और ग्रीष्मकाल में ग्रीष्म जल में, ऊर्ध्व दृष्टि से इष्ट-चिन्तन करते रहे।

एक दिन पुनः उनका हृदय ज्योतिर्मय हुआ। ठीक उसी समय आकाशवाणी

हुई—"वत्स, तुम अपनी साधना में उत्तीर्ण हुए हो। कुछ दिन और धैर्य रखो। यहाँ मातंगेश मुनि ने मन्त्रसिद्ध महालिंग स्थापित किया था। वह लिंग मेहार के जंगल में एक जीन वृक्ष के नीचे है। उस स्थान को तुम नहीं, तुम अपने पौत्र के रूप में देख पाओगे। वहीं शवारूढ़ होकर तपस्या करने पर सिद्धि मिलेगी।"

मेहराख्ये बंगदेशे जीनमूले निशार्द्धके।
शवारोहात्तपः सिद्धिः स्वपौत्रान्ते भविष्यति।

थोड़ी देर बाद बीजमन्त्र उच्चारित हुआ। इस वाणी को सुन कर वासुदेव हताश हो गये। इस जन्म में देवी का दर्शन नहीं होगा। इतनी कठोर साधना व्यर्थ हो गई। सन्तोष इस बात का हुआ कि मेरी साधना का प्रतिफल मेरे पौत्र को मिलेगा। पास ही पूर्णानन्द था। उसे बुला कर वासुदेव ने कहा—"सब समाप्त हो गया, पूर्णा। अब इस नश्वर शरीर को मैं शीघ्र त्याग दूँगा। मेरा कार्य समाप्त हो गया। मुझे पुनर्जन्म लेकर नये सिरे से देवी को प्रसन्न करना पड़ेगा, तब मैं उनका दर्शन कर सकूँगा।"

स्वामी की बातें सुन कर पूर्णानन्द फफक कर रो पड़ा। उसने कहा—"स्वामी, जब आप नहीं रहेंगे तो मेरा रहना भी व्यर्थ है। मेरा जन्म तो आपकी सेवा के लिए ही हुआ है। अगर आप मुझे ज्ञान न देते तो इन चरणों की सेवा करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त न होता।"

वासुदेव ने घबरा कर कहा—"नहीं पूर्णा, तू चिन्ता मत कर। तुझे जो कुछ सिखाया है, तू करता चल। अभी तेरा कार्य पूर्ण नहीं हुआ है। तुझे अभी बहुत कुछ करना है। मैं पुनर्जन्म लेकर तेरे पुण्य प्रताप से आगे अग्रसर होऊँगा। तू चला जायेगा तो मेरा सारा श्रम, सारी आकांक्षाएँ नष्ट हो जायेंगी। बाधा मत डाल। अगले जन्म में एकमात्र तू मेरा सहायक होगा। मैं सर्वदा सूक्ष्म रूप में तेरे साथ रहूँगा। शोक करने की जरूरत नहीं। मैं केवल शरीर त्याग रहा हूँ, मन मेरा यहीं रहेगा। जा, चला जा।"

स्वामी की आज्ञा शिरोधार्य कर पूर्णानन्द अपने गुरु को छोड़ कर चल पड़ा। पीछे से आवाज आती रही—"ॐ प्रत्यालीढपदार्पितांघ्रि शवहृद् घोराट्टहास परा, खड़ेगन्दी वरकर्तृखर्परभुजा हुंकारवीजोद्भवा। खर्व्वा नीलविशालपिंगल जटाजूटैकनागैर्युता, जाड्यं रस्य कपालके त्रिजगतां हंत्युग्रतारा स्वयम्।"

पूर्णानन्द को अकेला वापस आते देख वासुदेव के पुत्र शम्भुनाथ ने पूछा—"बाबूजी कहाँ हैं?"

पूर्णानन्द ने कहा—"अधीर होने की आवश्यकता नहीं है। गुरुदेव ने प्रव्रज्या ले ली है। अब इस आश्रम में नहीं आयेंगे। मुझे यहाँ सेवा करने का आदेश देकर वे जंगल के भीतर चले गये।"

पूर्णानन्द के गुरु वासुदेव थे। इसे उन्होंने मन्त्र देकर साधना करना सिखाया था।

पूर्णानन्द गुरु के बताये उपायों से अग्रसर होता गया। उनके निधन के पश्चात् वह पूर्व की भाँति घर का सारा कार्य करता रहा।

सर्वानन्द के जन्म के पूर्व ही वह गुरु द्वारा प्रदत्त बीजमन्त्र में प्राणप्रतिष्ठा कर चुका था। अब उसे अपने गुरु की शक्ति और बातों पर आस्था हो गयी थी। इसी समय सर्वानन्द भूमिष्ठ हुआ। कुछ दिनों बाद जब वह उसे लेकर गोद में खिलाता, तब अपने गुरुदेव की प्रतिच्छवि उसमें खोजने लगता। सर्वानन्द बालक से किशोर बन गया।

एक दिन पूर्णानन्द कहीं बाहर से वापस आया। घर के बाहर एक वृक्ष के नीचे सर्वानन्द बैठा न जाने क्या सोच रहा था। उसके अस्त-व्यस्त बाल, उद्भ्रान्त दृष्टि देख कर पूर्णानन्द को विश्वास हो गया कि उसके गुरुदेव सर्वानन्द के रूप में अवतरित हुए हैं। ठीक वैसी आँखें, वही नाक-नक्शा और वही चाल। ले-देकर एक ही दोष है। वह है—जड़बुद्धि। इस दोष के कारण न केवल परिवार के लोग, बल्कि सारा कस्बा इसे उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। आखिर सर्वानन्द में यह दोष क्यों आ गया? चारों ओर से अपमानित होकर वह पूर्णानन्द की गोद में आकर मुँह छिपा लेता। पूर्णा दादा के स्नेह-स्पर्श से सारा अपमान, पीड़ा, सब कुछ दूर हो जाता। स्वयं पूर्णा दादा बड़े स्नेह से उसकी बलैया लेते। दोनों यह भूल जाते सर्वानन्द अब बालक नहीं, किशोर है।

एकाएक पिता शम्भुनाथ ने सोचा कि लड़के में जो दोष है, अगर इसका विवाह कर दिया जाय तो बहू के कारण शायद इसमें परिवर्तन हो जायेगा। इस निश्चय के बाद उन्होंने सर्वानन्द का विवाह कर दिया। पत्नी वल्लभा अच्छे घर से आयी थी। उसके आदर-प्यार में सन जाने पर भी सर्वानन्द में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। चतुर वल्लभा पति की कमजोरी समझ गयी। भाग्य का परिहास समझ कर वह अपने पति को झेलने लगी। इसके अलावा और कोई उपाय भी नहीं था। इस बीच वह एक पुत्र का पिता बन गया। बाप की मूर्खता से पुत्र शिवनाथ भी असन्तुष्ट रहने लगा।

लेकिन पूर्णानन्द निराश नहीं हुआ था। उसे अपने गुरु के वचनों पर पूर्ण विश्वास था। एक दिन यह सब जंजाल दूर होगा और उसकी आँखों का तारा सर्वानन्द भूमण्डल में चमक उठेगा। उसकी देखरेख और रक्षा करनी है।

भूखा-प्यासा पूर्णानन्द गाँव के परिचितों के घर गया। रास्ते में जो मिलता, उसी से पूछता—"सर्वा को कहीं देखा है?" सभी सिर हिला देते। एकाएक उसे याद आया कि कहीं झकवश डाकातिया नदी में कूदा न हो या जंगल की ओर भाग न गया हो। पागल ठहरा, उसके दिमाग का क्या भरोसा? इस वक्त उसे सबसे अधिक क्रोध जटाधर पर आ रहा था। इतने पण्डितों के रहते उससे तिथि पूछने की क्या जरूरत थी? गुरुजी ने व्यर्थ ही आशीर्वाद दिया। अगर शिवानन्द कमबख्त निपूता ही रहता तो ठीक था।

पूर्णानन्द को पिछली घटनाएँ याद हैं। गुरुदेव शराब पीते हैं, लोगों की जबानी

शिकायत सुन कर स्वयं अपनी आँखों से देखने के लिए शिवानन्द आये थे। दरअसल वासुदेव की ख्याति से जो लोग नाराज रहते थे, उन लोगों ने शिवानन्द को उकसाया था ताकि गुरु वासुदेव को यहाँ से आसानी से भगाया जा सके। शिवानन्द चुपके से एक दिन आये तो देखा—वासुदेव गिलास में शराब उड़ेल कर पी रहे हैं और झूमते हुए मन्त्र पाठ कर रहे हैं। प्रत्यक्ष यह हरकत देख, उसने तीखे स्वर में पूछा—"कहिये, गुरुदेव! यह मिथ्याचार क्यों? पात्र में मद्य है, पान भी कर रहे हैं और कहते हैं कि सारी शिकायतें झूठ हैं।"

वासुदेव ने रक्तिम नेत्रों से शिवानन्द की ओर देखते हुए कहा—"गुरु की बात पर विश्वास नहीं हुआ तो स्वयं खोज करने आ गये?" फिर पानपात्र को प्रकाश के सामने रखते हुए कहा—"कौन कहता है कि यह मद्य है? अपने गुरु को मद्यप समझने में तुम्हें संकोच नहीं हुआ? अपने गुरु पर लांछन लगाते हो। जिस मस्तिष्क में यह विकृति उत्पन्न हुई है, वह विभक्त हो जायेगा।"

शिवानन्द ने प्रकाश में देखा—उसमें शराब नहीं, चरणामृत था। अब तो भूल हो गयी थी। गुरु का शाप सुन कर वे चुपचाप चले आये। उन दिनों शिवानन्द तालाब बनवा रहे थे। न जाने किस बात पर मजदूरों में लड़ाई हो गई। बीचबचाव करने के लिए शिवानन्द ज्योंही आगे बढ़े, त्योंही पीछे से किसी ने लाठी मारी। वासुदेव के शाप ने अपना प्रभाव दिखा दिया।

शिवानन्द की पत्नी रोती हुई वासुदेव के पास आयी। उसे अभिशाप की घटना मालूम थी। बोली—"गुरुदेव, अब क्या होगा? राजा तो अपुत्रक मर गये।"

वासुदेव ने कहा—"नहीं, तुम गर्भवती हो।" इसके बाद शिव की जटा से एक फूल देते हुए बोले—"इसे घर ले जाकर खा लेना। यह पुत्र जटाधारी और तेजस्वी होगा। दास-वंश इसी से चलेगा।"

वही जटाधारी इस राज्य का राजा है। शिवानन्द का वंशधर। इसके बाप ने मेरे गुरु का और इसने मेरे गुरु के पौत्र का अपमान किया है। ईश्वर इसे सजा अवश्य देगा।

इधर घर से भी अपमानित होकर सर्वानन्द डाकातिया नदी के किनारे आकर रोने लगा। जड़बुद्धि वालों को भी अपमान से ठेस लगती है। दिनभर भोजन न करने के कारण शरीर थका-थका-सा लगने लगा। उसे लगा कि क़ोई यह नहीं चाहता कि वह जीवित रहे। पत्नी, बच्चे, पूरे परिवार के निकट वह भारस्वरूप है। ऐसे व्यक्ति का रहना या न रहना बराबर है। क्रोध के आवेश में आक़र वह नदी के कगार तक आया। उछल कर नदी में कूदने ही जा रहा था कि न जाने कहाँ से आवाज आई—"ठहरो, तुम्हें अभी जीना है। पढ़-लिख कर विद्वान् बनना है। आज के अपमान का बदला लेना है। आत्महत्या पाप है। ज़ाओ, आज से साधना में जुट जाओ।"

सर्वानन्द सकपका कर चारों ओर देखने लगा कि कौन उसे यह निर्देश दे रहा है? कहीं कोई दिखाई नहीं दिया। रह-रह कर आवाज आ रही थी—"तुम्हें जीना है, बदला लेना है, साधना में जुट जाओ।" ठीक है, आज से मैं पढ़ूँगा-लिखूँगा। पढ़ने-लिखने के लिए ताड़-पत्रों की जरूरत है।

जंगल के भीतर प्रवेश करते ही एक ताड़ का पेड़ दिखाई दिया। सर्वानन्द ने ऊपर चढ़ कर ज्योंही पत्ता तोड़ने के लिए हाथ बढ़ाया, त्योंही एक विषधर साँप फन उठाये काटने को तैयार हुआ। यहाँ से भागना या झट से नीचे जाना खतरे से खाली नहीं था। सामने और नीचे दोनों ओर मौत थी। भगवान् ने बुद्धि और साहस दिया। झट फन पकड़ कर वह पेड़ पर रगड़ने लगा। मृत्यु अनिवार्य है, जान कर साँप हाथ में लिपट कर उसे कसने लगा। दोनों में जीवन-युद्ध जारी था। अन्त में साँप की पकड़ ढीली पड़ गयी।

पेड़ से नीचे उतरते ही आवाज आई—"बेटा, तुम कौन हो?"

सर्वानन्द ने देखा—सामने एक जटाधारी बावा खड़े तीक्ष्ण दृष्टि से देख रहे हैं। यह कौन है? कहाँ रहता है? मस्तिष्क में जोर डालने पर वह उन्हें पहचान नहीं सका। पुन: संन्यासी ने पूछा—"क्या नाम है?"

—"सर्वानन्द भट्टाचार्य।"

—"पेड़ पर क्यों चढ़ने गये थे?"

सर्वानन्द ने आज की सारी घटनाएँ बताते हुए कहा—"मैं अब पढ़-लिख कर बड़े भाई की तरह विद्वान् बनना चाहता हूँ।"

संन्यासी ने कहा—"समय काफी गुजर चुका है। इस तरह विद्वान् नहीं बन सकोगे। तुम स्वत: विद्वान् बनोगे, पर मन्त्र के द्वारा। मैं तुम्हें मन्त्र के द्वारा विद्वान् बनाऊँगा।"

सर्वानन्द को मुस्कराते देख संन्यासी ने कहा—"तुम्हें मेरे मन्त्र पर विश्वास नहीं हो रहा है। अच्छा ठहरो।" इतना कहने के बाद संन्यासी ताड़ के पेड़ के पास से साँप के दोनों टुकड़ों को उठा लाये। दोनों को आपस में जोड़ कर उन्होंने मन्त्र पढ़ा। साँप जीवित होकर जंगल की ओर चला गया। सर्वानन्द भयभीत दृष्टि से इस दृश्य को देखता रहा।

—"अब मन्त्र पर विश्वास हुआ? चलो, यहाँ पद्मासन लगा कर बैठ जाओ।"

सर्वानन्द के बैठ जाने के बाद संन्यासी भी उसके सामने बैठ गया। कहा—"आज मैं दीक्षा दूँगा। मेरे बीजमन्त्र को तुम सिद्ध करोगे।" कहने के साथ ही उन्होंने सर्वानन्द को स्पर्श किया। सर्वानन्द को लगा, जैसे विद्युत्-गति से कोई लहर सारे शरीर में दौड़ गयी। वह क्या चीज थी, उसे वह नहीं समझ सका।

एकाएक सर्वानन्द बोल उठा—"दीक्षा देंगे? आखिर क्यों?"

संन्यासी ने कहा—"मुझे आदेश हुआ है कि तुम्हें संस्कारमुक्त कर आज ही दीक्षा दूँ। वह शुभ मुहूर्त इस समय उपस्थित हुआ है और यही वह असाधारण स्थान है, जहाँ क्रिया सम्पन्न होगी। जाओ, जल्द स्नान करके आओ। देर मत करना।"

सर्वानन्द ने पूछा—"पूजन-सामग्री कहाँ है?"

संन्यासी ने कहा—"सब कुछ मेरे पास है। जाओ।"

संन्यासी के आदेशानुसार स्नान कर सर्वानन्द भींगे वस्त्रों में आकर बैठ गया। संन्यासी ने झोले में से तरह-तरह की सामग्रियाँ निकाल कर क्रिया सम्पन्न की। सर्वानन्द अवाक् होकर सारी कार्यवाही देखता रहा। यथारीति दीक्षा देने के बाद संन्यासी ने उसके कान में बीजमन्त्र सुनाया। कुछ देर ध्यानस्थ रहने के बाद संन्यासी ने कहा—"आज तुम्हें अनेक कार्य करने पड़ेंगे। कई जन्मों की साधना वस्तु प्राप्त करोगे। यहाँ तक कि मुझसे भी महान् सिद्ध योगी बनोगे।"

अब तक सर्वानन्द के अन्तर का विकास हो चुका था। उसने साष्टांग प्रणाम करते हुए कहा—"मुझे आशीर्वाद दीजिए गुरुदेव, मैं अपने कृतकार्य में सफल हो सकूँ।"

संन्यासी ने कहा—"वत्स, वास्तव में मेरा कोई मूल्य नहीं है। समस्त कार्य जगन्माता की कृपा से हुआ है। उन्होंने मुझे यहाँ भेजा और आज वे स्वयं तुम्हें दर्शन देंगी। आज शुक्रवार, मकरसंक्रान्ति है। रात्रि के अन्तिम पहर में तुम गुह्य साधना करोगे। महाश्मशान स्थित, जहाँ प्रोथित महामुनि द्वारा स्थापित मातंगेश शिव विग्रह है, वहीं शव-साधना करनी होगी। अपनी शव-साधना के माध्यम से उस विग्रह में प्राण-प्रतिष्ठा करोगे। यहीं तुम सिद्ध योगी बनोगे। जन्म-जन्मान्तर का फल आज तुम्हें प्राप्त होगा। किसी भी दैवी प्रकोप से तनिक भी भयभीत मत होना और न साधनाच्युत होना। तुम्हें डराया जायेगा, भयानक स्थितियाँ तुम्हारे सामने आयेंगी, पर तुम अपने कार्य में लगे रहना। लेकिन यह बात गुप्त रखना। केवल पूर्णानन्द को सारी बातें बता सकते हो। वह स्वयं योगी पुरुष है, तुम्हारा एकमात्र सहायक है। भक्ति के माध्यम से वह उच्च-स्तर तक पहुँच गया है। उस पर भरोसा कर सकते हो। अब जाओ।"

सर्वानन्द ने पूछा—"आपके रहते मैं क्यों पूर्णा दादा से सहायता लूँ?"

संन्यासी ने कहा—"मेरा काम समाप्त हो गया। इतना ही करने का मुझे आदेश दिया गया था। शेष कार्य पूर्णानन्द की सहायता से सम्पन्न करना है। तुम्हें कोई कठिनाई नहीं होगी।"

इतना कहने के पश्चात् संन्यासी द्रुतगति से जंगल के भीतर चला गया और

सर्वानन्द घर की ओर चल पड़ा। कुछ दूर आने पर सहसा एक वृक्ष के नीचे से आवाज आयी—"कौन जा रहा है?"

बचपन से जिस आवाज को सर्वानन्द सुनता आ रहा है, उसे पहचानते देर नहीं लगी। दौड़ता हुआ वह अपने पूर्णा दादा के पास पहुँच कर बोला—"मैं हूँ, पूर्णा दादा!"

वृद्ध पूर्णानन्द ने उसे कलेजे से लगाते हुए कहा—"कहाँ चला गया था? मैं दोपहर से खोजते-खोजते हैरान हो गया। सुना कि आज तूने खाना तक नहीं खाया। अरे, तेरे कपड़े कैसे भींग गये?"

सर्वानन्द ने आज की सारी घटनाएँ विस्तार से कहते हुए पूछा—"अब क्या करना होगा?"

सर्वानन्द की बातें सुनते ही पूर्णानन्द की आँखें चमक उठीं। आज के पहले सर्वानन्द कभी इस ढंग से बातें नहीं करता था। बिल्कुल बोदा लगता था। पूर्णानन्द को विश्वास हो गया कि आज उसके गुरु वासुदेव आचार्य मूर्तरूप धारण करेंगे। वह इसी दिन की प्रतीक्षा में इतने दिनों तक लगा रहा। उसने कहा—"तुम यहीं खड़े रहो। मैं घर से सारा सामान लेकर अभी आता हूँ।"

पूर्णानन्द को वापस आया देख कर घर के लोगों ने पूछा—"कुछ पता चला?"

पूर्णानन्द ने कहा—"हाँ, पता चल गया है। जरा क्रोध ठंडा हो जाय तो अपने आप आ जायेगा। चिन्ता की बात नहीं है। कल उसे मना कर ले आऊँगा।"

पूर्णानन्द इस वक्त आवश्यक सामग्री की खोज में व्यस्त था। खासकर वासुदेव के दिए हुए ताम्रफलक की आवश्यकता थी। इस समय वह सर्वानन्द के लिए आवश्यकता से कहीं अधिक उत्तेजित हो गया था। आज उसका स्वप्न पूरा होने जा रहा है।

पूर्णानन्द से ताम्रफलक हाथ में लेकर सर्वानन्द ने गौर से उसे देखते हुए कहा—"पूर्णा दादा, बड़े आश्चर्य की बात है, इस फलक की सारी बातें गुरुदेव मुझे बता चुके हैं। यही बीजमन्त्र, यही दीक्षामन्त्र, हूबहू सब यही था।"

पूर्णानन्द चकित दृष्टि से सर्वानन्द के मुँह की ओर देखता रह गया। जिस बालक को ठीक से अक्षर-ज्ञान नहीं है, आज वही ताम्रफलक पढ़ रहा है? यह तो साक्षात् भगवती की कृपा है। पूर्णानन्द ने कहा—"यह देवी की कृपा है। आओ, चलो, कार्य प्रारम्भ करें।"

सर्वानन्द ने कहा—"अब एक सामान बाकी रह गया। चाण्डाल का शव। वह कहाँ है?"

"उसकी चिन्ता छोड़ो। उसका प्रबन्ध मैं कर दूँगा। इस वक्त हमें जीन वृक्ष के नीचे जल्द पहुँचना है।"

चलते-चलते सर्वानन्द ने कहा—"बिना शव के बीजमन्त्र का उपयोग नहीं हो सकता। आखिर इस जंगल में चाण्डाल का शव तुम्हें कहाँ मिलेगा?"

पूर्णानन्द ने कहा—"मैं अपना शव तुम्हें दूँगा। वास्तव में मैं चाण्डाल हूँ। मेरे शव के ऊपर बैठ कर तुम्हें साधना करनी होगी। मेरे गुरु यानी तुम्हारे दादाजी का यही आदेश था।"

सर्वानन्द ने कहा—"मुझे यह साधना नहीं करनी है। जिस व्यक्ति को मैं अपने प्राणों से प्यारा समझता हूँ, जिनकी गोद में बड़ा हुआ हूँ, जिसने मुझे अपने माँ-बाप, पत्नी, पुत्र सबसे अधिक स्नेह दिया, उसके शव पर नहीं बैठ सकता। भले ही पुनः जड़बुद्धि बन जाऊँ।"

पूर्णानन्द को क्रोध आ गया। ऐन मौके पर लड़का विमुख हो गया, देख कर उसने कहा—"तब एक ही उपाय है। मैं डाकातिया नदी में जाकर आत्महत्या कर लूँगा। तुम्हारे या मेरे भाग्य में देवीदर्शन नहीं लिखा है।"

पूर्णा दादा आत्महत्या करेंगे? सर्वानन्द भय से काँप उठा। कहा—"नहीं पूर्णा दादा, ऐसा मत करो। तुम जो कहोगे, वही करूँगा। पर तुम अगर मर गये तो मैं कैसे जीवित रहूँगा?"

पूर्णानन्द ने कहा—"उसकी चिन्ता छोड़ो। पहले काम शुरू करो। यह याद रखना कि इस साधना में अनेक विघ्न उत्पन्न होंगे। भूत-प्रेत तथा अमानवीय जीव डरावनी स्थितियाँ उत्पन्न करेंगे, पर डरना मत। अगर चूक जाओगे तो मर जाओगे। शव पर से तब तक मत उतरना, जब तक देवी प्रत्यक्ष रूप में आकर दर्शन न दें। जब देवी वरदान माँगने को कहें तो कहना कि पूर्णा दादा से पूछिए।"

इतना कहने के बाद पूर्णानन्द योगासन लगा कर बैठ गया। थोड़ी देर बाद उसकी प्राणवायु निकल गई। मन्त्रोच्चार के बाद सर्वानन्द पूर्णा दादा के शव पर बैठ गया। बीजमन्त्र का जप प्रारम्भ हुआ। चारों ओर अँधियारी रात। दूर डाकातिया नदी कलकल ध्वनि करती हुई बह रही थी। एकाएक तेज आँधी आई, फिर बिजली चमकने लगी। विद्युत् के प्रकाश में अनेक हिंसक जन्तुओं का उपद्रव प्रारम्भ हो गया। पास का एक वृक्ष जड़ से उखड़ कर गिर गया। दूर से आग की एक लहर पास आती गयी। चमगादड़, उल्लू, कुत्ते, बिल्ली तथा शृगालों के चीत्कार से वातावरण भयानक हो उठा। साधक का कलेजा पीपल के पत्ते की तरह काँपने लगा। इन भयानक दृश्यों को देख वह जोर-जोर से बीजमन्त्र का पाठ करने लगा।

भोर के पहले एक अपूर्व प्रकाश सम्पूर्ण जंगल में फैल गया। चारों ओर से अपूर्व सुगन्ध आने लगी। मधुर कण्ठ से आवाज आई—"वत्स, आँखें खोलो। भय का अवसान हो चुका है। तुम्हारी साधना पूर्ण हुई।"

सर्वानन्द प्रत्यक्ष रूप से देवी को देख कर विस्मय से भयाक्रांत हो उठा—"माँ! जगदम्बे, मेरी माँ, आ गयीं। पूर्णा दादा, माँ आ गयीं।"

पूर्णा दादा की ओर से कोई जवाब न पाकर सर्वानन्द व्याकुल हो उठा। देवी ने कहा—"वर माँगो वत्स! तुम्हारी कई जन्मों की साधना आज पूर्ण हुई है। तुम आज से नियत-पुत्र हो गये। अब से जो इच्छा करोगे, वही प्राप्त करोगे।"

सर्वानन्द ने गद्‌गद होकर कहा—"माँ, मैंने तो आपका दर्शन पाकर सब कुछ पा लिया। अब आप मेरे पूर्णा दादा को इच्छित वर दे दीजिये।"

जगन्माता मधुर मुस्कान के साथ बोलीं—'तथास्तु'। इसके बाद पूर्णानन्द के मस्तक को चरण से स्पर्श किया—

उत्तिष्ठ वत्स, मुक्तोऽसि योग निद्रां परित्यज्य।
पश्य मे परमं रूपमथेप्सितं वरं वृणु॥

"पूर्णानन्द, उठो। अब तुम मुक्त हो गये हो। योगनिद्रा त्याग कर मेरा दर्शन करो। मैं तुम्हें वर दूँगी।"

देवी के चरणस्पर्श से पूर्णानन्द जीवित हो उठा। उसने देवीस्तव पाठ करने के बाद साष्टांग प्रणाम किया। दोनों हाथों को जोड़ते हुए उसने कहा—"आज मेरी साधना सफल हो गयी। आपकी कृपा से, यदि वासुदेव मेरे गुरु न बनते तो मुझे यह सौभाग्य प्राप्त न होता। गुरुदेव ने कहा था कि एक दिन तुझे देवीदर्शन होगा। इसी आशा से मैं अब तक जीवित रहा। अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। अगर आप कुछ देना चाहती हैं तो सर्वानन्द के कथन को सत्यरूप में चरितार्थ कर दें। आज जटाधर के दरबार में इसने पूर्णिमा तिथि कहा हैं, जिसके कारण इसका घोर अपमान हुआ है। इसके कथन को सफल कर दें। आपके लिए कुछ भी असाध्य नहीं हैं।"

"ऐसा ही होगा।" इतना कह कर देवी अन्तर्ध्यान हो गयीं।

सारा मेहार चौंक उठा। अपनी आँखों पर किसी को विश्वास नहीं हो रहा था। जो सो रहे थे, उन्हें जगा कर दिखाया गया। जो देखता, वही चौंक उठता—"अरे, यह क्या? अभी आधी रात तक तो घना अँधियारा था और इस वक्त पूर्ण चन्द्रमा कैसे निकल आया?"

सबसे अधिक आश्चर्य जटाधर को हुआ। नींद खुल जाने के बाद से वे बराबर जागते रहे। वे सोचने लगे—"क्या सर्वानन्द ने ठीक कहा था? क्या आज वास्तव में पूर्णिमा है? पर आधी रात तक तो अमावस्या थी। सोने जाने के पहले तक चाँद का कहीं पता नहीं था।" काफी ऊहापोह करने पर भी उनकी समझ में कुछ नहीं आया। इसी चिन्ता में उन्हें फिर नींद नहीं आई।

दूसरे दिन दरबार में उपस्थित पण्डित-मण्डली से इसका रहस्य पूछा गया तो लोग एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। संसार के इतिहास में प्रकृति की यह अद्भुत घटना थी। जटाधर ने सोचा—जिस व्यक्ति ने अमावस्या को पूर्णिमा कहा है, सम्भवत: उसके पास जाने से इसका समाधान हो सकता है।

राजा को अपने घर आते देख आगमाचार्य घबरा उठे। जटाधर ने कहा—"मैं छोटे पण्डित सर्वानन्द से एक बार मिलना चाहता हूँ।"

उस वक्त सर्वानन्द अपने कमरे में कोई पुस्तक पढ़ रहा था। उसके चेहरे से अपूर्व आभा निकल रही थी। जटाधर को देखते ही सर्वानन्द ने पूछा—"कहिये राजन्, कैसे शुभागमन हुआ? कुशल है न?"

सर्वानन्द के रंगढंग से न केवल जटाधर बल्कि बड़े भाई आगमाचार्य को भी विस्मय हुआ। जड़बुद्धि वाले युवक में सहसा यह परिवर्तन अचानक कैसे हो गया? हाव-भाव से यह बोध नहीं हो रहा है कि यह अकाट्य मूर्ख है।

जटाधर ने कहा—"कल दरबार में मुझसे कुछ अभद्रता हो गई थी। इसके लिए क्षमा माँगने आया हूँ। लेकिन एक शंका भी है। अमावस्या के दिन अर्द्धरात्रि के बाद सहसा पूर्णिमा कैसे हो गयी? क्या आपको मालूम है कि इसका क्या रहस्य है?"

सर्वानन्द ने कहा—"यह जगज्जननी की लीला है, अन्यथा अमावस्या कैसे पूर्णिमा के रूप में परिवर्तित हो सकती है? इसका रहस्य वे ही बता सकती हैं। मैं तो जड़बुद्धि ठहरा। अगर वे न चाहतीं तो इस तरह की अविश्वसनीय और अकल्पनीय घटना क्यों होती?"

सामान्य वार्तालाप से ही जटाधर को अनुभव हो गया कि जिसे हम जड़बुद्धि वाला समझते रहे, वह युवक भीतर ही भीतर प्रकाण्ड विद्वान् है। हम अपनी मूर्खता के कारण उसे मूर्ख समझते रहे। ठीक यही स्थिति बड़े भाई आगमाचार्य की रही। वे सर्वानन्द में हुए इस परिवर्तन को समझ नहीं पाये।

इस घटना के कारण पूरे राज्य में उसकी ख्याति फैल गयी। उसकी प्रतिभा को समझने के लिए अनेक ज्योतिषाचार्य, वेदाचार्य आदि आने लगे। आगन्तुक विद्वान् उसका लोहा मान कर वापस चले जाते।

दीपावली के बाद महानिशा के दिन सर्वानन्द अपने आसन पर देवी की आराधना करने बैठा। इसी दिन उसने देवी के दसों रूपों का दर्शन किया। देवी ने उससे कहा—"आज तुम्हें तुम्हारे पूर्वजन्मों के दृश्य दिखाऊँगी। तुम कब कहाँ-कहाँ जन्म लेकर क्या करते रहे, यह सब इस जन्म में देख लो।"[१]

१. 'सर्वानन्द तरंगिनी' नामक पुस्तक के लेखक श्री शिवानन्द ने अपने ममेरे भाई षडानन के कथनानुसार इन जन्मों का उल्लेख किया है।

सर्वानन्द ने देखा कि वे विन्ध्याचल, बदरीनाथ, सिन्धु शैल, गंगासागर, वाराणसी और कामाख्या में साधना करते रहे। एक जन्म में वे पुरी में थे। उन दिनों वहाँ जगन्नाथ मन्दिर नहीं था। रात्रि में उन्हें निर्देश मिला—"कल समुद्र के किनारे चले जाना। घूमते-घामते जहाँ तुम्हें अश्व के श्वेत बाल दिखाई दें, वहाँ से बालू हटाते रहना। कुछ दूर खोदने के बाद मठ का शिखर दिखाई देगा। वह मठ नील माधव का है।" इस निर्देश के आधार पर उन्होंने कार्य किया जो आज जगन्नाथ मन्दिर के नाम से प्रतिष्ठित है। अब इस जन्म में मेहार तीर्थ में पूर्ण साधक बन गये हैं। अब उनका पुनर्जन्म नहीं होगा।

दोपहर का वक्त था। गाँव में एक चूड़ीवाला फेरी लगाता हुआ घूम रहा था।

तालाब के किनारे एक वृक्ष के नीचे आने पर चूड़ीवाले ने देखा—लाल किनारे की साड़ी पहने, गौर वर्ण की एक महिला खड़ी है। उसके चेहरे पर मनोहारी मुस्कान थिरक रही है। पास पहुँचते ही महिला बोली—"सुनो बेटा, अगर तुम्हारे पास अच्छी चूड़ियाँ हों तो मुझे पहना दो।"

चूड़ियाँ पहनने के बाद महिला बोली—"यहाँ मेरे पास पैसे नहीं हैं। तुम एक काम करो। वह जो सामने मकान दिखाई दे रहा है, वहाँ चले जाओ। मेरे लड़के से पैसे माँग लेना। मैं तब तक नहा कर आती हूँ।"

न जाने क्यों चूड़ीवाले को सन्देह हुआ। उसने पूछा—"अगर न दिया तो?"

"देगा क्यों नहीं? उससे कहना ताखे पर हँड़िया है, उसमें मेरे पैसे हैं। कुल दे दे।" इतना कहने के बाद महिला घाट की ओर चली गयी।

मकान के समीप आकर चूड़ीवाला—"भीतर कोई है?" आवाज लगाने लगा। भीतर से सर्वानन्द ने आकर पूछा—"क्या बात है?"

चूड़ीवाले ने कहा—"आपकी माँ ने मुझसे चूड़ियाँ पहनी हैं। दाम के लिए उन्होंने कहा कि मेरे लड़के से जाकर माँग लो।"

सर्वानन्द ने विस्मय के साथ पूछा—"मेरी माँ?"

चूड़ीवाले ने सर्वानन्द को चौंकते देख घबरा कर कहा—"जी हाँ, उन्होंने तो यही कहा था। यह भी बताया कि सामने वाले ताखे पर एक हँड़िया है, जिसमें उनके पैसे रखे हैं, जाकर माँग लूँ।"

सर्वानन्द को सारी बातें रहस्यमय लगीं। भीतर कमरे में आकर हँड़िया उड़ेलते ही उसने देखा—सचमुच उसमें पैसे हैं। सर्वानन्द की माँ का निधन हुए अनेक वर्ष गुजर गए हैं, तब तो यह माँ जगज्जननी ही होंगी। बाहर आकर उसने सारे पैसे देते हुए कहा—"चलो तो जरा। देखूँ मेरी माँ कहाँ है?"

चूड़ीवाला तालाब के किनारे आकर चारों ओर देखते हुए बोला—"यहीं पर वे

खड़ी थीं। यहीं मैंने उन्हें चूड़ियाँ पहनाईं। यह देखिये, एक चूड़ी टूट गयी थी, उसके टुकड़े पड़े हैं।''

इतना सुनते ही सर्वानन्द धम से वहाँ बैठ गया और जमीन से मिट्टी उठा कर सारे शरीर पर मलने लगा। सर्वानन्द की इस हरकत को देख कर चूड़ीवाला भयभीत हो उठा। वहाँ से कुछ दूर हट गया। तभी सर्वानन्द ने कहा—''माँ, तुम कहाँ चली गयीं। मुझ क्यों नहीं दर्शन दिया?''

एकाएक तालाब का पानी हिला और उसमें से दो सुडौल हाथ ऊपर आये, जिनमें चूड़ियाँ चमक रही थीं। दूसरे ही क्षण दोनों हाथ गायब हो गये।

सर्वानन्द ने चूड़ीवाले से कहा—''न जाने किस जन्म के पुण्य से देवी ने तुझे दर्शन दिये। मैं तो अभागा रहा।''

सर्वानन्द को देवी ने दर्शन दिया है—यह बात जो सुनता, वही चकित रह जाता। तब तो वह परम साधक है। उसके स्पर्श से, आशीर्वाद से, कृपा से हमारा कल्याण हो सकता है। वह चाहें तो हमारा दुःख, पीड़ा, दरिद्रता दूर कर सकता है। सर्वानन्द के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें फैलती गयीं। आर्त-पीड़ित लोग उसकी कृपा पाने के लिए आने लगे।

एक दिन दूर किसी गाँव से डोली पर एक घायल व्यक्ति को लाद कर लोग ले आए। सर्वानन्द अपने चिन्तन में डूबा रहा। बाहर से करुण आवाज आई—''ठाकुर, मुझे बचा लीजिये। गरीब आदमी हूँ। परिवार का अकेला व्यक्ति हूँ।''

बाहर डोली पर लेटे हुए वह तीन दिनों तक गुहार लगाता रहा। चौथे दिन सर्वानन्द ने बाहर आकर पीड़ित व्यक्ति से पूछा—''क्या बात है? इतना कलपता क्यों है?''

साथ आये व्यक्ति ने कहा—''ठाकुर, पेड़ पर से गिर जाने के कारण इसका हाथ टूट गया है।''

पास बैठ कर सर्वानन्द ने उसके हाथ पर अपना हाथ फेरते हुए कहा—''चल उठ जा।''

रोगी ही नहीं, उसके साथ आये सभी व्यक्ति एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। क्या ठाकुर का दिमाग खराब हो गया है? जो व्यक्ति दर्द से कराह रहा है, उससे कह रहे हैं—''चल उठ।''

''ठीक तो है, उठ।'' पुनः सर्वानन्द गरजे।

इतने पर भी रोगी जब नहीं उठा तो डोली पर से उसे नीचे ढकेल दिया। आकस्मिक ढंग से गिर जाने पर व्यक्ति का हाथ मिट्टी से लग जाता है। रोगी का हाथ

भी मिट्टी से लगा और तभी उसने अनुभव किया कि उसके हाथ में तनिक भी दर्द नहीं है। खुशी से उछल कर उसने सर्वानन्द के चरण पकड़ लिये।

नित्य आर्त-पीड़ित लोगों की भीड़ दरवाजे पर लगने लगी। किसी को देखते ही वे कहते—"अरे काका, आप क्यों दुःखी हैं? आपकी लड़की कल तक ठीक हो जायेगी। लो, यह प्रसाद ले जाकर अभी खिला दो।"

दूसरे को देख कर कहते—"लड़के को इतना मारोगे तो वह घर से भागेगा ही। अब क्यों रोते हो। भाग गया है, जाकर अपना खोजो।"

आगन्तुक फफक कर रो पड़ा। बोला—"उसे वापस बुला दो ठाकुर, मैं कसम खाता हूँ, अब उसे कुछ नहीं कहूँगा।"

कुछ देर चुप रहने के बाद सर्वानन्द ने कहा—"अब उसे मारना या गाली देना बन्द करना पड़ेगा। चौथे दिन अपने आप रात को आ जायेगा। उसे माँ का स्नेह खींच लायेगा। जाओ, मेरी यह बात याद रखना।"

इसके बाद एक दिन एक युवती को देखने पर कह उठे—"चिन्ता मत करो दीदी। इस बार चाँद-सा बेटा होगा। यह लो, रुद्राक्ष के इस दाने की माला उसे पहना देना। फिर उसकी अकाल मृत्यु नहीं होगी। सुबह-शाम भगवती की पूजा करती रहना।"

अगर सर्वानन्द का मूड ठीक है तो लोगों का उपकार हो जाता था। यदि किसी कारण से उनका रूप उग्र हो गया है तो कोई उनके निकट जाने का साहस नहीं करता था। उस समय केवल एक व्यक्ति उन्हें शान्त कर पाता था। वे थे—पूर्णा दादा। पूर्णा दादा ज्योंही सामने आ जाते, त्योंही सर्वानन्द भोला-भाला शिशु बन जाता। सर्वानन्द की इस कमजोरी को जो लोग जान लेते थे, वे सीधे सर्वानन्द के पास न जाकर पूर्णानन्द के पास आते। उनके माध्यम से अपना दुःखड़ा सर्वानन्द के पास पहुँचाते थे।

इस प्रकार बीमार को स्वास्थ्य-लाभ का आशीर्वाद, तो किसी के पति के गायब होने पर बुलाने के लिए प्रसाद देना पड़ता था।

इन सभी कार्यों को करते हुए सर्वानन्द अपनी साधना में लगा रहा। पूर्णानन्द छाया की भाँति हमेशा पीछे-पीछे लगा रहता था। सच तो यह है कि पूर्णा दादा के बिना सर्वानन्द कुछ कर नहीं पाता था। इधर सर्वानन्द नियमित रूप से जीन वृक्ष के नीचे स्थित सिद्ध आसन पर जाता और वहाँ घण्टों योग-साधना करता। इस बात को पूर्णा दादा के अलावा अन्य कोई जान नहीं पाता था।

एक दिन देर तक जब सर्वानन्द ध्यानस्थ रहा, तब पूर्णानन्द जरा परेशान हो उठा। रात्रि का प्रथम पहर बीत चुका था। चारों ओर जंगली जानवर चक्कर काट रहे थे। स्वामिभक्त सेवक अपने गुरु के पौत्र की रखवाली में चौकस था। पूर्णानन्द की परेशानी

का कारण वल्लभा थी। जब तक सर्वानन्द भोजन नहीं कर लेगा, तब तक वह भी नहीं करेगी। इस जंगल में उसे छोड़ कर जाने की इच्छा नहीं हो रही थी।

एकाएक सर्वानन्द की आवाज आई—"क्या सोच रहे हो, पूर्णा दादा।"

पूर्णानन्द ने कहा—"रात काफी हो गई है। चलो, घर चलें। बहू थाली परोस कर इन्तजार कर रही होगी।"

सर्वानन्द ने कहा—"आज मैं घर वापस नहीं जाऊँगा। कार्य सम्पूर्ण होने में देर होगी। मेरे लिए चिन्ता मत करो। मुझे भूख भी नहीं है। आज का अनुष्ठान मुझे पूर्ण करना है।"

पूर्णानन्द चुप रहा। वह स्वयं भूखा रह गया। जब तक सर्वानन्द नहीं चलेगा, तब तक वह यहीं बैठा रहेगा। भोर के समय उसने सोचा—अब डर नहीं है। एक बार घर जाकर लोगों को समाचार दे आऊँ। घर पर आकर देखा—सभी अपने-अपने कार्य में व्यस्त हैं। किसी को सर्वानन्द के बारे में कोई चिन्ता नहीं है। पूर्णानन्द ने सोचा—शायद सर्वानन्द के न आने के कारण बहू रात को बिना खाये ही रह गयी होगी। उसने पूछा—"बहू, तुमने रात को भोजन किया था?"

वल्लभा ने कहा—"क्यों? भोजन क्यों नहीं करूँगी? यह ठीक है कि कल जरा देर से भोजन करना पड़ा था, क्योंकि वे अधिक रात गये आये थे।"

पूर्णानन्द ने विस्मय से पूछा—"क्या? सर्वा रात को आया था? तब तो उसने भोजन किया होगा?"

वल्लभा ने कहा—"नहीं, भोजन उन्होंने नहीं किया। बोले—आज वापस आने में जरा देर हो गयी। मैं भोजन नहीं करूँगा। भूख नहीं है। तुम लोग खाना खा लेना। मैं अभी जा रहा हूँ। मेरे साथ पूर्णा दादा हैं। मेरे बारे में चिन्तित होने की जरूरत नहीं। पूर्णा दादा भी नहीं खायेंगे।"

पूर्णानन्द को अच्छी तरह याद है कि सर्वानन्द रात भर अपने आसन पर बैठा रहा। एक क्षण के लिये भी नहीं उठा था। वह स्वयं सर्वानन्द की चौंकसी करता रहा। अब योगी पूर्णानन्द को विश्वास हो गया कि मेरा 'सर्व' साधना के उच्च शिखर पर पहुँच गया है। उसे अलौकिक शक्ति प्राप्त हो गयी है। मन ही मन देवी भगवती को उसने प्रणाम किया। अगर वल्लभा गौर से देखती तो उसकी आँखों में खुशी के आँसू नजर आते।

इस बीच एक अप्रिय घटना हो गयी। सम्भवत: यह होना ही था, वर्ना सर्वानन्द मेहार से अन्यत्र न जाते। जटाधर कश्मीर घूमने गये थे। वहाँ से एक कीमती दुशाला सर्वानन्द के लिए खरीद लाये, कभी का जड़बुद्धि वाला व्यक्ति आज मेहार का गौरव है। एक दिन उन्हें दरबार में बुला कर सम्मान के साथ दुशाला भेंट किया गया। उस

दुशाले को कन्धे पर रख कर सर्वानन्द चारों ओर घूमते थे। एक दिन एक वारांगना ने कहा—"ठाकुर, इतनी सर्दी पड़ रही है और दुशाला क्यों नहीं ओढ़ते?"

—"मुझे सर्दी नहीं लगती।"

वारांगना ने कहा—"तब मुझे दे दीजिये। मैं जाड़े में इसका उपयोग करूँगी।"

सर्वानन्द ने दुशाला उसकी ओर फेंकते हुए कहा—"अच्छा, ले माँ, तू ओढ़ना।"

राह चलते लोगों ने इस दृश्य को आश्चर्य से देखा। एक वारांगना को सर्वानन्द ठाकुर ने कीमती दुशाला दे दिया। लोगों को सन्देह हुआ। बात जटाधर के पास पहुँची। सर्वानन्द के प्रति संचित श्रद्धा इस अपमान के कारण गायब हो गई। मेरा उपहार एक वारांगना को सर्वानन्द ने कैसे दे दिया? उन्हें एक दिन दरबार में बुलाया गया।

जटाधर अपमान से पीड़ित था। तुरन्त प्रश्न हुआ—"कहिये आचार्यजी, आपके लिये उतनी दूर से श्रद्धापूर्वक दुशाला खरीद लाया और आप उसका उपयोग भी नहीं करते?"

सर्वानन्द के जवाब देने के पहले ही एक पार्षद ने व्यंग्य किया—"जब दुशाला पास में हो तभी तो उपयोग करेंगे। सुना है कि आपने अपनी किसी चहेती को दे दिया है।"

सर्वानन्द को रहस्य समझते देर नहीं लगी। उसने कहा—"दुशाला तो मेरे घर पर है।"

जटाधर इस झूठ पर और चिढ़ गये। बोले—"आपके घर पर है? सुना है कि आपने किसी वारांगना को दे दिया है। अगर आपके घर है तो उसे मँगवाइये। जरा मैं भी देखूँ।"

सर्वानन्द ने साथ आये अपने भांजे से कहा—"षडानन, तुम जाकर अपनी मामी से दुशाला माँग लाओ।"

षडानन घर आकर आँगन में खड़े होकर पुकारने लगा—"मामी, ओ मामी, घर में राजा साहब ने जो दुशाला मामा को दिया था, उसे दे दो।"

थोड़ी देर में एक हाथ दरवाजे की सीध से बाहर निकला, जिसमें दुशाला था। षडानन के पास आने के पहले ही मामी ने उसे आँगन में फेंक दिया। मामी का व्यवहार षडानन के लिये विस्मयजनक था। उसने यह भी अनुभव किया कि यह हाथ मामी का नहीं था। देर होते देख वह दुशाला लेकर झटपट चल पड़ा। बाहर कुछ दूर आते ही मामीजी से मुलाकात हुई। षडानन को देख कर वल्लभा ने पूछा—"क्या बात है षडानन? कैसे आये थे?"

लम्हे भर में षडानन सारा रहस्य समझ गया। दुशाला देने वाली मामी नहीं, स्वयं माँ जगदम्बा थीं जो पुत्र के सम्मान की रक्षा के लिए मामी की भूमिका निभा रही थीं। षडानन ने कहा—"कुछ नहीं मामी।" इतना कह कर वह तेजी से आगे बढ़ गया।

षडानन के आने के पहले ही जटाधर ने उस गणिका के यहाँ से सर्वानन्द द्वारा दिये दुशाले को मँगा लिया था। दोनों दुशालों को ठीक से परखने पर जरा-सा भी अन्तर दिखाई नहीं दिया। यह देख कर जटाधर को अपार आश्चर्य हुआ। बड़े ही मुलायम स्वर में जटाधर ने कहा—"यह कैसे हुआ ठाकुर? मैं अपनी गलतफहमी के लिए क्षमा चाहता हूँ।"

सर्वानन्द का चेहरा कठोर हो गया। उसने कहा—"जहाँ का अधिपति मुझे अविश्वास की दृष्टि से देखता है, उसके राज्य में न रहना ही मेरे लिए मंगलकारी है।"

इतना कह कर सर्वानन्द दरबार से बाहर चले आये। इस समाचार से वल्लभा काफी चिन्तित हुई। उसे सान्त्वना देते हुए सर्वानन्द ने कहा—"तुम्हें चिन्ता करने की जरूरत नहीं। यहाँ का कार्य मैं पूरा कर चुका हूँ। शिवनाथ को शक्तिमन्त्र आज ही दे दूँगा। उसके कारण तुम्हारा कोई अमंगल नहीं होगा। स्वयं तुम भी अधिक दिनों तक यहाँ नहीं रहोगी।"

सर्वानन्द को हमेशा के लिए मेहार छोड़ कर जाते देख परिवार तथा पुरजन के लोगों ने काफी समझाया। स्वयं जटाधर भी अनुरोध करने आये। सभी लोगों के अनुरोध को ठुकरा कर एक दिन सर्वानन्द मेहार से चल पड़ा। इस यात्रा में उनके सहयोगी हुए पितृतुल्य योगी पूर्णानन्द और भाँजा षडानन।

तीनों व्यक्ति यात्रा करते हुए जसोर आये। यहाँ के राजा थे—प्रतापादित्य। आपकी सभा के सभा-पण्डित थे—चन्द्रचूड़ तर्कालंकार आगमवागीश। आप अधिकतर सेनहाटी गाँव में रहते थे। वहाँ एक चतुष्पाठी की स्थापना कर छात्रों को पढ़ाया करते थे। सम्पूर्ण बंगाल में आगमशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे।

एक दिन आगमवागीश ने देखा कि एक गौर वर्ण का युवक उनके पास आया। प्रणाम करने के बाद उसने कहा—"मेरा नाम सर्वानन्द भट्टाचार्य है। आपसे आगमशास्त्र पढ़ने के लिये आया हूँ। कृपया मुझे शिष्य के रूप में ग्रहण करें।"

"यह तो प्रसन्नता की बात है, वत्स! आओ।" आगमवागीश ने सादर स्वागत किया।

सर्वानन्द अपने को छिपा कर यहाँ अध्ययन करते रहे। कुछ दिनों बाद आगमवागीश ने अनुभव किया कि उनका छात्र अत्यन्त मेधावी है।

दिन को आगमवागीश से आगमशास्त्र का अध्ययन और रात को यौगिक क्रियाएँ करते कई वर्ष व्यतीत हो गये।

एक दिन स्नान के बाद जब सर्वानन्द गुरुदेव के पास आये तो देखा—वे उदास बैठे हैं।

उसने पूछा—"क्या बात है गुरुदेव? आज आप बड़े विषण्ण मालूम पड़ रहे हैं।"

आगमवागीश ने कहा—"बात ही कुछ ऐसी है। दक्षिण भारत से एक विद्वान् यहाँ शास्त्रार्थ करने आया है। कल दरबार में उससे शास्त्रार्थ होगा।"

सर्वानन्द ने कहा—"तब चिन्ता किस बात की। आप तो महान् शास्त्रज्ञ हैं।"

आगमवागीश ने कहा—"बात ठीक है। मुश्किल यह है कि वृद्ध होने के कारण स्मृति कमजोर हो गयी है। कहीं पराजित हो गया तो मेरा ही नहीं, जसोर का सम्मान समाप्त हो जायेगा।"

सर्वानन्द को समझते देर नहीं लगी कि भावी आशंका से गुरुदेव भयभीत हैं। अब इनमें युवावस्था जैसा आत्मबल नहीं है। सर्वानन्द ने कहा—"जसोर का सम्मान अक्षुण्ण रहेगा। राजा से कह कर शास्त्रार्थ की तिथि एक दिन आगे बढ़ा दीजिये। उनसे कहिये कि आगन्तुक विद्वान् को पहले मेरे शिष्य से शास्त्रार्थ करना पड़ेगा। जब वह पराजित हो जायेगा, तब मुझसे शास्त्रार्थ होगा।"

आगमवागीश की आँखें फैल गयीं। जो विद्वान् दिग्विजयी होकर मुझसे शास्त्रार्थ करने आया है, उससे मेरा छात्र शास्त्रार्थ करेगा? उन्होंने सोचा, इस शास्त्रार्थ से वे आगन्तुक विद्वान् की विद्वत्ता का आकलन कर लेंगे।

दूसरे दिन दरबार में सभी लोग उपस्थित हुए। एक ओर सर्वानन्द और आगमवागीश, मध्य में राजा और दूसरी ओर का सिंहासन आगन्तुक विद्वान् के लिये था। समय उत्तीर्ण होने पर भी जब आगन्तुक विद्वान् नहीं आये, तब लोग आलोचना करने लगे। एकाएक एक व्यक्ति ने दरबार में उपस्थित होकर महाराज को एक पत्र दिया। महाराज की आज्ञा से उस पत्र को मन्त्री ने पढ़ कर सुनाया—

"महाराजाधिराज, कल रात मैंने एक स्वप्न देखा। मेरे इष्टदेव ने मुझे बताया कि कल तुम जिस व्यक्ति से शास्त्रार्थ करोगे, वह सामान्य पण्डित नहीं है। उसकी जिह्वा पर सरस्वती का वास है। वह जगन्माता का पुत्र है। उससे शास्त्रार्थ करने पर विजयी नहीं हो सकोगे। मैं बिना शास्त्रार्थ किये अपनी पराजय स्वीकार कर रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि आप तथा जसोर की विद्वत्-मण्डली मुझे क्षमा कर देगी।"

पत्र पाठ के बाद देखा गया—सर्वानन्द का सिंहासन खाली था।

चिन्तित रूप में आगमवागीश घर लौटे। छात्र के रूप में यह कौन सिद्ध पुरुष उनके यहाँ आ गया? एक अव्यक्त आनन्द से उनका हृदय उल्लसित हो उठा।

सर्वानन्द को देखते ही उसे गले से लगाते हुए उन्होंने कहा—"आज तुम्हारे कारण मेरा सम्मान बढ़ा है।"

इस घटना के कारण सर्वानन्द की चर्चा सर्वत्र होने लगी। सर्वानन्द यहाँ बिना आत्मपरिचय दिये अध्ययन करता रहा। लेकिन अब बढ़ती भीड़ के कारण वह परेशान हो उठा। एक दिन उसने आगमवागीश से कहा—"आपकी कृपा से मेरा अध्ययन-कार्य पूर्ण हो गया है। अब मैं वाराणसी जाने की अनुमति चाहता हूँ।"

इधर एक अर्से से आगमवागीश सर्वानन्द को यहाँ स्थायी रूप से रखने का उपाय सोच रहे थे। आज मौका पाकर वे बोल उठे—"जाना चाहते हो बेटा? पर अभी तक तुमने मुझे गुरु-दक्षिणा नहीं दी।"

सर्वानन्द ने विनीत-भाव से कहा—"आज्ञा कीजिये गुरुदेव।"

—"मैं चाहता हूँ कि मुझे कन्यादाय से मुक्ति दो। मेरी एकमात्र कन्या को तुम ग्रहण कर लो।"

आगमवागीश के इस प्रस्ताव को सुन कर वह चौंक उठा। कहा—"गुरुदेव, मैं विवाहित ही नहीं, एक पुत्र का पिता हूँ और मेरी उम्र काफी हो गयी है।"

आगमवागीश ने कहा—"इससे क्या हुआ? कुलीन ब्राह्मण एक से अधिक विवाह करते हैं। पुरुष की कोई उम्र नहीं होती। एक बात बता दूँ, मेरी बेटी तुम्हारे मार्ग में बाधक नहीं बनेगी। मैं गुरु-दक्षिणा के रूप में यही स्वीकार करूँगा।"

सर्वानन्द कुछ देर तक मौन रहा। जगज्जननी का ध्यान करने के बाद उसने कहा—"ठीक है गुरुदेव, आपकी इच्छा पूर्ण हो।"

गौरी देवी से विवाह के बाद सर्वानन्द तान्त्रिक साधना में निमग्न हो गये। कई वर्ष बाद गौरी देवी को एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई।

जसोर के निवासी सर्वानन्द को अकेले में बड़बड़ाते देखते तो उन्हें आश्चर्य होता। कभी-कभी कोई पूछ बैठता—"किससे बातें कर रहे हो, ठाकुर?"

—"मैं अपनी माँ से बातें करता हूँ।"

आसपास किसी को न देख कर अनजान व्यक्ति उन्हें पागल समझता और जानकार यह समझते कि तान्त्रिक व्यक्ति है, कुछ भी कर सकता है। धीरे-धीरे बालक बड़ा हुआ। आगमवागीश की इच्छा हुई कि अपने नाती का अन्नप्राशन धूमधाम से करें। एक तो वे स्वयं प्रतिष्ठित पण्डित हैं, दूसरे जामाता कम प्रतिभावान नहीं है। वे अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रबन्ध करने लगे। सर्वानन्द इस ओर से पूर्ण उदासीन रहा। अन्नप्राशन का दिन समीप आ जाने पर भी जब सर्वानन्द बेखबर रहा, तब आगमवागीश ने कहा—"बेटा, इस तरह निःस्पृह रहोगे तो कैसे काम चलेगा। प्रथम नाती का अन्नप्राशन है, गाँव भर के लोग आयेंगे।"

सर्वानन्द ने कहा—"आप जो कार्यभार मुझे देंगे, उसे कर दूँगा। मेरी ओर से आप निश्चिन्त रहें।"

आगमवागीश ने बरतनों, सामानों तथा कार्य करने वाले लोगों की सूची देते हुए कहा—"कल ही आयोजन है। मैं कैसे निश्चिन्त रहूँ?"

इतना कहकर वे भुनभुनाते हुए भीतर चले गये। उन्होंने समझ लिया कि कल सब गुड़-गोबर होगा। अचानक भोर के समय कलरव सुनकर उनकी नींद खुल गई। तालाब के किनारे आकर उन्होंने देखा कि सैकड़ों लोग मौजूद हैं। कोई कड़ाही माँज रहा है, तो कोई पौना, कलछुल साफ कर रहा है। बड़े-बड़े चूल्हे बन रहे हैं। लकड़ी चीरी जा रही है। तरकारी, आटा, चावल, दूध आदि का भरपूर प्रबन्ध हो गया है। सारा दृश्य देख कर आगमवागीश को चक्कर-सा आ गया।

समारोह में नवजात शिशु का अन्नप्राशन हुआ। जिसका नाम रखा गया—शिवानन्द। यह सब कैसे हुआ और किसने रात भर में किया, इसे सर्वानन्द के अलावा अन्य कोई जान नहीं सका। अपने जामाता के प्रभाव को देख कर आगमवागीश स्वतः चमत्कृत थे।

शिवानन्द भी अपने पिता से बीजमन्त्र प्राप्त कर दिग्विजयी पण्डित हुआ था। उन्होंने अपने पिता के सम्बन्ध में 'सर्वोल्लास तन्त्र' पुस्तकें लिखी। इसके अलावा 'त्रिपुरार्चन दीपिका', 'नवार्णव-पूजा-पद्धति' आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं, जो तन्त्र-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। शिवानन्द के सौतेले बड़े भाई ने अपने पिता के बारे में विस्तार से विवरण तैयार किया है—'सर्वानन्द तरंगिणी' में। सर्वानन्द के वंश में अधिकतर उत्तम पुरुष तान्त्रिक हुए और वे लोग बंगाल के विभिन्न शहरों में रहते थे।

बरसात बीत जाने के बाद पुनः एक दिन सर्वानन्द ने अपने श्वशुर से कहा—"अब मुझे आज्ञा दीजिये, गुरुदेव, यहाँ का काम समाप्त हो गया है। मेरी बहुत दिनों से इच्छा है कि वाराणसी जाकर पठन-पाठन करूँ।"

आगमवागीश तथा गौरी ने काफी अनुनय-विनय किया, पर सर्वानन्द सभी की बातों की उपेक्षा कर वाराणसी की ओर रवाना हो गये। साथ में पूर्णानन्द और षडानन थे।

वाराणसी नगर में प्रवेश करते ही उन्हें सर्वप्रथम एक ध्वनि सुनाई दी—"जय शिव शम्भो।"

इस ध्वनि को सुनते ही उनका हृदय आनन्द से पुलकित हो उठा। उन्हें लगा, जैसे इसी ध्वनि की तलाश में वे अब तक बेचैन थे। गंगा-स्नान के बाद तीनों व्यक्ति शारदा मठ में आये। यहाँ उन्हें सादर आश्रय दिया गया। मठ के भीतर भद्रकाली की

प्रतिमा थी। सर्वानन्द नित्य इस देवी की तान्त्रिक-पद्धति से पूजा करने लगे। जगन्माता की कृपा इन पर सर्वदा रही।

थोड़े ही दिनों में काशी के नागरिकों में इनकी प्रतिभा, वाक्-सिद्धि की ख्याति बढ़ गई। काशी में तान्त्रिकों का प्रभाव कभी नहीं रहा। बौद्धों के बाद शंकराचार्य के अनुयायियों का दबदबा था। ज्ञातव्य है कि काशी की ख्याति बाहरी विद्वानों के कारण बढ़ी है। स्थानीय पण्डितों का कोई महत्त्व नहीं रहा।

सर्वानन्द की बढ़ती प्रतिष्ठा से दण्डी स्वामी लोग नाराज हो उठे। उन लोगों ने सर्वानन्द के विरुद्ध षड्यंत्र करना प्रारम्भ किया। उन्होंने कहना शुरू किया—सर्वानन्द स्वामी नहीं, भाण्ड है। साधु-समाज का कलंक है, आदि-आदि।

इस अप्रतिष्ठा से सर्वानन्द चिन्तित हो उठे। उन्होंने सोचा कि इन मूढ़ लोगों को बुला कर समझाना चाहिए। उन्होंने भण्डारे का आयोजन किया। निमन्त्रण भेजने पर दण्डी स्वामियों ने आने से इन्कार कर दिया।

अन्त में पूर्णानन्द और षडानन दोनों प्रत्येक दण्डी स्वामी के पास जाकर हाथ जोड़ कर विनय करने लगे। महन्तों को मनाया गया। सर्वानन्द को इतना नरम होते देख सभी ने उनके द्वारा आयोजित भण्डारे में आना स्वीकार किया।

असली घटना भोजन के समय हुई। सभी यह देख रहे थे कि पत्तल पर पूरी, कचौड़ी, रायता, लड्डू, चटनी आदि परोसे गये हैं; पर जब कौर मुँह के पास ले जा रहे हैं, तो वही मांस-मछली बन जा रहा है। जल शराब बन गया है। सारा दण्डी-समाज इस चमत्कार से हतप्रभ हो गया।

तभी एक वृद्ध स्वामी ने कहा—"अगर सर्वानन्द स्वामी चमत्कार दिखा रहे हैं तो आप लोग भी दिखाइये। पत्तल पर तो सात्त्विक भोजन परोसा जा रहा है। आपके स्पर्श-दोष से तामसिक पदार्थ बन रहा है। इसमें सर्वानन्द का क्या दोष?"

"आप लोग केवल भाण्ड साधु हैं। वास्तविक योगी को पहचान नहीं पा रहे हैं। वह देवी का भक्त है। उनका वरद पुत्र है। देवी की असीम कृपा उस पर है। अच्छा हो, हम सब उससे क्षमा माँग लें।"

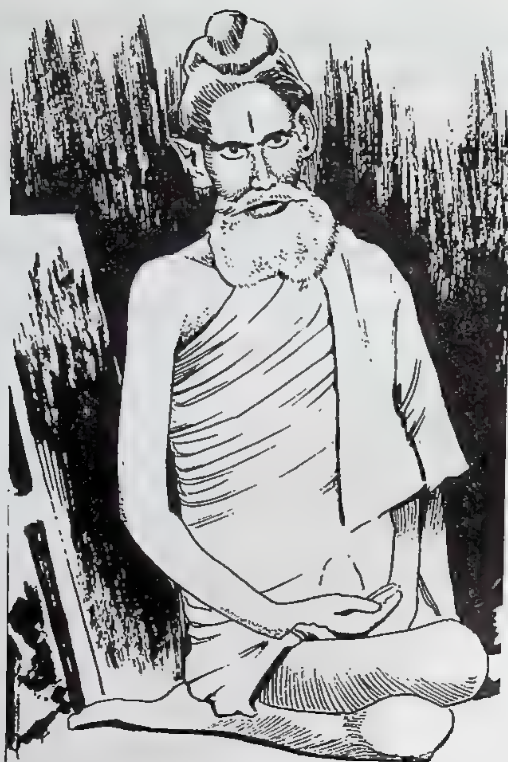
सर्वानन्द भी यही चाहते थे। दण्डी स्वामियों का अहम दूर हो जाये। उन्हें समझने में देर नहीं लगी कि सर्वानन्द उच्च-कोटि का साधक है। उससे बैर रखना, अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारने के बराबर है। इस घटना के बाद दण्डी स्वामियों का उपद्रव शान्त हो गया। वे सर्वानन्द का आदर करने लगे।

लेकिन यह आदर सर्वानन्द को रास नहीं आया। वे और ऊपर उठना चाहते थे। एक दिन षडानन और पूर्णानन्द को बिना कोई सूचना दिये वे अन्तर्ध्यान हो गये। फिर उनकी कोई सूचना इन्हें कभी प्राप्त नहीं हुई।

सर वुडरफ ने (जिन्होंने स्वामी सर्वानन्द की जीवनी लिखी है) कहा है—"सर्वानन्द आज भी कायव्यूह योगाभ्यास करते रहने के कारण जीवित हैं। मेरे एक संवाददाता से एक सिद्ध महापुरुष की मुलाकात एक बार हुई थी। बातचीत के सिलसिले में सिद्ध महापुरुष ने मेरे संवाददाता को बताया कि चम्पकारण्य में स्वामी सर्वानन्द से मेरी मुलाकात हुई थी।"

बाद में उक्त सिद्ध महापुरुष न जाने कहाँ चले गये वर्ना सर्वानन्द के बारे में विशेष जानकारी प्राप्त होती।





२

लोकनाथ ब्रह्मचारी

दामोदर नदी के किनारे स्थित एक छोटा-सा गाँव है, जिसका नाम है—बेड़ू। शान्त परिवेश। आम, जामुन, अमरूद, कटहल आदि के अनेक वृक्ष हैं। ब्राह्मण, ठाकुर, वैश्य और शूद्र सभी वर्णों के लोग हिल-मिल कर रहते हैं। कृषि-प्रधान क्षेत्र होने के कारण अधिकतर लोग खेती करते हैं। यहाँ की मुख्य उपज है—धान और पाट। प्रत्येक किसान के घर में कुठिल्ला है। ग्वाला दूध और तंतुवाय कपड़ा देते हैं। कुम्हार मिट्टी के बर्तन और लोहार कुल्हाड़ी, हल, तावा, कढ़ाही, कलछुल आदि मुहैया कराते हैं। इनके अलावा नाई, धोबी, मोची आदि अपना-अपना काम करते हैं। सप्ताह में दो बार हाट लगती है। लोग अपनी जरूरत की सामग्री खरीद लेते हैं। झगड़ा होने पर आपस में समझौता कर लेते हैं।

गाँव के एक किनारे बारहदरी है, जहाँ प्राय: जात्रा, कवियाल, गाना-बजाना

होता है। अपने दैनिक कार्यों से खाली होने पर लोग यहाँ आकर अपना मनोरंजन करते हैं। इसी गाँव में बनर्जी बाबू सपरिवार रहते हैं। इस समय वे ओसारे में चुपचाप बैठे हुक्का पी रहे हैं। चिन्तित मुद्रा में कभी-कभी घर की ओर देख लेते हैं।

सहसा घर के भीतर से एक महिला प्रसन्नवदन बाहर आकर बोली—"बधाई हो बनर्जी महाशय, चाँद का टुकड़ा पैदा हुआ है। अब गाँव के लोगों का मुँह मीठा कराना पड़ेगा।"

चिन्तित चेहरे पर आनन्द की लहरें नृत्य करने लगीं। बोले—"जरूर-जरूर। यह भी कोई कहने की बात है। सबसे पहले तुम कर लो।"

महिला ने कहा—"अभी तो सौरी (प्रसूति) का छूत है। फिर आऊँगी।"

लड़का धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। अन्नप्राशन के बाद उसका नाम रखा गया—सीतानाथ। बनर्जी बाबू का यह सबसे कनिष्ठ पुत्र था। बालक ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया त्यों-त्यों माँ-बाप ही नहीं, पूरा परिवार चिन्तित रहने लगा। न तो वह अपने किसी मित्र से मिलता या खेलता था और न किसी से हँसता-बोलता था। अक्सर घर के एक ओर चुपचाप बैठा न जाने क्या सोचा करता था। व्यंग्य, डाँट-फटकार का उस पर कोई असर नहीं होता था। पिता को कोई कारण समझ में नहीं आया। इधर लड़का बालक से किशोर बन गया।

गाँव के अनुभवी बूढ़ों ने राय दी कि घर के सभी लड़के विवाहित हैं। केवल यही क्वांरा है। आप इसका विवाह कर दीजिये। पत्नी के आने पर इसका वैराग्य-भाव दूर हो जायेगा। कुलीन ब्राह्मण का लड़का है। लड़की वालों की लाइन लग जायेगी। किसी सद्‌गृहस्थ लड़की को चुन लीजिए।

बनर्जी बाबू को यह राय पसन्द आ गयी। वे उपयुक्त लड़की की तलाश करने लगे। घर की बहुओं में इस विषय पर चर्चा होने लगी। अपने विवाह की भनक लगते ही सीतानाथ नाराज हो गया। उसने दृढ़ता के साथ अपने पिता से कहा—"मैं विवाह नहीं करूँगा। आप कृपया भविष्य में इसके लिये कष्ट न करें।"

लड़के का विरोध देख कर बनर्जी बाबू को पुन: जोर देने का साहस नहीं हुआ। जो लड़का विवाह नहीं करना चाहता, उसके मत्थे लड़की मढ़ना ठीक नहीं है। एक दिन माँ का निधन हो गया। पत्नी के जाने के बाद बनर्जी बाबू उदास रहने लगे। अन्त में एक दिन वे भी चले गये। धीरे-धीरे सभी भाई वृद्ध हो गये। नाती-पोतों से घर भर गया। एक दिन सभी भाईयों को यह देख कर आश्चर्य हुआ कि सबके पीछे आने वाला सीतानाथ सबसे आगे चला गया। केवल चालीस वर्ष की उम्र में।

अपनी मृत्यु के बाद सीतानाथ ने आश्चर्य के साथ देखा कि वह एक अनजाने देश में आ गया है। यहाँ न रोग है और न शोक। जरा भी नहीं है। सभी चिर युवा हैं,

प्रसन्न हैं। इस लोक को वह जितनी धीरता से देखता, उसे उतना ही आश्चर्य होता। लेकिन पता नहीं, कौन अलक्ष्य-भाव से अक्सर उसके कानों के पास आकर कहता—"इतनी जल्दी तुम क्यों चले आये? अभी तुम्हें वहाँ अनेक कार्य करने हैं। जब तक शेष कार्यों को पूरा नहीं कर लोगे, तब तक यहाँ नहीं रह पाओगे। पुनः तुम्हें वापस जाना पड़ेगा। वहाँ कुछ ऐसी समस्याएँ हैं, जिन्हें तुम्हें सुलझाना है। जाओ, अब देर मत करो।"

मनुष्य को अपने कर्मभोग के लिये बार-बार जन्म लेना पड़ता है। सीतानाथ को अपने पूर्वकर्मों के लिए पुनः इस पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ा। इस बार वे उसी बंगाल प्रांत में लोकनाथ की भूमिका में अवतरित हुए।

चौबीस परगना जिले के कचुआ ग्राम में पण्डित रामनारायण घोषाल की ख्याति दूर-दूर तक है। कट्टर हिन्दू, देव-द्विजों के प्रति निष्ठावान। मकान के बाहर बैठे इष्ट नाम जप रहे थे। भीतर से पत्नी की प्रसव-वेदना की आवाज आ रही थी। थोड़ी देर बात शंख तथा मंगल ध्वनि की आवाजें आने लगीं। घोषाल महाशय को समझते देर नहीं लगी कि परिवार में एक नये प्राणी का आगमन हो गया है। प्रसूति-गृह में आकर उन्होंने देखा—जमीन पर चाँद का एक टुकड़ा है, जिसकी आभा से पत्नी का चेहरा चमक रहा है। यह सन् १७३१ ई. की घटना है।

प्रसूति-गृह से बाहर आते ही उनकी आँखें एक अनजाने आनन्द से चमक उठीं। बहुत दिनों से उनके मन में एक आकांक्षा पल रही थी। वे स्वयं भी चाह रहे थे कि इस बार भगवान् उन्हें पुत्र दें, ताकि उनकी इच्छा-पूर्ति हो सके। मन में सन्देह था कि कहीं पुत्री हुई तो उनकी कामना पूरी न हो सकेगी। भगवान् की असीम कृपा से अब अपनी उस इच्छा को अवश्य पूर्ण करेंगे। दरअसल वे अपने एक पुत्र को संन्यासी बनाना चाहते थे। हर बार पत्नी विरोध करती रही। लगातार तीन पुत्रों के बारे में विरोध होता रहा। इस बार गर्भवती होते ही पत्नी ने कहा—"अब तक मैं तुम्हारी बात नहीं मानती थी। अगर इस बार लड़का हुआ तो तुम उसे संन्यास में दीक्षित कर लेना। मैं विरोध नहीं करूँगी।"

माँ के स्नेह के साये में बच्चा बड़ा होता गया। अन्नप्राशन और नामकरण हुआ। नाम रखा गया—लोकनाथ। घोषाल महाशय उसे देख कर प्रसन्न होते। कभी-कभी उसके साथ खेलने वाली लड़की आकर कहती—"ताऊजी! लोकनाथ भैया को न जाने क्या हो गया है। वे न बोल रहे हैं और न आँखें खोल रहे हैं। धक्का देने पर भी कुछ नहीं बोलते।"

लोकनाथ के साथ अहरह खेलने वाली लड़की सुमित्रा लोकनाथ के लिए झाड़ू लगा कर जगह साफ करती, आसन बिछाती, खेल का सामान लाती, पूजा के लिए

फूल, बेलपत्ती, दूर्वा लाती। लोकनाथ पूजा करते समय अक्सर ध्यानस्थ हो जाता। उसकी आँखें स्थिर हो जातीं और सारा शरीर जड़वत् हो जाता था। यह दृश्य देख कर सुमित्रा घबरा उठती थी। पण्डित रामनारायण घोषाल ने एक दिन स्वयं अपनी आँखों से यह दृश्य देखा। लोकनाथ के भाव को देख कर समझ गये कि उनका संकल्प ठीक है। संन्यासी के सारे लक्षण बालक में हैं। शायद इसलिए पत्नी दैवकृपा से राजी हुई है।

शुभ दिन देख कर घोषाल महाशय एक दिन भारत-प्रसिद्ध मनीषी भगवान् गांगुली के यहाँ अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए गये। गांगुलीजी उस समय ताड़पत्रों का अध्ययन कर रहे थे। इन्हें देखते ही उन्होंने पूछा—"कहिये, घोषाल महाशय, कैसे कष्ट किया आपने? आसन लेकर बैठ जाइये।"

घोषाल महाशय ने प्रणाम करने के बाद सारी कहानी सुनाते हुए कहा—"पत्नी भी राजी है। इस समय आपके बराबर विद्वान् बंगाल में अन्य कोई नहीं है। आप मेरे बालक के गुरु बन कर उसे संन्यास दें।"

"मैं?" भगवान् गांगुली चौंके। पुनः उन्होंने कहा—"इसके लिए मुझे कुछ सोचने का अवसर दें।"

आज वह शुभ दिन है, जब लोकनाथ का उपनयन-संस्कार सम्पन्न होगा। गाँव के अधिकांश लोग इस समारोह को देखने आये थे। अपने बालक को कोई जल्द संन्यासी नहीं बनाता। यह एक अद्‌भुत घटना थी। ठीक इसी दिन गाँव में एक और घटना हो गयी। लोकनाथ के एक साथी का नाम बेनीमाधव था। उसका भी आज ही उपनयन हो रहा था। न जाने क्यों वह भी जिद्द कर बैठा कि लोकनाथ के साथ संन्यास लेगा। उसके माँ-बाप तथा अन्य लोगों ने काफी समझाया, पर वह अपनी जिद्द पर अड़ा रहा। लाचारी में लोगों ने अनुमति दे दी।

यज्ञोपवीत-संस्कार के बाद लोकनाथ घोषाल, बेनीमाधव बनर्जी तथा भगवान् गांगुली यात्रा पर निकल पड़े। इनके पीछे गाँव के लोग आ रहे थे। गाँव की सीमा के पास आकर गुरु भगवान् गांगुली ने पीछे की ओर मुड़ कर कहा—"अब इसके आगे केवल हम तीनों जायेंगे। आप लोग अपने घर वापस चले जाइये।"

इस आदेश को सुनते ही रामनारायण घोषाल ने कहा—"शिवास्ते सन्तु पंथानम्।"

लेकिन माँ से यह दृश्य सह्य नहीं हो सका। वह फफक कर रोती हुई बोल पड़ी—"अरे मेरे लाल, मेरे राजा, लौट आ, माँ की गोद में।" इसके साथ ही वह पछाड़ खा कर गिर पड़ी। उस समय सूर्यास्त हो रहा था और तीनों यात्री अनजाने पथ की ओर बढ़ रहे थे, परिजन, पुरजन, गृह और जन्मभूमि को त्याग कर। यह घटना सन् १७४२ ई. में हुई थी।

मुगलों के शासन का सूर्यास्त होने के कारण मार्ग विपदाओं से भर गया था। भगवान् गांगुली अपने दोनों शिष्यों को आगत आपदाओं से बचाते हुए एक दिन कलकत्ता स्थित कालीघाट आये। उन दिनों कालीघाट के पास घनघोर जंगल था, जहाँ अनेक साधु तपस्या करते थे। दिन में भी लोग यहाँ आने में डरते थे।

संन्यासियों को कौपीन पहने तथा सिर पर जटा रखे देख कर लोकनाथ को आश्चर्य हुआ। आचार्य भगवान् ने कहा—"आगे चल कर तुम्हें कौपीन पहनना पड़ेगा और भीख माँगनी पड़ेगी। कुछ दिनों बाद तुम्हारे सिर पर जटाएँ होंगी।"

सहसा लोकनाथ ने प्रश्न किया—"जब हम गृहत्यागी हो गये हैं, तब परिवार वालों का अन्न या उनकी कृपा क्यों ग्रहण करते हैं?"

एक तेजस्वी बालक के मुँह से इस तरह की बातें सुन कर आचार्य महाशय समझ गये कि लोकनाथ असाधारण बालक है। उसी दिन तीनों व्यक्तियों ने निश्चय किया कि यहाँ से कहीं दूर चला जाय जहाँ परिवार का एक भी सदस्य न आ सके और न निश्चित स्थान का पता बताया जाय। दूसरे दिन सभी अन्यत्र चले गये। भगवान् गांगुली अपने शिष्यों को कर्ममार्ग में लाकर अनासक्त कर्मयोग की शिक्षा देने लगे। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया त्यों-त्यों भगवान् गांगुली को अनुभव होने लगा कि उनके दोनों शिष्य असामान्य हैं। बुढ़ापे में ऐसे शिष्यों को पाकर वे प्रसन्न हो उठे। इस प्रकार वे नित्य पैदल चलते रहे। दिनभर पैदल चलने के बाद गुरु शिष्यों से कहते—"तुम लोग यहीं आराम करो। मैं गाँव से आहार माँग लाता हूँ।" कुछ देर बाद गुरु तिल और दूध लाते। सभी एक साथ भोजन करते। आहार के बाद अध्ययन का सिलसिला प्रारम्भ हो जाता। शास्त्र, उपनिषद्, दर्शन, वेदान्त आदि पढ़ाते। इस प्रकार तीस साल कठोर जीवन व्यतीत करने के बाद एक दिन लोकनाथ ने कहा—"गुरुदेव, अब तक आप आहार-वस्तु माँग कर लाते थे। अब हम युवा हो गये हैं। आज से आपको कष्ट करने की जरूरत नहीं है। हम दोनों आहार-वस्तु माँग लायेंगे।"

इस प्रकार तीनों यात्री माँगते, खाते, साधना करते, अध्ययन करते हुए गया आये, जहाँ तथागत को ज्ञान प्राप्त हुआ था। गया से काशी आये। बाबा विश्वनाथ का दर्शन कर मथुरा चले गये। मथुरा, वृन्दावन दर्शन करने के बाद हरिद्वार आये।

गृहत्यागी संन्यासियों को बारह वर्ष बाद एक बार अपनी जन्मभूमि पर अवश्य जाना चाहिए। यह शास्त्रीय विधान है। यहाँ तो कई बारह वर्ष बीत गये हैं। सहसा एक दिन जब गुरु को इस बात का ध्यान आया तो वे घर की ओर लौट चले। बहुत दिनों बाद पुनः घर जाना पड़ेगा, सुन कर दोनों शिष्य चकित रह गये। गुरु ने कहा—"गृहवासी बनने नहीं, बल्कि उसका मोह हमेशा के लिए त्याग कर आना पड़ेगा।"

दोनों शिष्य साधना के उच्च-स्तर तक पहुँच चुके थे। अब उन्हें जनसामान्य के

बीच जाने में संकोच नहीं होता था। राह चलते लोग इन्हें देख कर दूर से प्रणाम करते और इनके हाथ आशीर्वाद के लिये उठ जाते थे। आजकल 'नक्त व्रत' कर रहे हैं। एक दिन उपवास के बाद दूसरे दिन भोजन। इसके बाद दो दिन उपवास एक दिन भोजन, फिर तीन दिन उपवास और एक दिन भोजन करते हैं। इसी प्रकार ५, ७, ९ दिन का व्रत पालन कर रहे हैं। केवल यही नहीं, चींटी, मच्छर तथा कीड़े-मकोड़ों के हमलों को सहन करना पड़ रहा है। एक दिन लोकनाथ ने चींटियों के काटने की शिकायत की, क्योंकि ध्यान के समय हिलना मना था। दूसरे दिन लोकनाथ ने देखा कि गुरुदेव उसके आसन के चारों ओर चीनी गिरा रहे हैं। लोकनाथ समझ गया कि चींटियों के हमले को सहन करते हुए साधना करनी होगी। इस प्रकार अध्ययन साधना करते हुए ये लोग बंगाल में आये।

सहसा लोकनाथ ने एक अद्‌भुत स्वप्न देखा। इस जन्म के पहले वह क्या था, कहाँ उत्पन्न हुआ था, आदि बातें उसने देखीं। निद्रा भंग होने पर उसने गुरुदेव से कहा—"गुरुदेव, मैं पूर्वजन्म में बेड़ू गाँव में पैदा हुआ था। जीवन भर अविवाहित था। कर्मयोग पूरा न होने के कारण मेरा पुनर्जन्म हुआ है। उस जन्म में मेरा नाम सीतानाथ बनर्जी था। दामोदर नदी के किनारे छोटा-सा गाँव है।"

शिष्य की बात सुन कर भगवान् गांगुली चौंके। अपने मन का संशय दूर करने के लिए वे शिष्यों के साथ बेड़ू गाँव आये। गाँव के वृद्धों से अद्‌भुत जानकारी मिली। गुरु को समझते देर नहीं लगी कि शिष्य को जातिस्मरता प्राप्त हो गयी है। उस दिन उन्हें लगा जैसे उन्हें प्रत्यक्ष भगवत्-दर्शन हुआ है।

गाँव के समीप आते-आते शाम हो गयी। गुरु ने आदेश दिया कि रात यहीं वृक्ष के नीचे गुजारेंगे। गाँव में सुबह जायेंगे। दूसरे दिन सवेरे गाय चराने वाले बालकों ने देखा कि एक वृक्ष के नीचे तीन साधु बैठे हैं। उन लोगों ने घर आकर यह समाचार दिया। देखते-देखते लोगों की भीड़ एकत्रित हो गयी। भीड़ से एक महिला आगे बढ़ आई और तेज नजरों से देखती हुई बोली—"अरे, यह तो लोकनाथ दादा और बेनी दादा हैं।"

धीरे-धीरे सभी लोगों ने तीनों व्यक्तियों को पहचान लिया। लोकनाथ की माँ स्वर्गवासी हो गयी हैं। पिता अभी तक जीवित हैं। उनके साथ तीनों पुत्र तथा पौत्र-पौत्रियाँ आये। यहाँ कई दिन रहने के बाद आचार्य भगवान् दोनों शिष्यों को लेकर काबुल चले गये।

महीनों यात्रा करने के बाद तीनों व्यक्ति काबुल पहुँचे। यहाँ आने का उद्देश्य था—मौलाना सादी से ज्ञान प्राप्त करना। उनकी गणना विश्वविश्रुत विद्वानों में की जाती थी। भगवान् आचार्य अपने दोनों शिष्यों के साथ उन्हें अपना गुरु बना कर कुरान की

शिक्षा लेने लगे। कई महीने अध्ययन करने के बाद इन लोगों ने अनुभव किया कि यहाँ आना व्यर्थ हुआ। सारी तपस्या का मूल है—ब्रह्मचर्य-जीवन। गुरु ने निश्चय किया कि अपने शिष्यों को योगी बनाऊँ। इनके कर्ममार्ग को प्रशस्त करने के लिए अष्टांगयोग की शिक्षा देनी चाहिए—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि। इसके द्वारा ही ये अष्टैश्वर्य प्राप्त कर लेंगे। बाह्य जगत् से दोनों का सम्बन्ध विच्छेद करके शिष्यों को योग सिखाने लगे। योगाभ्यास करते चालीस वर्ष गुजर गये। लोकनाथ की जटाएँ जमीन चूमने लगीं। उसके चेहरे से दिव्य ज्योति प्रकट होने लगी। एक दिन एक अपूर्व आभा से वह गुफा आलोकित हो उठी, जिसमें लोकनाथ साधना करता रहा।

लोकनाथ के सिद्धावस्था प्राप्त होते देख गुरु आनन्द से विभोर हो उठे। उनका प्रत्येक रोम हर्ष से उत्फुल्ल हो उठा। लोकनाथ को गले लगाते हुए उन्होंने कहा—"आज मेरी साधना सार्थक हो गयी।"

लोकनाथ ने कहा—"आपकी अपार करुणा से मैं पार हो गया, गुरुदेव। लेकिन आप तो उस पार रह गये। मैं यह दृश्य सहन नहीं कर पा रहा हूँ।"

गुरु मुस्कराये। बोले—"कोई चिन्ता नहीं वत्स। आज जिस सत्य को तुमने प्राप्त किया है, उसे मैं प्राप्त नहीं कर सका। अब समय भी नहीं है। शीघ्र ही मैं इस शरीर को छोड़ने वाला हूँ। अगले जन्म में तुम मेरे पथ-प्रदर्शक बनोगे यानी मेरे गुरु होगे, मेरे कर्मों का संचालन करोगे।"

कुछ दिनों बाद लोकनाथ ने कहा—"गुरुदेव, चलिये और कहीं चला जाय। यहाँ आपका स्वास्थ्य गिरता जा रहा है।"

गुरुदेव—"ठीक है। जैसी तुम्हारी इच्छा। मेरे विचार से काशी उत्तम स्थान है।"

हिमालय से ये लोग काशी की ओर रवाना हुए। मार्ग में हितलाल मिश्र नामक एक योगी से मुलाकात हुई। काशी आने के कई दिनों बाद अचानक भगवान् गांगुली ने हितलाल मिश्र से कहा—"महाराज, यह शरीर अनित्य है। पता नहीं कब यह छूट जाय। मुझे अपने इन दोनों बच्चों की चिन्ता सता रही है। मेरा अनुरोध है कि भविष्य में इनकी देखभाल आप करते रहें। आज मैं आपके हाथ इनका भार सौंप रहा हूँ।"

गुरु के दोनों बच्चों की उम्र उन दिनों ९०-९२ वर्ष की थी। माता-पिता और गुरु के आगे बूढ़े बालक भी बच्चे होते हैं। एक दिन गुरु को गंगा-स्नान करके वापस न आते देख दोनों शिष्य चिन्तित हो उठे। निश्चित घाट पर आकर उन लोगों ने देखा—वे समाधिस्थ हैं। पास जाने पर ज्ञात हुआ कि वे अनन्तधाम चले गये हैं।

गुरुदेव के निधन के बाद लोकनाथ ने निश्चय किया कि अब पर्यटन करता रहूँगा। हितलाल मिश्र, बेनीमाधव बनर्जी तथा लोकनाथ को लेकर अरब मुल्क में

आये, जहाँ एक सिद्ध फकीर से उनकी मुलाकात हुई। उसने लोकनाथ को देखते ही पूछा—"कितना जानते हो?" लोकनाथ समझ गये कि कितने जन्मों का ज्ञान है, यही सवाल पूछ रहे हैं। लोकनाथ ने कहा—"दो।"

फकीर ने कहा—"मैं चार।" लोकनाथ को आश्चर्य हुआ। इसका अर्थ यह है कि यह फकीर ऊँचे दर्जे का साधक है।

यहाँ मक्केश्वर का दर्शन करने के बाद लोग यरूशलम आये। वहाँ से पुनः उत्तर-पूर्व सुमेरु पर्वत की ओर आये। चीन आते ही हितलाल मिश्र ने कहा—"मैं ध्रुव की ओर जाऊँगा। मेरा विचार है कि तुम लोग वापस लौट जाओ।"

मिश्रजी से अनुमति पाकर दोनों योगी हिमालय की घाटियों से भारत की ओर आने लगे। कई दिन चलने के बाद बेनीमाधव ने कहा—"मैं कामाख्या जाऊँगा। आप शायद बंगाल जायेंगे। बन्धुवर, अब मुझे आज्ञा दें।" इतना कह कर दोनों मित्र गले मिले और सदा के लिए अलग हो गये।

लोकनाथ अकेला चुपचाप अनजाने मार्ग की ओर चलता गया। काफी दूर आने पर एक दिन उन्होंने देखा—सामने के जंगल से अनेक हिंसक पशु चारों तरफ भाग रहे हैं। पक्षियों का समूह आकाश में चीख रहा है। गौर करने से ज्ञात हुआ कि जंगल में आग लग गयी है। जंगल के भीतर एक संन्यासी ध्यानमग्न बैठा है। यह दृश्य देखते ही वे उनकी ओर दौड़े। तुरन्त उन्हें गोद में उठा कर दावानल के बाहर आये। आग को अपनी ओर बढ़ते देख एक कगार पर से नीचे कूद गये। वह संन्यासी थे—प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी—नदिया जिले के गोस्वामी-वंश के कुल-दीपक।

इधर-उधर कई जगह घूमने के बाद लोकनाथ त्रिपुरा जिले के दाऊद कांदी नामक गाँव में आये। यहाँ एक वृक्ष के नीचे आसन लगाया। त्रिपुरा जिले में कई स्थान सिद्धों की तपोभूमि रही है। गरमी, बरसात और जाड़े में भी वे कहीं नहीं जाते। ऐसे महात्माओं के प्रति किसान सहज ही आकृष्ट हो जाते हैं। लोगों ने उनके भोजन का प्रबन्ध किया। सुबह-शाम पास आकर बैठने लगे। इस प्रकार लोकनाथजी की ख्याति फैल गई।

ढाका जिला में एक नगण्य गाँव है, जिसका नाम है—बारिदी। इसी गाँव का एक लोहार दाऊद कांदी में अपना कारोबार करता था। दुर्भाग्य से फसाद हो जाने के कारण वह फौजदारी के मुकदमें में फँस गया। उसे यह जान कर और भी कष्ट हुआ कि इस अपराध के कारण उसे सख्त सजा मिलेगी। फलतः वह बराबर मानसिक कष्ट से पीड़ित रहने लगा। लोकनाथ बाबा की ख्याति सुन कर उसने सोचा कि बाबा से जाकर प्रार्थना करूँ। महात्माओं की कृपा से बहुत कुछ सम्भव होता है। शायद मैं बेदाग बच जाऊँ।

फैसले वाले दिन भोर के वक्त वह पैदल ही महापुरुष के सान्निध्य में आया। साष्टांग प्रणाम करने के बाद उसने अपनी पीड़ा को व्यक्त किया। घर से वह यह निश्चय करके चला था कि जब तक बाबा अभय वरदान नहीं देंगे, वहाँ से हटेगा नहीं। अन्तर्यामी बाबा उसके मन की बात समझ गये। मुस्कराते हुए बोले—"तुम्हारी विपद् दूर हो गयी है। आज तुम बिना शर्त रिहा कर दिये जाओगे। निडर होकर जाओ।"

महापुरुष के चरणों पर माथा नवा कर वह प्रसन्नचित्त चला गया। एक ओर मन शंकित था तो दूसरी ओर आशीर्वाद जोर दे रहा था। अदालत से छूटते ही वह दौड़ता हुआ आया और बाबा के पैरों को पकड़ कर आँसुओं से धोने लगा। कहा—"बाबा! मुझे क्षमा कर दें। आपके आशीर्वाद के प्रति मेरे मन में शंका उत्पन्न हो गयी थी। दया कीजिये प्रभु!"

बाबा मुस्कराते रहे। कुछ देर बाद गद्‌गद-भाव से उसने कहा—"मेरा एक अनुरोध है, महाराज! आपको एक बार मेरे गाँव में चरणरज देना पड़ेगा। आपकी कृपा से गाँव के लोगों का कष्ट दूर हो जायेगा। हम सब आपके आगमन से पवित्र हो जायेंगे।"

भक्त की आकुल प्रार्थना असर कर गयी। महापुरुष ने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए अपनी सम्मति दी। आखिर एक दिन दाऊद कांदी से चल कर बाबा लोकनाथ बारिदी गाँव आकर बस गये। यहाँ बसने के कारण वे 'बारिदी ब्रह्मचारी' के नाम से प्रसिद्ध हुए। बारिदी गाँव उनकी चरणरज से धन्य हो उठा। उक्त लोहार उन्हें आग्रह के साथ ले आया था, इसलिए बाबा लोकनाथ उसकी बनायी कुटिया में रहने लगे।

कभी-कभी बाहर निकलते तो पूर्ण दिगम्बर रूप में। उन्हें इस तरह टहलते देख गाँव के लोगों ने पागल समझा। कभी-कभी कोई बीमार या कष्ट से पीड़ित व्यक्ति आता तो आशीर्वाद प्राप्त कर चला जाता था। उनकी प्रतिभा को आजमाने के लिए एक सज्जन ने इच्छा प्रकट की कि इस बेमौसम में मेरे पेड़ पर अगर कटहल लग जाय तो वह फल मैं बाबा को दे दूँगा।

दूसरे दिन सुबह उठ कर उसने देखा कि उसके पेड़ पर एक कटहल लटक रहा है। सहसा उसे विश्वास नहीं हुआ। घरवाली को बुला कर पूछा तो उसने भी कटहल बताया। असमय में कटहल फलते देख पड़ोसी भी चकित रह गये। उसे तोड़ कर वह बाबा के पास ले आया। उसे समझते देर नहीं लगी कि मेरे गाँव में एक महान् विभूति निवास कर रही है।

बारिदी गाँव के जमींदारों की उपाधि नाग थी। बाबा की कुटिया से कुछ दूरी पर न जाने किस बात पर मालिकों में झगड़ा हुआ। मामला अदालत पहुँचा। बाबा की कुटिया के समीप घटना होने के कारण गवाही के लिए बाबा को सम्मन भेजा गया। विरोध-पक्ष के मुख्तार ने पूछा—"बाबा! आपकी उम्र इन दिनों कितनी है?"

"डेढ़ सौ वर्ष।"

मुख्तार ने चौंक कर कहा—"यह अदालत है, मजाक मत करिये। उम्र डेढ़ सौ वर्ष और स्वास्थ्य इतना अच्छा है? बहरहाल यह बताइये कि घटना के समय आप कुटिया के भीतर थे, तब इस अवस्था में आपकी नजर इतनी तेज कैसे हो गयी कि आपने देख लिया?"

बाबा ने इस प्रश्न का जवाब न देकर पूछा—"मुख्तार साहब, सामने मैदान में वह पेड़ किस चीज का है?"

सभी लोगों का मालूम था और देख रहे थे कि आम का पेड़ है। मुख्तार ने कहा—"आम का पेड़ है।"

तुरन्त दूसरा प्रश्न हुआ—"उस पेड़ पर कौन चढ़ रहा है?"

काफी लोगों की आँखें पेड़ की तरफ उठ गईं। किसी को कुछ नजर नहीं आया। सभी लोगों ने कहा—"हमें कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। आप बताइये।"

बाबा ने कहा—"मैं साफ तौर से देख रहा हूँ। हजारों मादा चींटियाँ चढ़ रही हैं। उनकी चार पंक्तियाँ देख रहा हूँ। आड़ में और भी होंगी।"

यह बात सुन कर जज साहब चकित रह गये। तुरन्त कई लोगों को भेजा गया। जाने वालों ने लौट कर बताया कि बाबा का कथन सही है।

इसी नाग-परिवार में एक और घटना हो गयी। जमींदारी के कृषकों ने विद्रोह किया कि अब लगान नहीं देंगे। नाग-परिवार के सदस्यों ने निश्चय किया कि इस विद्रोह को सख्ती से कुचल दिया जाय, अन्यथा सारे इलाके में यह जहर फैल जायेगा। युवकों का यह निर्णय एक बूढ़े सदस्य को पसन्द नहीं आया। उसने सुझाव दिया कि इस बारे में बाबा लोकनाथ से राय ले ली जाय और उनके सुझाव के अनुसार काम किया जाय। तुरन्त एक उत्तेजित युवक सदस्य ने कहा—"जमींदारी हमारी है। इसके लिए जो उचित है, उसका निर्णय हम करेंगे। लोकनाथ बाबा से क्या मतलब?"

इस प्रकार विवाद बढ़ता गया। एक वृद्ध सदस्य ने सुझाव दिया कि सलाह लेने में हर्ज क्या है, मन-लायक राय न हुई तो मत मानना। इन निश्चय के बाद नाग-परिवार के सदस्य बाबा के पास पहुँचे। अभी लोग अपनी बात कह भी नहीं पाये थे कि बाबा बोल उठे—"जमींदारी तुम लोगों की है। मुझसे राय लेने की क्या जरूरत है?"

इतना सुनना था कि सभी लोग सन्नाटे में आ गये। इस बारे में चर्चा घर पर हो रही थी, बाबा को कैसे ज्ञात हो गयी? निश्चित रूप से बाबा अन्तर्यामी हैं। सारी बातें सुनने के बाद बाबा ने कहा—"तुम लोगों को कुछ करने की जरूरत नहीं है। सभी किसानों के लगान की रकम आश्रम से आकर ले जाना।"

इस सुझाव को सुन कर नाग-परिवार के लोग वापस चले आये, पर बाबा की बातों पर उन्हें विश्वास नहीं हुआ। प्रजा जब विद्रोह कर चुकी है, तब बिना भय के प्रीति नहीं होगी। जमींदारों के यहाँ गुण्डे रहते हैं। उनकी सहायता से लगान वसूल किये जाते हैं। उसी का सहारा लिया गया। लगान न देने के कारण खेतों से सन (पाट) काट कर जमींदार के कर्मचारी ले गये। मामला अदालत में पहुँचा। कई गुण्डे फौजदारी करने के सिलसिले में गिरफ्तार हुए। नाग बाबुओं को समझते देर नहीं लगी कि सन्त का आदेश न मानने के कारण यह घटना हो गयी। लोकनाथ बाबा से माफी माँगने के लिए लोग आश्रम पर आए।

इन्हें गोल बना कर आते देख बाबा ने तुरन्त कहा—"पहले जो कहा था, उसे नहीं माना। मैं जानता था कि तुम लोग फसादी आदमी हो, जरूर उपद्रव करोगे। इसीलिये पहले ही मना किया था। तुम लोगों का अपराध अक्षम्य है।"

सन्त को नाराज होते देख नाग बाबुओं ने उनके चरण पकड़ लिये। वृद्धों ने मिन्नत करते हुए क्षमा याचना की। आखिर शिव सन्तुष्ट हुए। उन्हें क्षमा करते हुए बाबा ने कहा—"मुकदमें में वकील-मुख्तार मत करना। फरियादी को आश्रम से ले जाना।"

नाग बाबुओं को इस बार भी सन्त की बातों पर विश्वास नहीं हुआ। मुकदमा जब अदालत में है, तब बिना वकील-मुख्तार के कैसे काम बनेगा? जब तक अदालत अपनी राय नहीं देगी तब तक मुजरिम को कैसे छुटकारा मिलेगा? इसी ऊहापोह में बाकायदा वकील-मुख्तार के जरिये मुकदमा प्रारम्भ हुआ। अदालत ने मुजरिम को छह महीने की सजा दी।

दो बार बाबा की अवज्ञा करने के कारण यह गति हुई। अब नाग-परिवार के लोगों को बाबा के निकट जाने का साहस नहीं हुआ। कौन-सा मुँह लेकर जाते? नाग बाबुओं ने नीचे की अदालत के विरुद्ध अपील की। अभी मुकदमा चल ही रहा था कि फरियादी की मौत हो गयी। उसकी ओर से कत्ल का मुकदमा दायर किया गया। इस अभियोग के कारण नाग बाबुओं की हालत पतली हो गयी। वे समझ गये कि अब बचना मुश्किल है। लाचारी में डरते-डरते पुनः बाबा की शरण में आये।

उपयुक्त समय देख कर बाबा ने अपनी शक्ति का प्रयोग किया। दरअसल नाग-परिवार के सदस्य एक-दूसरे से असन्तुष्ट रहते थे। बाबा के शक्ति प्रयोग से उनका अन्तर शुद्ध हो गया, तब बाबा ने कहा—"तुम लोगों में से प्रत्येक को सौ-सौ रुपये दण्डस्वरूप देना होगा। अब तुम लोग घर चले जाओ। फैसले वाले दिन यहाँ आना।"

इस आश्वासन को पाकर लोग मुँह लटका कर वापस चले गये। निर्दिष्ट दिन लोग बाबा के आश्रम पर आये। सभी के चेहरे पर कालिमा की छाप थी। तभी बाबा ने

कहा—"जज बीमार हो गया है। उसे इस हालत में उठा कर राय लिखवा आया हूँ। कल तुम लोगों को बरी होने का तार मिल जायेगा।"

चकित-भाव से सभी लोगों ने बाबा की बातें सुनीं। बाबा आश्रम छोड़ कर कहीं नहीं जाते। पता नहीं, इन्हें कैसे मालूम हो गया कि वह बीमार है। तिस पर बरी होने की राय लिखवा लाये। दूसरे दिन जब उन्हें तार मिला, तब लोगों को बाबा की शक्ति पर विश्वास हुआ।

सन्तों के निकट कब, कौन, किस रूप में आता है और उसका लौकिक-पारलौकिक क्या सम्पर्क होता है, इसे सन्त अपने इष्ट की कृपा से तुरन्त जान लेते हैं। नाग-परिवार पर कृपा करने के कारण बाबा की ख्याति बढ़ गई। इसी गाँव में एक गरीब अहीर जाति की बुढ़िया रहती थी। एक दिन वह बाबा का दर्शन करने के लिये दूध लेकर आयी। यहाँ आकर देखा कि आश्रम में बड़ी भीड़ है। बड़े असमंजस में पड़ गयी कि कैसे बाबा तक पहुँचूँगी।

बुढ़िया के पास एक गाय है, जो पिछले साल मृत बछड़े को जन्म देकर ठाँठ हो गयी। इस साल पुनः गर्भवती हुई है। इसने बाबा के नाम पर मनौती की कि अगर प्रसव ठीक रहा तो बाबा को नित्य दूध पहुँचाया करेगी। प्रसव ठीक से हो गया। आज वह बाबा के लिये दूध लायी है।

बाबा का दर्शन करते ही न जाने क्यों उसका मन चंचल हो उठा। उसे लगा कि यह तो अपना बेटा है। जाने कब, कहाँ खो गया था। इससे बिछुड़े एक युग बीत गया है। आनन्द की अधिकता से उसके पैर काँपने लगे। बाबा अपना आसन छोड़ कर किसी की अगवानी नहीं करते। पर इस वृद्धा को देखते ही दौड़ कर उसके पास आकर बोले—"माँ, मेरे लिए दूध लायी है? इसके बाद दूध की हँड़िया उससे लेकर बोले—"मेरी प्यारी माँ, इतने दिनों के बाद तुझे अपने बेटे की याद आयी? मैं कब से तेरी बाट जोह रहा था कि मेरी माँ अब तक क्यों नहीं आयी?"

इन शब्दों ने वृद्धा की ममता को उद्वेलित किया। जिस प्रकार माँ अपने बच्चे को गोद में लेकर प्यार करती है, ठीक उसी प्रकार बाबा को अंक में भर कर वह दुलार करने लगी—"मेरा मुन्ना, मेरा गोसाईं।"

लोकनाथ ने उपस्थित भक्तों से कहा—"पूर्वजन्म में यह वृद्धा मेरी माँ थी। कर्मफल के कारण इस बार इसे ग्वाला के घर जन्म लेना पड़ा है।"

इस अलौकिक दृश्य का आनन्द सभी लोग ले रहे थे। उसी दिन से आश्रम का सारा भार वृद्धा को दे दिया गया और वह आश्रमवासियों के निकट माताजी के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी।

कभी-कभी बाबा इस प्रकार का तमाशा करते थे, जिसे देख कर लोग चकित रह

जाते थे। एक बार अपनी कुटिया में बैठे एक दारोगा से बातें कर रहे थे। इसी समय एक महिला एक कटोरा दूध उनके सामने रख कर चली गयी। सहसा बाबा बोल उठे—"आजा। आजा।"

दारोगा साहब यह समझ नहीं पाये कि बाबा किसे बुला रहे हैं। सहसा उन्होंने देखा कि सामने एक नाग फन उठाये चला आ रहा है। इस दृश्य को देखते ही दारोगा की हालत खराब हो गयी। बाबा लोकनाथ ने साँप की गर्दन पकड़ दूध की कटोरी में डाल दिया। थोड़ी देर बाद बोले—"अब अपनी जगह चला जा।"

यह आदेश सुनते ही साँप कटोरी से निकल कर चला गया। बाबा ने दूध से थोड़ी-सी मलाई निकाल कर स्वयं खायी और शेष भाग दारोगा की ओर बढ़ाते हुए कहा—"ले, प्रसाद है, खा ले।"

प्रसाद खा ले, सुन कर दारोगाजी की घिग्घी बँध गई। जिस दूध को साँप पी रहा था, उसकी मलाई खाने पर क्या जीवित रहूँगा? उसे ऊहापोह करते देख मुस्कराते हुए बाबा ने कहा—"डरने की जरूरत नहीं। ले, खा जा।"

मरता क्या न करता। बाबा की आज्ञा मान कर उन्होंने प्रसाद ग्रहण किया।

इसी प्रकार की एक घटना और हुई थी। आश्रम में भजल राम नामक एक सेवक रहता था, उसने अपने जीवन में कभी बाघ नहीं देखा था। बाबा जैसे महापुरुष के निकट रहते हुए अगर बाघ नहीं देखा तो व्यर्थ है, बाबा की सेवा करना। बाबा को उसके मन की बात समझते देर नहीं लगी। एक दिन भोर के वक्त उसे जगाते हुए बोले—"क्यों रे भजला, तू बाघ देखना चाहता था न? देख, आश्रम में बाघ आ गया है। देख ले।"

भजला आँखें मलता हुआ बाहर आया। उसे बाघ देख कर आश्चर्य नहीं हुआ। यह तो आश्रम में रहने वाली बिल्ली की मौसी है। इसी को बाघ कहते हैं? वह चारों ओर घूम-घूम कर देखने लगा। उस समय आश्रम में और जितने लोग थे, वे लोग आड़ से यह दृश्य देख रहे थे। थोड़ी देर बाद बाबा ने कहा—"अब बस। उसे जाने दे।"

आश्रम के बरामदे पर बैठे बाबा भक्त कामिनीकुमार से बातें कर रहे थे। सहसा बोल उठे—"कामिनी, विजय आ रहा है।"

बाबा की बातें सुन कर कामिनी बाबू चौंक उठे। प्रभुपाद विजय कृष्ण गोस्वामी बारदी आने के पहले उन्हें पूर्व सूचना जरूर भेजते थे। आज तक उन्हें कोई सूचना नहीं मिली। लेकिन जब बाबा कह रहे हैं, तब बात सही हो सकती है। उन्होंने पूछा—"किस रास्ते से आ रहे हैं? मेघना या ब्रह्मपुत्र से?"

—"ब्रह्मपुत्र से।"

—"तब तो चमारटोली के पास उनकी नाव लगेगी।" कहने के साथ ही कामिनी बाबू स्वागत के लिए चले गये।

घाट पर आते ही उन्होंने गोस्वामीजी को नाव से उतरते देखा। उन्हें अपने साथ लेकर आश्रम में आये। बाबा से नजर मिलते ही विजय कृष्ण गोस्वामी ने अनुभव किया, तड़ित् वेग से कोई शक्ति उनके शरीर में प्रवेश कर गयी। उनका सारा शरीर काँप उठा। बाबा लोकनाथ ने आगे बढ़ कर उन्हें अपने अंक में भर लिया।

—"अब तक आपकी कृपा से मैं क्यों वंचित रहा बाबा?"

बाबा ने कहा—"तू तो पत्थर रहा। जा, अब देर मत कर। तू केवल मेरा नहीं है। बारिदी के लोग तुझे देखने के लिये व्याकुल हैं।"

बाबा का आदेश पाकर विजय कृष्ण गोस्वामी कामिनी बाबू के साथ उनके घर की ओर रवाना हो गये। मार्ग में कामिनी बाबू ने पूछा—"बाबा में आपने क्या देखा?"

गोस्वामीजी ने कामिनी बाबू की ओर देखते हुए कहा—"क्या आप मेरी बात पर विश्वास करेंगे? बचपन से अब तक अनेक साधु-संन्यासियों के साथ रहा हूँ। कहीं एक आना, तो कहीं दो आना प्रभाव देखा। कुछ ऐसे आश्रमों में भी गया हूँ, वहाँ जब तक रहा, तब तक प्रभाव देखता रहा। वहाँ से बाहर आते ही सारा प्रभाव समाप्त हो गया। यहाँ तो जितना सोच कर आया था, उससे बढ़ कर प्रभाव देखा। मुझे अपने गले से लगाते हुए उन्होंने कहा—"तू मेरा भार ले ले। मैं यहाँ से जाना चाहता हूँ।" दूसरे ही क्षण उन्होंने कहा—"नहीं, तू मेरा भार नहीं ले सकता। इसके लिये तुझे तैयार करना होगा।" इनके रोम-कूपों में देवताओं का निवास है।"

गोस्वामीजी को याद है, बाबा ने एक बार जंगल में आग लगने पर उन्हें बचाया था। दूसरी बार जब वे दरभंगा में अस्वस्थ हुए, तब उन्हें जाना पड़ा था। बात यह हुई कि गोस्वामीजी के शिष्य बख्शीजी अचानक लोकनाथ बाबा के आश्रम में आकर उनके चरणों पर गिर पड़े। बोले—"मेरे गुरु को बचा लीजिए। आपके अलावा और कोई मेरी मदद नहीं कर सकता।"

सहसा बाबा गम्भीर हो गये। बोले—"अब तक क्या करता रहा? अब कुछ नहीं हो सकता।"

बख्शीजी सीधे गोस्वामीजी के यहाँ से आये हैं। इन्हें पहले ही आना चाहिए था। बाबा की बातें सुन कर वे व्याकुल होकर बोले—"आप दयालु हैं। आप दया करेंगे तो सब ठीक हो जायेगा।"

बाबा ने सिर हिलाते हुए कहा—"अब कुछ नहीं होगा। उनकी आयु समाप्त हो गयी है।"

"मेरे गुरु की आयु समाप्त हो गयी है? बख्शीजी घबरा उठे। क्षणभर बाद बोले—"कोई हर्ज नहीं। आप मेरी आयु लेकर मेरे गुरुदेव को बचा लीजिये।"

शिष्य की निष्ठा और अचल भक्ति देख कर बाबा का हृदय पिघल गया। शिष्य हो तो ऐसा। औघड़दानी शिव के चेहरे पर सन्तोष की रेखा खिंच गयी। बोले—"तेरे कारण इस बार जीवन कृष्ण (बाबा इसी नाम से गोस्वामीजी को सम्बोधन करते थे) बच जायेगा। तू ढाका चला जा। मैं उसके पास जा रहा हूँ। परसों तुम लोगों को समाचार मिल जायेगा।"

श्यामाचरण बख्शी ढाका आकर बड़ी बेसब्री के साथ समाचार की प्रतीक्षा करते रहे। अन्त में एक दिन उनके पास समाचार आया कि प्रभुपाद गोस्वामीजी स्वस्थ हो गये हैं और ढाका आ रहे हैं। वहाँ से सपरिवार बाबा का दर्शन करने आये। यहाँ आने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि बाबा यहाँ से स्थूल शरीर से नहीं, बल्कि सूक्ष्म शरीर से आये थे।

जन्माष्टमी के दिन बाबा के दो पुराने भक्त बाबा का दर्शन करने आए। उस समय बाबा लोकनाथ भोजन कर रहे थे। बचा हुआ प्रसाद शिष्य को खिलाते हुए बाबा ने पूछा—"बताओ तो कौन किसे खिला रहा है?"

रजनीकान्त ने कहा—"गुरु शिष्य को खिला रहा है।"

बाबा ने कहा—"अरे रहने भी दे गुरु-शिष्य का पचड़ा। बाप बेटे को खिला रहा है।" अन्य भक्त यामिनी राय से उन्होंने पूछा—"तुम्हारा क्या विचार है?"

यामिनी राय ने कहा—"आप मेरे मुँह में डाल रहे हैं और मैं उसे चबा रहा हूँ।"

बाबा ने कहा—"गुरु शिष्यों के लिये यही करते हैं। मुँह तक पहुँचा देते हैं। शिष्य स्वयं उसे चबा कर उसके तत्वों से देह-मन को पुष्ट बनाता है। देह-मन को पुष्ट बनाने की जिम्मेदारी गुरु की नहीं है। गुरु द्वारा प्रदत्त वस्तु की सार्थकता तभी आयेगी, जब शिष्य अपने प्रयत्नों से अपनी उन्नति के लिये सहायक के रूप में उसे ग्रहण करेगा।" आगे एक प्रश्न के उत्तर में बाबा ने कहा—"जो जी में आये करो, पर ताप लगने न पाये।"

"ताप क्या है?"

"सुख-दुःख और जय-पराजय की मन पर जो प्रतिक्रिया होती है, वही ताप है। कोई भी स्थिति आये, उसे पूर्ण निर्विकार रूप में ग्रहण करना चाहिए। सुख के समय न उच्छ्वास और न दुःख के समय कष्ट की भावना मन में उत्पन्न हो। विजय प्राप्त करने पर उल्लसित और पराजय पर ग्लानि अनुभव न हो। जब मन की यह स्थिति हो, तब कुछ करो। मनुष्य अपनी मानसिक उन्नति के साथ-साथ अच्छे-बुरे कर्मों की समीक्षा करता है। जो कुछ बुरा है, समाज में जो कुछ निंदित है, उसे नहीं करना चाहिए।"

"गुरु किसे कहते हैं?"

"ठेका को। ठेका ही गुरु है। बिना ठेका के कुछ भी नहीं सीखा जा सकता।"

"गुरु शिष्य के लिये क्या करते हैं?"

"शिष्य की आँखें खोल देते हैं। अज्ञानी अन्धा होता है। अज्ञानरूपी अन्धे की आँखें गुरु खोल देते हैं।"

"वेद, शास्त्र, उपनिषद्, पुराण, गीता, चण्डी के रहते गुरु की क्या आवश्यकता है?"

"शास्त्र शास्त्रज्ञान की शिक्षा दे सकता है, पर उससे विज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। प्रत्यक्ष अनुभूति के अलावा किसी भी शास्त्र की सम्यक् उपलब्धि नहीं होती। इसी अनुभूति के लिए गुरु की आवश्यकता होती है। शास्त्रों ने भी कहा है कि गुरु से पाठ लेना चाहिए।"

"बन्धन और मुक्ति के कारण क्या हैं?"

"माया। माया देवी ने स्थावर-जंगम आदि की सृष्टि की है। आराधना के माध्यम से अगर देवी को प्रसन्न किया जाय तो वे कृपा करके जीव को मुक्ति देती हैं। भूख मिटाने के लिए जितने भोजन की आवश्यकता होती है, उतना ही खाना चाहिए। बिना भूख के भोजन नहीं करना चाहिए। क्षुधा की पूजा करें, लोभ की नहीं। भोग्य-वस्तुओं के उपयोग से कामना की निवृत्ति नहीं होती। यह तो आग में घी गिरने की तरह होता है। बिना भोग के कर्म नहीं होता। यह सारी बातें परस्पर विरोधी प्रतीत हो रही हैं, पर ऐसा है नहीं। उपभोग द्वारा कर्म की वृद्धि होती है और भोग के द्वारा कर्म का क्षय होता है। भोग और उपभोग में पति-उपपति या यों कहो कि पत्नी-उपपत्नी की तरह भेद है। विचारपूर्वक किया जाने वाला भोग, भोग होता है और इच्छानुसार भोग ही उपभोग है। उदाहरण के लिए कोई खाद्य वस्तु खाने की इच्छा हुई, पर बिना उसे खाये उलट-पुलट कर रख दिया—यह भी एक प्रकार का उपभोग है। प्रकृति वास्तव में द्विविध है—विद्या और अविद्या। विद्या की पूजा से मुक्ति मिलती है और अविद्या से बन्धन। समय पर इन दोनों की सीमा का निर्देश कठिन हो जाता है। इस संशय को गुरु सुलझा देते हैं। जीव की तीन अवस्थायें होती हैं। मुक्तावस्था, वृद्धावस्था और मुक्तावस्था। प्रथम अवस्था में माता, पिता, बन्धु आदि का कोई बन्धन नहीं रहता जैसे पशु, पक्षी और पार्वतीय लोग। बाद में बन्धनावस्था आती है, जैसे तुम सब हो। इसके बाद पुनः मुक्तावस्था आती है, जैसे मैं और तैलंग स्वामी। ज्ञान द्वारा विचार करते रहने पर तृतीय स्थिति आती है।

सच तो यह है कि यह संसार त्रिविध ताप से पूर्ण है। वाक्यबाण, वित्त-विच्छेद बाण और बन्धु-विच्छेद बाण। जो इन तीनों बाणों को बर्दाश्त कर लेता है, उसके लिये

मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेना कठिन नहीं होता। इन त्रिविध पापों से डर कर जो लोग संन्यास लेते हैं, उन्हें संन्यासी नहीं मानना चाहिए। कर्मत्याग करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेयस्कर है।''

श्री ज्योति बसु के पिता श्री निशिकान्त बसु उन दिनों अमेरिका के शिकागो शहर में अपने दवाखाने में बैठे हुए थे। एक दिन एक अमेरिकी महिला आयी। वह पेप्टिक अल्सर रोग से पीड़ित थी। दवा चलने लगी, पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। डॉ० बसु परेशान हो गये।

महिला ने कहा—''मैं यहाँ अच्छे-से-अच्छे डॉक्टरों को दिखा चुकी हूँ। किसी की कोई दवा असर नहीं डाल सकी। आप लोग तो भारतीय हैं। जादू-टोना तथा ऐशी शक्ति के प्रभाव से रोगी को अच्छा कर सकते हैं। वही करिये न।''

डॉ० बसु अवाक् रह गये। महिला मुझे जादूगर समझती है। उन्होंने कहा—''मैं तो एक सामान्य डॉक्टर हूँ, आप जो समझ रही हैं, वह शक्ति मुझमें नहीं है। सुना है कि हमारे यहाँ के योगियों में यह शक्ति है, पर इसकी जानकारी मुझे नहीं है।''

महिला ने कहा—''मैं तो दर्द से बेचैन हूँ और आप बहाना बना रहे हैं। आपमें वह शक्ति है। आप ऐसी दवा दीजिये ताकि.....'' कहते-कहते महिला रुक गई। फिर बोली—''आपके पीछे कौन खड़ा है, डॉक्टर?''

डॉक्टर ने पीछे मुड़ कर देखा, फिर कहा—''कहाँ? कोई तो नहीं है।''

महिला ने विस्मय से कहा—''मैं प्रत्यक्ष देख रही हूँ। एक जटाधारी योगी खड़े हैं। बड़ी-बड़ी दाढ़ी है, साँवला चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें हैं। देखिये, वे मेरी ओर आ रहे हैं। मुझसे हाथ फैलाने को कह रहे हैं।''

महिला की अनर्गल बातें सुन कर डॉक्टर ने समझा कि इसका मस्तिष्क विकृत हो गया है, क्योंकि उन्हें कुछ दिखाई नहीं दे रहा था।

सहसा महिला बोली—''यह देखिये, उन्होंने मेरे हाथ पर क्या रख दिया और इशारे से खाने का आदेश दे रहे हैं।''

अब डॉक्टर ने देखा तो वह किसी पौधे की जड़ थी। मायूस होकर उन्होंने कहा—''तब इसे खा लो।''

इस घटना के कई दिनों बाद डॉक्टर अपने दवाखाने में आकर बैठे ही थे कि उक्त महिला चहकती हुई आयी और बोली—''डॉक्टर, मैं बिल्कुल ठीक हो गयी हूँ। अब कोई शिकायत नहीं है। अगर आपके पास न आती तो उस योगी पुरुष से मेरी मुलाकात न होती और न अच्छी होती।''

इस बार डॉक्टर ने उस महिला से योगी पुरुष का हुलिया पूछा। सारा वर्णन

सुनने के बाद उन्हें विश्वास हो गया कि उक्त योगी और कोई नहीं, बाबा लोकनाथ ब्रह्मचारी थे। सौभाग्य से डॉक्टर उनके भक्त रह चुके हैं।

दार्जिलिंग के डिप्टी मैजिस्ट्रेट पार्वतीचरण राय सहसा बीमार हो गये। डॉक्टरों की दवा असफल सिद्ध होने लगी। ज्यों-ज्यों इलाज होता गया, त्यों-त्यों मर्ज बढ़ता गया। धीरे-धीरे परिवार के लोगों की यह धारणा बन गयी कि राय साहब का अन्तिम समय आ गया। एक दिन अर्द्धरात्रि के समय राय साहब को प्यास लगी। वे पानी पीने के लिये उठे, तभी उन्हें अपने गुरु महाराज लोकनाथ बाबा की याद आ गयी। जमीन पर बैठ कर हाथ जोड़ते हुए कहने लगे—"गुरुदेव, मेरी गृहस्थी कच्ची है। अब इसका भार आप पर छोड़ता हूँ, क्योंकि आपके चरणों में स्थान लेने के लिये मुझे आना पड़ रहा है।"

अचानक कमरे में अद्‌भुत प्रकाश हुआ, उस प्रकाश के भीतर राय साहब ने देखा कि बाबा लोकनाथ उन्हें अभय दे रहे हैं। यह दृश्य देख कर पार्वतीचरण विस्मयाभिभूत हो उठे। उन्हें यह ज्ञात था कि इन दिनों बाबा बारिदी में हैं। प्रणाम करने के बाद ज्योंही वे उठने लगे, त्योंही उन्हें लगा कि कोई कड़ी वस्तु उनकी मुट्ठी में आ गयी है। बाबा ने इशारे से बताया कि इसे खा ले।

दूसरे दिन जब डॉक्टर आया तो उसे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि जिस व्यक्ति के जीने की आशा वे छोड़ चुके थे, इस वक्त वह प्रसन्न-भाव से बरामदे में टहल रहा है। रात भर में कौन-सा चमत्कार हो गया?

कुछ दिनों बाद बाबा का दर्शन करने के लिए पार्वतीचरण बारिदी आये। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने पूछा—"गुरुदेव, दार्जिलिंग में स्मरण करते ही आप बारिदी से कैसे वहाँ पहुँच गये? यह रहस्य समझ नहीं पाया। इतना कष्ट करने की क्या जरूरत थी?"

बाबा ने कहा—"अगर बेटा बीमार हो तो बाप को तब तक शान्ति नहीं मिलेगी, जब तक वह स्वस्थ न हो जाय।"

बाबा के बारे में यह सब बातें सुन कर कलकत्ता के एक उद्योगपति सीतानाथ बारिदी आये। वे कई वर्षों से गठिया से पीड़ित थे। शायद बाबा की कृपा से वे रोगमुक्त हो सकें। यहाँ आकर उन्होंने नदी पर डेरा डाला। नित्य लोगों का सहारा लेकर आश्रम जाते और रात नाव पर व्यतीत करते थे। लेकिन बाबा ने इनकी ओर ध्यान नहीं दिया। एक दिन सीतानाथ के मन में आया कि जब बाबा की कृपा पाने के लिये यहाँ आया हूँ तब उनके आश्रम में रहना चाहिए। व्यर्थ ही रोज आता-जाता हूँ।

वे बाबा के आश्रम के समीप एक पेड़ के नीचे जम गये। ऊपर खुला आकाश, दिन में कड़ी धूप, रात में सर्दी सहते रहे। इस प्रकार साधना करते कई दिन बीत गये।

एक दिन भोर के वक्त बाबा की कृपा हुई। वे आये और उनके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—"तुझे बड़ा कष्ट दिया मैंने। अब उठ कर खड़ा हो जा।"

बाबा के स्पर्श करते ही उन्हें लगा जैसे सारे शरीर में बिजली दौड़ गयी। आदेश पाते ही वे उठ कर खड़े हो गये। लगा, जैसे कभी गठिया नहीं हुआ था।

इसी प्रकार की एक और घटना हुई थी। माणिकगंज में एक मुसलमान रहता था। सन्तान के नाम पर एकमात्र लड़की थी और वह भी अन्धी। बारिदी के बाबा की प्रशंसा बराबर सुनते रहने के कारण एक दिन वह अपनी लड़की को लेकर आश्रम में आया। उसे यह मालूम था कि उच्च-कोटि के फकीर और सन्त मानव में भेद नहीं करते। उनके निकट सभी समान होते हैं। जिस प्रकार विशाल वृक्ष के नीचे अमीर-गरीब, हिन्दू-मुसलमान छाया पाते हैं, उसी प्रकार इनके यहाँ कोई विचार नहीं होता।

बाबा के पास आकर उसने विनयपूर्वक कहा—"बाबा! आपके आशीर्वाद से न जाने कितने गूँगे-बहरे ठीक हो गये। आज मैं आपकी शरण में आया हूँ। मेरी बेटी पर कृपा कीजिये। कम से कम वह इस दुनिया को देख ले। आपकी कृपा होने पर मेरी बेटी को नयी जिन्दगी मिलेगी।"

बाबा बड़ी देर तक लड़की को देखते रहे। इसके बाद पास बुला कर उसके मुँह तथा आँखों पर हाथ फेरने लगे। फिर बोले—"जाओ बेटी, घर जाओ। भगवान् तुम्हारा कल्याण करेगा।"

मुसलमान भक्त ने समझा कि बाबा की कृपा हो गयी है। अब जब तक इसकी आँखें नहीं खुलतीं, बराबर आता रहूँगा। कभी तो कृपा होगी। दूसरे दिन वह अपनी बेटी को लेकर पुनः आश्रम में आया। आश्रम से अभी कुछ दूर ही था कि सहसा लड़की बोल उठी—"अब्बाजान, वह देखो। बेल के पेड़ के पास ही बाबा का आश्रम है न?"

इतना सुनना था कि मुसलमान भक्त हर्ष से पागल हो उठा। बच्ची को गोद में उठा कर दौड़ता हुआ आया और बाबा के चरणों को पकड़ कर जमीन में लोटने लगा।

बारिदी के जमींदार उमाप्रसन्न नाग की पत्नी एक बच्चे को जन्म देकर प्रसूति में मर गयी। नाग महाशय बड़े संकट में फँस गये। नवजात शिशु को अगर स्तनपान न कराया गया तो वह मर जायेगा। परिवार में अन्य कोई दुग्धवती महिला नहीं थी। गाँव में एक मुसलमान महिला थी, जो दूध पिला सकती थी, पर बच्चा उसका दूध पचा नहीं पा रहा था। अन्त में उमाप्रसन्न की बहन सिन्धु इस समस्या का निराकरण कराने के लिए बाबा के पास आयी।

सारी बातें सुनने के बाद बाबा ने कहा—"तू अपना दूध पिला सकती है।"

"मैं?" सिन्धु चौंक उठी। घर के सभी लोग इस बात से परिचित थे कि सिन्धु बाँझ है।

बाबा अन्तर्यामी थे। बोले—"माँ, मेरे पास आकर बैठ। बहुत दिन हुए माँ का स्तनपान नहीं कर सका। आज माँ का स्तनपान करूँगा।" कहने के साथ उन्होंने सिन्धु के स्तन में मुँह लगाया और उसमें से दूध निकलने लगा।

लोकनाथ ब्रह्मचारी की बढ़ती ख्याति सुन कर कुछ नवयुवकों ने सोचा कि बाबा के पास काफी रकम है। इन्हें मार कर सारा धन लूट लिया जाय। इसी उद्देश्य से वे लोग एक दिन बाबा के आश्रम के भीतर आये।

अचानक न जाने कहाँ से एक बाघिन आश्रम के आँगन में उछल कर आ गयी। बाघिन को देखते ही हत्यारों की हालत खराब हो गयी। वे आश्रम के एक कमरे में छिप गये।

बाघिन के गरजने की आवाज सुनते ही बाबा लोकनाथ ब्रह्मचारी अपनी कुटिया से बाहर निकले। हत्यारों ने सोचा कि बाघिन बाबा को खा जायेगी, उन्हें हत्या करने की आवश्यकता नहीं होगी और वे इस गुनाह से बच जायेंगे।

इधर बाबा को देखते ही बाघिन पालतू कुत्ते की तरह उनके पैरों के पास लोटने लगी। उसके बदन पर हाथ फेरते हुए बाबा ने कहा—"नहीं बेटी, यह काम तुमने अच्छा नहीं किया। आश्रम में तो लोगों का आना-जाना लगा रहता है। यहाँ किसी का शिकार मत करो। जंगल की रानी हो, वहीं चली जाओ।"

बाघिन सिर झुका कर चुपचाप दरवाजे से बाहर चली गयी। सभी हत्यारे आड़ से यह दृश्य देख रहे थे। बाघिन के जाने के बाद चारों आकर बाबा के चरणों पर गिर पड़े और अपने कुकृत्य इरादे के लिए क्षमा माँगने लगे।

कांजिलाल के पिताजी का स्वर्गवास हो गया था। उनकी इच्छा हुई कि श्राद्ध के दिन बाबा अगर कृपा करके आ जायँ तो पितृ-ऋण से वे मुक्त हो जायें। अपनी इच्छा बाबा के सामने प्रकट करने पर उन्होंने कहा—"मैं तो आश्रम छोड़ कर कहीं नहीं जाता। मुझे छोड़ दो।"

कांजिलाल के बार-बार आग्रह करने पर बाबा ने कहा—"अच्छी बात है, आ जाऊँगा।"

श्राद्ध के दिन घर में सारा काम सुचारु रूप से चल रहा था, पर कांजिलाल का हृदय, कान और आँखें बाबा की प्रतीक्षा में सजग रहीं। धीरे-धीरे शाम हो गयी, रात आ गयी, पर बाबा के दर्शन नहीं हुए। बाबा के न आने के कारण उनके मन में क्षोभ हुआ।

कई दिनों बाद कांजिलाल अपनी शिकायत लेकर बाबा के पास गये और कहा—"आपने वादा किया था, इसलिये बेसब्री से आपका इन्तजार करता रहा, पर आप नहीं आये।"

"नहीं बेटा, मैं वादे के मुताबिक गया था।"

"आप गये और हमने आपको देखा तक नहीं?"

"सच कह रहा हूँ बेटा। मैं दो-दो बार भीतर गया था और तुमने दोनों बार लाठी लेकर दौड़ाया।"

कांजिलाल ने चकित होकर पूछा—"मैंने और आपको लाठी लेकर दौड़ाया?"

बाबा ने हँस कर कहा—"याद है, तेरे भण्डारघर में दो बार मैंने घुसना चाहा और तुमने दोनों बार लाठी लेकर खदेड़ दिया।"

बाबा का इतना कहना था कि कांजिलाल को वह घटना याद आ गयी। बाबा कुत्ते के रूप में गये थे। इतना सुनते ही कांजिलाल बाबा के चरणों पर गिर पड़ा।

कहा—"इस छल की क्या आवश्यकता थी?"

भवाल राज्य के राजा राजेन्द्रनारायण बहादुर बाबा का दर्शन करने के लिए आये। कुछ देर बाद उन्होंने वापस लौटने की अनुमति माँगी, तब बाबा ने कहा—"नहीं, आज तुम नहीं जा सकते।"

"मगर बाबा, मेरा लौटना आवश्यक है। कई जरूरी काम हैं।"

बाबा ने कहा—"रहने दे काम। आज तुम नहीं जा सकते।"

राजा ने कहा—"आज मैजिस्ट्रेट के साथ बातचीत करनी है। अगर वक्त पर नहीं पहुँचा तो मुसीबत आ जायेगी।"

"कहा तो आज तुम नहीं जा सकते।"

बाबा की आज्ञा का उल्लंघन करके राजा साहब रवाना हो गये। स्टीमर चल पड़ा। कुछ दूर जाते ही भयंकर तूफान (बंगाल में इसे काल बैसाखी कहते हैं) आया। स्टीमर कागज की नाव की तरह डगमगाने लगा। माँझी तथा सारेंग ने कहा—"इस माहौल में स्टीमर आगे नहीं जा सकता।"

राजा साहब को बाबा की बातें याद आयीं। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि आगमजानी बाबा इस रहस्य से परिचित थे। फलस्वरूप स्टीमर बाबा के आश्रम की ओर रवाना हुआ।

आश्रम में आते ही बाबा ने कहा—"मैंने तो तुम्हें पहले ही मना किया था। सन्तों की बात सुननी चाहिए।"

बाद में बाबा की आज्ञा पर उनकी यात्रा निर्विघ्न रूप से पूर्ण हुई।

जाली काम करने के कारण एक व्यक्ति फँस गया। अदालत में शपथ लेने के बाद उसने अपराध को अस्वीकार कर दिया। लेकिन अपराधी-मन शंकित रहता ही है। प्रमाण भी मौजूद थे। न जाने क्यों उसके मन में आया कि अगर बारिदी के ब्रह्मचारी बाबा कृपा कर दें तो वह इस जुर्म से मुक्त हो सकता है। इस निश्चय के बाद वह बाबा के आश्रम में जाकर उनके पैर पकड़ कर रोते हुए बोला—"प्रभु, मैं निरपराध हूँ। शत्रुओं के जाल में फँस गया हूँ। मेरी रक्षा कीजिए।"

अपराधी को कलपते देख बाबा ने कहा—"तुम छूट जाओगे।"

बाबा के पास एक सज्जन बैठे थे। उन्हें इस बात की जानकारी थी कि यह व्यक्ति अपराधी है और इस वक्त झूठ बोल रहा है। जब अपराधी व्यक्ति बाहर निकला, तब उक्त सज्जन ने उससे कहा—"आपने बाबा से झूठ क्यों कहा? मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि आप अपराधी हैं। अपना भला चाहते हैं तो बाबा के पास जाकर अपना अपराध स्वीकार कर लीजिये, वर्ना परिणाम उलटा हो सकता है।"

अपराधी के मन में यह बात जम गयी। बाबा अन्तर्यामी सन्त हैं। मुझे इनके सामने अपना अपराध व्यक्त करना चाहिए था। वापस आकर उसने बाबा से कहा—"मैंने आपसे झूठ कहा है। वास्तव में मैं अपराधी हूँ। मेरी रक्षा करें।"

बाबा ने कहा—"मैं जो कुछ कहूँगा, उसे मानोगे?"

"मान लूँगा।"

"ठीक है। अब जिस दिन पेशी होगी, उस दिन जज के सामने अपना अपराध स्वीकार कर लेना। जब मेरे मुँह से निकल गया है, तब तुम अवश्य छूट जाओगे।"

बाबा की आज्ञा मान कर अपराधी व्यक्ति ने पेशी के दिन अपना बयान बदल डाला। विचारक ने सोचा—शायद भय के कारण यह व्यक्ति अपने को अपराधी कह रहा है। उसके वकीलों ने उसे सलाह दी कि यह क्या कर रहे हो। अपराध स्वीकार मत करो। लेकिन वह अपने निश्चय पर दृढ़ रहा। रह-रह कर उसे बाबा की बातें याद आती रहीं। जब बाबा ने कहा है, तब मैं उनकी आज्ञा मान कर बेदाग छूट जाऊँगा। यहाँ तक कि हाईकोर्ट में जाकर भी उसने अपना बयान नहीं बदला। उसके इस बयान के आधार पर उसे मुक्ति मिल गयी।

इसी प्रकार कुमिल्ला के निवारण राय को हत्या के अपराध से मुक्ति मिल गयी थी। सेशन जज ने प्राप्त प्रमाण तथा साक्ष्य के आधार पर निवारण राय को फाँसी की सजा दी। राय के वकीलों ने हाईकोर्ट में अपील की। निवारण राय जेल में बन्द थे। वे स्वयं अनुभव कर रहे थे कि इस अपराध के कारण हाईकोर्ट भले ही फाँसी की सजा न दे, परन्तु आजीवन कैद की सजा जरूर देगी। मुसीबत के वक्त ही लोगों को भगवान्

और सन्तों आदि की याद आती है। अचानक उसके मुँह से निकल पड़ा—"बाबा लोकनाथ! मेरी रक्षा करो। मैं अपने पापों का प्रायश्चित्त करूँगा।"

सहसा जेल की उस कोठरी में प्रकाश हुआ और राय के सामने कौपीन पहने एक साधु खड़ा हो गया। कोठरी में लोहे का फाटक है, जिसमें ताला लगा है। चारों ओर पहरेदार हैं। यह बाबा भीतर कैसे आ गया? डरते हुए उसने प्रश्न किया—"आप कौन हैं?"

"मुझे नहीं पहचाना बेटा? मैं बारिदी का ब्रह्मचारी हूँ। तेरे बारे में राय लिखवा आया हूँ। तुझे बिना शर्त छोड़ दिया जायेगा।"

"आप बाबा लोकनाथ हैं?"

बाबा ने मुस्कराते हुए सिर हिलाया। यह देख कर वह बेहोश हो गया। दूसरे दिन उसे मुक्ति मिल गई।

अगर कोई वास्तव में सन्त है तो उसके पास जाने पर कुछ न कुछ अलौकिक बात होती है। ऐसे साधक योगी की कृपा से कष्ट दूर हो जाता है। मुश्किल यह है कि हम ऐसे सन्तों को पहचान नहीं पाते। मैमनसिंह के रजिस्ट्रार ऑफिस में एक क्लर्क सन्तों की तलाश में अक्सर दूर-दूर तक यात्रा करते रहते थे। एक दिन उन्होंने अपने सहयोगी मित्रा बाबू से कहा—"प्रतिवर्ष मैं चन्द्रनाथ दर्शन करने जाता हूँ। शायद इस बार नहीं जा पाऊँगा।"

मित्रा महाशय बारिदी के ब्रह्मचारीजी बाबा लोकनाथ का चमत्कार देख चुके थे। अचानक उनके मन में आया कि पास में इतने महान् योगी के रहते अभय बाबू चारों तरफ चक्कर काटते रहते हैं। उन्होंने कहा—"अभय बाबू, अब तक आप पत्थर के देवता का पूजन करते आये हैं। मैं आपको सलाह दूँगा कि इस वर्ष आप जीवन्त शंकर का दर्शन कर आइये। बारिदी यहाँ से दूर नहीं है। किराये के लिये मुझसे एक रुपया लीजिये।"

अभयचरण बाबा लोकनाथ का नाम सुन चुके थे। अपने मित्र कृष्णचन्द्र के साथ बारिदी रवाना हो गये। अभय बाबू को गाँजा पीने की आदत है। सहसा उन्हें ख्याल आया कि कल शिवरात्रि है और जीवन्त शंकर का दर्शन करने जा रहा हूँ। जब तक उनका दर्शन नहीं करूँगा, तब तक कुछ नहीं खाऊँगा। बाबा के दर्शन के बाद गाँजा पिऊँगा।

बारिदी पहुँच कर बाबा को ज्योंही उन्होंने साष्टांग दण्डवत् किया, त्योंही बाबा ने कहा—"तू तो गाँजा पीता है। जा, एक चिलम तैयार कर।"

अभय बाबू ने सोचा—"बाबा का दर्शन हो गया। अब गाँजा का दम लगाया जा

सकता है। चिलम भर कर बाबा के पास लाये। एक बार दम खींचने के बाद बाबा ने चिलम वापस करते हुए कहा—"ले, बाकी तू पी ले। यहीं बैठ कर पी।"

गाँजा पीने के बाद अभय बाबू ने बाबा को पुनः प्रणाम किया और चल पड़े। वहाँ एक वकील साहब मौजूद थे। उन्हें यह ज्ञात था कि आज दो दिन से अभय बाबू उपवास कर रहे हैं। उन्होंने कहा—"अभय बाबू, प्रसाद बिना खाये चले जा रहे हैं?"

अभय बाबू का ख्याल था कि जब आश्रम में आया हूँ, तब यहाँ भोजन मिलेगा। जब किसी ने कुछ नहीं पूछा, तब वे भन्ना कर चल पड़े। वकील साहब के प्रश्न पर उन्होंने जवाब दिया—"ब्राह्मण का लड़का हूँ, दो-चार रोज उपवास कर सकता हूँ। अगर भूख अधिक सतायेगी तो किसी गृहस्थ से दो मुट्ठी अन्न माँग कर खा लूँगा।"

बाबा लोकनाथ ने मुस्कराते हुए कहा—"तुझे अभी भोजन मिलेगा। जरा ठहर जा।"

इतना कहना था कि एक विधवा महिला अपनी सधवा बेटी के साथ बाबा के पास आयी। वह बाबा के लिये मिष्टान्न-फल आदि लेकर आयी थी। बाबा ने कहा—"ले, तेरा भोग आ गया।"

इस आह्वान को सुनते ही अभय बाबू का सारा क्रोध दूर हो गया। वे चुपचाप खाने लगे। एकाएक बाबा बोल उठे—"खा तो रहा है, पर यह भी मालूम है कि यह भोजन कायस्थ के हाथ का बना है।"

अभयचरण भी कम नहीं थे। तुरन्त जवाब दिया—"होगा। मैं तो देवता का प्रसाद खा रहा हूँ, भले ही इसे चाण्डाल ने बनाया हो।"

इस उत्तर को सुन कर बाबा प्रसन्न हो उठे। उन्होंने कहा—"तू सत्रह साल से पहाड़ों पर चक्कर काट रहा है। जो चीज खोज रहा था, मिली?"

"नहीं।"

बाबा ने उसके हाथ को अपने हाथ में लेकर कहा—"तू जिस चीज की तलाश में था, आज तेरे हाथ में बाँध दे रहा हूँ। अब तुझे चक्कर काटने की जरूरत नहीं पड़ेगी।"

बाबा की ख्याति जैसे-जैसे फैलती गई, वैसे-वैसे दर्शनार्थियों की भीड़ बढ़ती गयी। कुछ लोग कई दिनों तक आश्रम में ठहर जाते थे, ताकि बाबा के सत्संग का लाभ उठा सकें। ऐसे लोगों में एक सज्जन थे—ईश्वरचन्द्र घोष। मठ, धर्मशाला या किसी परिवार में ठहरने पर लौकिकता के नाते लोग चलते समय कुछ रकम देते हैं। घोष महाशय आज घर वापस जाने को तैयार हुए तो सोचा कि इतने दिनों तक आश्रम में ठहरा, भोजन किया, अतएव बाबा को कुछ दक्षिणा दे दूँ। पाँच रुपये जेब में रख कर वे बाबा के पास आये।

बाबा के पास आकर वे ज्योंही बैठे, त्योंही बाबा कहने लगे—"तुम लोग यहाँ कृपा करके आते हो, खाते हो, ठहरते हो। यह आश्रम तुम लोगों का है, सारी सामग्री तुम लोगों की है, मेरा कुछ भी नहीं है। अतएव ऐसा कोई कार्य या व्यवहार मत करना, जिसमें खरीद-फरोख्त की भावना हो।"

इतना कह कर बाबा चुप हो गये। इधर घोष महाशय के होश उड़ गये। उन्होंने लोगों से सुन रखा था कि बाबा अन्तर्यामी हैं। सो उन्हें प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया।

रात को बाबा के पास आकर प्रणाम करने के बाद घोष महाशय ने कहा—"अनुमति के लिये आया हूँ।"

बाबा ने कहा—"मेघना नदी के घाट पर आपकी नाव है। यहाँ से कोई ज्यादा दूर नहीं है, फिर भी एक आदमी साथ ले जाओ। रात का वक्त है, रास्ता भूल सकते हो।"

घोष महाशय ने कहा—"हम लोग ८-१० व्यक्ति हैं। डरने की कोई बात नहीं। साथ में दो-दो लालटेन हैं। सामने केवल मैदान है। इसे पार करते ही नदी का किनारा आयेगा। आप परेशान न हों।"

बाबा मुस्कराकर चुप हो गये। फलतः ये लोग रास्ता भूल गये और रात भर जंगल में चक्कर काटने के बाद एक अपरिचित गाँव में हाजिर हुए। बाद में गाँव वाले इन्हें आश्रम तक पहुँचाने आये। इन्हें वापस आया देख बाबा ने पूछा—"कहिये वकील साहब, कल मैने तुमसे कहा था कि साथ में एक आदमी भेज दूँ, पर तुमने स्वीकार नहीं किया। बाघ वाले जंगल में बहककर चले गये थे। अगर मैं साथ न रहता तो आज यहाँ न आ पाते।"

इसी प्रकार की एक घटना ढाका शहर से आये कुछ युवकों के साथ हुई थी। गर्मी का मौसम था। धूप के कारण लोग वापस नहीं जा पा रहे थे। उनकी समस्या बाबा को समझते देर नहीं लगी। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा—"अब तुम लोग आराम से जा सकते हो। बादलों ने सूर्य को ढँक लिया है।"

तुरन्त लोग चलने की तैयारी करने लगे। एकाएक एक युवक पूछ बैठा—"आपकी कृपा से बादलों ने सूर्य को ढँक लिया है। कितनी दूर जाने पर पुनः धूप दिखाई देगी?"

बाबा ने हँस कर कहा—"जब ढाका पहुँच जाओगे, तब धूप दिखाई देगी।"

बारिदी से ढाका १८-२० मील दूर है। कहने की आवश्यकता नहीं कि बाबा की बात सही निकली।

१९ ज्येष्ठ, सन् १८९१ ई०। बाबा को घेर कर कुछ भक्त बैठे थे। उस

समय इस बात की चर्चा चल रही थी कि मृत्यु के बाद शव का संस्कार किस प्रकार करना चाहिए। जमीन में गाड़ देने पर कीड़ों को आहार मिलता है। पानी में फेंक देने पर नदी के जानवरों को आहार मिलता है। इन दोनों पद्धतियों से मानव-शरीर की सद्‌गति होती है।

बाबा ने कहा—"मेरी राय में अग्नि-संस्कार सर्वश्रेष्ठ है। इससे शीघ्र लय प्राप्त होता है, वर्ना शरीर के आकर्षण के कारण जीव को असीम यन्त्रणा भोगनी पड़ती है। मेरे निधन के पश्चात् मेरा अग्नि-संस्कार करना। अगर मैं उत्तरायण-काल में, दिन के समय शरीर छोड़ दूँ, उस समय आकाश में किरण फेंकता रहे तो समझ लेना कि मैं सूर्य-रश्मि का अवलम्बन करता हुआ चला गया। पुनः इस संसार में वापस नहीं आऊँगा।"

बाबा अपने बारे में कभी इस तरह की बातें नहीं करते थे। आज शव-संस्कार की बातें चलने पर अपने बारे में लोगों को आगाह किया। एकाएक पास बैठे एक व्यक्ति से उन्होंने पूछा—"क्यों रे, कितना बजा है?"

आश्रम के एक कर्मचारी ने कहा—"दस बजे हैं, बाबा।"

"दस बज गये? जल्दी से सभी के लिए खाना परोसो। देखो तो कितनी देर हो गयी।"

बाबा की बातें सुन कर लोग चौंक उठे। एक तो देहात में कोई बँधे समय पर भोजन नहीं करता। दूसरे बाबा कभी दस बजे भोजन के लिए आदेश नहीं देते थे। यह ठीक है कि वे देर से भोजन करना पसन्द नहीं करते थे।

रसोइये ने कहा—"आप क्यों परेशान हो रहे हैं? अभी तो सिर्फ दस बजे हैं।"

"बजने दे। मैं जो कह रहा हूँ, वही कर। सभी लोगों के लिए भोजन परोस दे।"

रसोई तैयार थी। रसोइये को कोई परेशानी नहीं थी। इधर भोजन करने वाले तैयार थे। थाली परोसी गई। लोग खा-पीकर हाथ धोने लगे। यह देख कर बाबा ने पुनः कहा कि कोई अभुक्त न रहे। सभी से पूछ लो। थोड़ी देर बाद उन्हें सूचना दे दी गयी कि सभी लोग भोजन कर चुके हैं।

इसके बाद बाबा योगासन लगाकर बैठ गये। समय गुजरता गया। गर्मी बढ़ती गई। लोग सख्त गर्मी के कारण व्याकुल होने लगे। दूसरी ओर आश्रम के स्थायी निवासियों के चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ गहरी होने लगीं। बाबा इतनी देर तक समाधिस्थ नहीं रहते। भक्तों की परेशानी पर तुरन्त ध्यान देते थे। लोग आपस में कानाफूसी करने लगे। आश्रम के निवासी बाबा के पास आये तो उन्हें ज्ञात हुआ कि वे शरीर छोड़ चुके हैं।

बिजली की तरह यह समाचार पूरे गाँव में ही नहीं, बल्कि काफी दूर तक फैल गया। अपार जन-समूह आश्रम के पास आकर खड़ा हो गया। आश्रम के दक्षिण दिशा की ओर चिता सजायी गयी। हजारों कण्ठों से बाबा के नाम की जय ध्वनि हुई। पण्डितजी के साथ-साथ भक्तगण कहने लगे—

''अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।''





३

प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी

श्री सतीशनाथ मुखर्जी के बारे में श्रद्धेय महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज ने लिखा है—"एक प्रकार से उन्हें भारतीय स्वतन्त्रता को नयी दिशा देने वाला युग-प्रवर्तक पुरुष कहा जा सकता है। बंग-भंग-आन्दोलन के समय 'डॉन सोसायटी' की स्थापना करने वाले उद्यमी कार्यकर्ता और स्वदेशी-आन्दोलन के कर्मठ लोगों में आप अग्रणी थे। राष्ट्रीय आन्दोलन को तेज करने के लिए आपने बड़ौदा से श्री अरविन्द को बुलाया था। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद गांधीजी के प्रिय भक्त थे, पर सतीशचन्द्र मुखर्जी के अनुगत शिष्य थे।"

सतीशचन्द्र मुखर्जी ने अपने जीवन में जितने महत्वपूर्ण कार्य किये, उन सभी के पीछे प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी का हाथ रहा है। एक अलौकिक घटना के कारण सतीश बाबू जैसे विद्रोही व्यक्ति को गोस्वामीजी से दीक्षा लेने को बाध्य होना पड़ा।

गोस्वामीजी का एक शिष्य सतीशचन्द्रजी का घनिष्ठ मित्र था। अचानक एक दिन उसके मन में आया कि अगर मैं सतीश को अपने गुरुदेव के पास ले चलूँ तो इसका भला होगा। गोस्वामीजी से आज्ञा लेकर वह सतीश बाबू के पास आया। उन दिनों सतीश बाबू उग्र मिजाज के थे। उन्हें धर्म, साधु, भक्ति के प्रति लगाव नहीं था। उन्होंने प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

मित्र ने कहा—"मैं यह सब नहीं सुनना चाहता। तुम्हें मेरे साथ गुरुदेव के पास जाना पड़ेगा। कल सवेरे मैं यहाँ आ जाऊँगा। तुम तैयार रहना।"

उसी दिन रात को उन्होंने सोचा कि मित्र कल सवेरे मुझे ले जाने के लिए आने वाला है। मैं भोर में कहीं निकल जाऊँगा। न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी। जब मैं नहीं रहूँगा, तब किसे ले जायेगा। वे दूसरे दिन भोर के समय गोस्वामीजी के भवन के विपरीत दिशा में घूमने निकल गये। लेकिन भगवान् की मंशा कुछ और ही थी। सतीश बाबू के भविष्य का लेखा तैयार हो चुका था। काफी देर तक बेमतलब घूमते रहने के कारण उन्हें प्यास महसूस हुई। पानी पीने की इच्छा से सामने के भवन के बाहर बैठे एक हमउम्र युवक के पास आकर उन्होंने निवेदन किया। युवक ने कहा—"कृपया भीतर आइये।"

उस भवन के भीतर जाकर उन्होंने देखा कि सामने के कमरे में दो आसन बिछे हुए हैं। गौर से देखने पर ज्ञात हुआ कि इस समय वे प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी के भवन में हैं और पानी पिलाने वाला युवक उनका पुत्र योगजीवन है। सतीश बाबू को बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस भवन के विपरीत दिशा में जाने पर भी वे कैसे यहाँ आ गये?

सहसा एक मधुर स्वर सुनाई दिया—"सतीश, ठीक समय पर आ गये हो। सामने वाले आसन पर बैठ जाओ।"

सतीश बाबू ने पूछा—"कृपया मुझे एक बात ठीक से समझा दीजिये। मैं आपके यहाँ नहीं आना चाहता था। आपके घर के विपरीत दिशा में चला गया, फिर भी यहाँ कैसे आ गया?"

गोस्वामीजी ने मधुर मुस्कान के साथ कहा—"आज इसी समय तुम्हें मुझसे दीक्षा लेनी थी। भवितव्य होकर ही रहता है। उसे कोई टाल नहीं सकता।"

सतीश ने चुपचाप दीक्षा ग्रहण की और उसी दिन से उनके आध्यात्मिक जीवन का नया सूत्रपात हुआ। गोस्वामीजी असाधारण योगी थे। उन्हें अपने जीवन में अनेक चमत्कारों का सामना करना पड़ा था।

× × ×

मृत्यु आसन्न है समझ कर गोपीमाधव ने घर के लोगों से आग्रह किया कि उन्हें

गंगा किनारे ले चलें। पतितपावनी गंगा के किनारे आते ही उनमें आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ। उन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई। चारों ओर चकित दृष्टि से सभी को देखने के बाद उनकी आँखें चचेरे भाई आनन्दचन्द्र के चेहरे पर जम गयीं।

हाथ के इशारे से उन्हें पास बुला कर गोपीमाधव ने कहा—"आनन्द! मैं जा रहा हूँ। जाने के पहले मैं तुमसे एक अनुरोध करना चाहता हूँ, क्या तुम अपने बड़े भाई का यह आग्रह स्वीकार करोगे?"

अपने उमड़ते हुए आँसुओं को रोक कर आनन्दचन्द्र ने कहा—"आज्ञा दीजिये। यदि असम्भव न हुआ तो उसे स्वीकार कर लूँगा।"

गोपीमाधव ने कहा—"वंश-रक्षा के लिये आवश्यक है कि तुम पुनर्विवाह कर लो। यही मेरा अन्तिम अनुरोध है।"

आनन्दचन्द्र चुप हो गये। अपनी दूसरी पत्नी के निधन के बाद से वे इतने दुःखी थे कि अब पुनर्विवाह नहीं करेंगे, यही निश्चय किया था। अभी तक दोनों भाई अपुत्रक थे। आनन्दचन्द्र ने कहा था कि मैं बाकी समय में छात्रों को पढ़ाऊँगा। पूजा-पाठ और भगवत्-चर्चा मेरा मुख्य कार्य होगा। इधर लम्बे अर्से से वे एकाकी जीवन व्यतीत कर रहे थे।

गोपीमाधव ने कहा—"इसके पूर्व कभी मैंने तुमसे कुछ नहीं कहा। यहाँ आने के बाद सहसा मेरे मन में यह बात उत्पन्न हुई कि इस बारे में तुमसे अनुरोध करूँ। हम दोनों को सन्तान नहीं है। इस अनुरोध को स्वीकार कर लो। एक और विवाह कर लो। इस विवाह से तुम्हें दो पुत्र होंगे। बड़े पुत्र को अपने पास रखना। उससे तुम्हारा वंश चलेगा और छोटे पुत्र को अपनी भाभी को दत्तक-पुत्र के रूप में दे देना।"

मरणासन्न भाई के इस अन्तिम अनुरोध को आनन्दचन्द्र ने स्वीकार कर लिया। इसके बाद वे परमधाम चले गये।

बड़े भाई के आदेशानुसार आनन्दचन्द्र ने तीसरा विवाह किया। समयानुसार उन्हें दो पुत्र हुए। बड़े का नाम ब्रजगोपाल और छोटे का नाम विजयकृष्ण रखा गया। बड़े भाई को दिये गये वचन के अनुसार आनन्दचन्द्र ने एक दिन गाँव के सम्भ्रान्त व्यक्तियों की उपस्थिति में, अपने छोटे पुत्र विजयकृष्ण गोस्वामी को, दत्तक-पुत्र के रूप में बड़े भाई की विधवा पत्नी को दान कर दिया।

गोस्वामीजी की सगी माता स्वर्णमयी देवी अत्यन्त दयालु और परोपकारी थीं। अपनी पूजनीया माता के बारे में पूज्य गोस्वामीजी कहा करते थे—"मेरी माँ में जितनी दया है, अगर उसकी एक बूँद भी मुझे मिलती तो मैं धन्य हो जाता। सच पूछो तो मुझमें जितनी दया है, वह मेरी माँ की देन है। मेरी दया तो उसी सिन्धु का एक क्षुद्र बिन्दु है।"

भगवान् श्रीकृष्ण और महाप्रभु चैतन्य की भाँति विजयकृष्ण का आविर्भाव हुआ

था। उनकी माँ स्वर्णमयी का कथन है—"मेरे विजय के जन्म के पूर्व उसके पिता ने वीर्याधान नहीं किया था। केवल इच्छा प्रकट की कि मेरा गर्भ-संचार हो। उनकी इच्छा-शक्ति के प्रभाव से मैं गर्भवती हुई। जिन दिनों विजय मेरे गर्भ में था, उन दिनों मुझे बराबर भगवत्-दर्शन होते थे। सूर्य की रश्मि में राधाकृष्ण के दर्शन होते थे।"

झूलन पूर्णिमा के दिन स्वर्णमयी देवी को प्रसव-वेदना आरम्भ हुई। वे शौच के लिये अरुई के जंगल में गयीं और वहीं विजय का जन्म हुआ। गोस्वामीजी के बड़े होने पर अक्सर स्वर्णमयी देवी परिहास करती हुई कहतीं—"तू तो अरुई के जंगल में पैदा हुआ था।"

गोस्वामीजी के जन्म का समाचार पाते ही स्वर्गीय गोपीमाधव की पत्नी कृष्णमणि देवी ने बड़े उत्साह के साथ समारोह किया। अन्नप्राशन के अवसर पर इनका नामकरण हुआ। बाद में वे दत्तक-पुत्र घोषित हुए। गोस्वामीजी अपनी जन्मदात्री को 'दुदुमा' और दत्तक ग्रहणकारिणी को 'माँ जननी' कहा करते थे।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' के अनुसार आप बचपन से ही तेजस्वी, मेधावी, दयालु प्रकृति के थे। आपकी सरलता से लोग मुग्ध हो उठते थे। किसी को मुसीबत में देख कर उसकी सहायता करने के लिए दौड़ जाते थे। कमजोर वर्ग के प्रति अत्याचार करते देख स्वयं खड्गहस्त हो जाते थे।

अवतारी पुरुषों पर प्रारम्भ से ही भगवान् की अनुकंपा रहती है। माँ के साथ आप किसी रिश्तेदार के यहाँ विवाह में गये हुए थे। पास ही डाकुओं का एक दल काली पूजा की तैयारी कर रहा था। उन्हें नर-बलि देने के लिए एक नर की आवश्यकता थी। उस समय गोस्वामीजी विवाह वाले कमरे में अकेले सो रहे थे। डाकुओं ने आपका अपहरण कर लिया। ज्योंही आपको मारने के लिए डाकू तैयार हुए, त्योंही न जाने कहाँ से एक पागल वहाँ आ गया। उसने बलि देने वाले से गण्डासा छीन कर शेष लोगों को मारने के लिए दौड़ाया। इस अप्रत्याशित घटना से भयभीत होकर डाकुओं का दल भाग खड़ा हुआ। बाद में पागल उन्हें गोद में उठा कर माँ के पास छोड़ आया।

गोस्वामीजी जब ढाई वर्ष के थे, तभी इनके पिता तथा बाद में दत्तक लेने वाली 'माँ जननी' का देहान्त हो गया। फलत: उनकी माता स्वर्णमयी देवी को गृहस्थी चलाने के लिए शिष्यों के घर जाना पड़ता था। इसी बीच गोस्वामीजी का उपनयन हो गया था और पाठशाला की शिक्षा समाप्त कर वे टोल में पढ़ने लगे थे। प्रत्येक प्रतिभावान बालक बचपन में वाचाल होता है। गोस्वामीजी बचपन में काफी शैतानी करते थे। पेड़ पर चढ़ कर राह चलते व्यक्ति पर पेशाब कर देना, नदी में स्नान करते समय लोगों पर पानी के छींटे डालना, डुबकी लगा कर स्नान करने वालों के पैर पकड़ कर खींचना आदि शरारतें किया करते थे।

पकड़े जाने पर रिरियाते हुए कहते—"मुझे छोड़ दीजिये, अब ऐसी बदमाशी कभी नहीं करूँगा।"

इनके कहने के ढंग में ऐसा शिशुसुलभ-भाव रहता कि मारने वालों को दया आ जाती थी। एक बार आपने अद्‍भुत स्वप्न देखा। अपने स्वप्न की चर्चा करते हुए उन्होंने माँ से कहा—"माँ, कल पिताजी मुझे गोद में लेकर चन्द्रलोक गये थे। वहाँ अनेक नदी, वृक्ष, पहाड़ और अद्‍भुत दृश्य थे। उन्होंने मुझसे पूछा कि तू साधु बनेगा? मेरे वंश में एक व्यक्ति साधु बनेगा। मैंने उनसे कहा—'अगर आपका आशीर्वाद मिला तो जरूर बनूँगा।' मेरी बात सुन कर वे बड़े प्रसन्न हुए। बाद में मुझे यहाँ छोड़ गये।"

सारी बातें सुनते ही माँ अनजाने भय से काँप उठी। परलोकवासी आत्मा से साक्षात् होना अशुभ मान कर उन्होंने बच्चे के गले में रक्षा-कवच पहना दिया।

रंगपुर जिले में काफी तादाद में ग्वाले रहते हैं जो गोस्वामीजी के शिष्य हैं। इनमें से एक ग्वाले को किसी अपराध के कारण गोस्वामीजी के पट्टीदार गोस्वामियों ने समाज से बहिष्कृत कर दिया था। गुरु-घराने के आदेश के कारण लोगों ने उसे भोज में बुलाना बन्द कर दिया। यहाँ तक कि नाई-धोबी आदि की सेवाएँ बन्द हो गयीं। उसकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी।

कुछ दिनों बाद परम्परा के अनुसार गोस्वामीजी रंगपुर स्थित अपने शिष्यों के यहाँ आये। गुरुजी के आगमन का समाचार सुन कर सभी शिष्य एकत्रित हुए। केवल समाज से बहिष्कृत ग्वाला नहीं आया। उसे न देख कर गोस्वामीजी ने उसके बारे में प्रश्न किया।

एक व्यक्ति ने खड़े होकर कहा—"मालिकों ने किसी अपराध के कारण उस पर तीन सौ रुपये जुर्माना किया है। बेचारा इतना रुपया कहाँ से लायेगा? जुर्माना न चुकाने के कारण उसे समाज से निकाल दिया गया है। मालिकों के आदेश के कारण हम लोगों ने उसके साथ सम्पर्क तोड़ लिये हैं। धोबी-नाई आदि की सेवाएँ बन्द हैं। इन दिनों वह बड़ी मुसीबत में है।"

इस घटना को सुनते ही विजयकृष्ण गोस्वामी रो पड़े। तुरन्त उठ कर खड़े होते हुए बोले—"मैं उसके घर जाना चाहता हूँ। तुम लोग मुझे उसके घर ले चलो।"

दूर से गोस्वामीजी को अनेक लोगों के साथ आते देख वह व्यक्ति घर के भीतर छिप गया। काफी देर तक अनुनय करने के बाद वह घर से बाहर आया। गोस्वामीजी के चरणों पर माथा रख कर रोने लगा। उसे उठा कर गले से लगाते हुए स्वयं गोस्वामीजी रो पड़े। बोले—"तुम्हें डरने की जरूरत नहीं। जुर्माना भी नहीं देना पड़ेगा। आज ही सभी लोग तुम्हें अपने समाज में ले लेंगे।"

इसके बाद गोस्वामीजी ने साथ आये लोगों से पूछा—"इस व्यक्ति को अपनी बिरादरी में पुन: वापस लेने में किसी को कोई आपत्ति है?"

लोगों ने कहा—"हमें कोई आपत्ति नहीं है। प्रभुओं के आदेश से हमने इसे जातिच्युत किया था। इससे हमें स्वत: कष्ट हो रहा था। आपकी आज्ञा से हम आज ही इसे अपनी बिरादरी में ले लेंगे।"

उसी दिन नाई बुला कर उसका मुण्डन कराया गया। स्नान के बाद उसने गोस्वामीजी को प्रणाम किया। सभी बिरादरी के लोगों के साथ भोजन किया। सारा कार्य गोस्वामीजी के सामने संपन्न होने पर सभी गोप प्रसन्न हो उठे। वहाँ से रवाना होने के पूर्व गोस्वामीजी ने अपने पट्टीदारों को कहा—"केवल अर्थ के लिए किसी को इतना कष्ट नहीं देना चाहिए। गुरु को शिष्यों के प्रति इतना कठोर नहीं होना चाहिए। यह मनुष्योचित कार्य नहीं था।"

सांतरागाछी में रहते हुए गोस्वामीजी संस्कृत कालेज पढ़ने जाते थे। उन्हीं दिनों उनका विवाह स्वर्गीय रामचन्द्र भादुड़ी की कन्या योगमाया देवी से हुआ। उन दिनों आपकी उम्र सत्रह और योगमाया देवी की छह वर्ष की थी। छह वर्ष की बालिका घर-गृहस्थी का हाल क्या जानती। अक्सर वह गोस्वामीजी के पठन-पाठन में व्याघात पहुँचाने लगी। पुस्तक छीन लेती, इनके ऊपर चढ़ जाती, कहने का मतलब इन्हें हर प्रकार से परेशान करती थी। गोस्वामीजी के नाराज होने पर कहती—"क्या दिन-रात पढ़ते रहते हो। आओ, मेरे साथ खेलो।"

एक दिन वह पूछ बैठी—"मैं तुम्हें किस नाम से पुकारूँ?" गोस्वामीजी ने कहा—"आर्यपुत्र कह सकती हो।" उसी दिन से योगमाया देवी गोस्वामीजी को आर्यपुत्र कहने लगीं।

विवाह के बाद गोस्वामीजी हिन्दू शास्त्रों का अध्ययन करने लगे। फलस्वरूप घोर वेदान्तिक बन गये। मायावादी हो जाने के कारण पूजा-पाठ बन्द कर दिया। ठीक इन्हीं दिनों एक महिला इनके पास आकर बोली—"गुरुदेव, मैं त्रिपाप के कारण त्रस्त हूँ। कृपया मेरा उद्धार कीजिये।"

शिष्या की बातें सुन कर गोस्वामीजी चौंक उठे। उन्होंने सोचा कि मैं स्वयं मायापाश में आबद्ध हूँ, ऐसी स्थिति में दूसरे का उद्धार कैसे करूँगा? आखिर मैं यह सब क्या कर रहा हूँ? अब आज से मुझे गुरुगिरी छोड़ देनी चाहिए। शिष्य-व्यवसाय मेरे लिए उचित नहीं है। इसी प्रकार चिन्ता करते हुए एक दिन आप किसी शिष्य के घर से वापस लौट रहे थे कि अचानक एक ओर से आवाज आयी—'परलोक की चिन्ता करो।'

किसने कहा, क्यों कहा? कहाँ है वह व्यक्ति? चकित-भाव से चारों तरफ देखने

के बाद भी अलक्ष्य व्यक्ति दिखाई नहीं दिया। इस अद्‌भुत घटना के बाद आप कलकत्ता चले आये।

कलकत्ता आने के पूर्व आप एक बार बगुड़ा गये थे। वहाँ के ब्रह्म-समाजियों के निकट वायदा किया था कि अगर कलकत्ता गया तो वहाँ का ब्रह्म-समाज जरूर देखूँगा। यहाँ आने पर उन्हें इस बात की याद आयी। एक दिन वे जोड़ासांको स्थित ठाकुर भवन में गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि लोग भक्ति के स्तोत्र पाठ कर रहे हैं। संगीत के माध्यम से उपासना कर रहे हैं। यह सब देख कर ब्रह्म-समाज के प्रति उनकी जो पूर्व धारणा थी, गायब हो गयी। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के भाषण का इन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। देवेन्द्रनाथ को गुरु मान कर उन्होंने ब्रह्म-समाज को स्वीकार कर लिया।

ब्रह्म-समाजी होते ही गुरुगिरी और शिष्यों के घर जाना बन्द कर दिया। एक दिन आप अपने कमरे में बैठे ईश्वर और जीव के बारे में चर्चा कर रहे थे। आपने कहा—"प्रत्येक जीव ईश्वर से ही उत्पन्न हुआ है। पृथ्वी की समस्त जातियां के पिता ईश्वर हैं। जाति-भेद तो हमारी देन है। एक ओर हम किसी को पूज्य और पवित्र समझते हैं और वहीं दूसरी ओर किसी को अछूत समझ कर स्पर्श नहीं करते। यह अन्याय है।"

इस गोष्ठी में ग्यारह वर्ष का एक बालक उपस्थित था। सहसा उसने पूछा—"जब आप जाति-भेद को नहीं मानते, तब अपने गले में जनेऊ क्यों पहन रखा है? ब्राह्मणपन का नाटक करने की क्या जरूरत? क्या यह छलावा नहीं है?"

इस बात को सुनते ही गोस्वामीजी चौंक उठे। अब तक उनका इस ओर ध्यान नहीं गया था। बात माकूल थी। उन्होंने कहा—"तुम्हारा कहना ठीक है। जनेऊ धारण करने का अर्थ है—जाति-भेद मानना। अब मै आज से जनेऊ धारण नहीं करूँगा।"

गोस्वामीजी को जनेऊ उतारते देख उस बालक ने तुरन्त उनकी माँ के पास जाकर यह समाचार सुनाया। यह समाचार पाते ही माँ दौड़ी हुई आयीं। गोस्वामीजी ने माँ के अनुरोध को अस्वीकार कर दिया। फलतः माताजी इतनी कुपित हुईं कि आत्महत्या करने को उद्यत हो गयीं। इस घटना से भयभीत होकर उन्होंने जनेऊ पुनः पहन लिया।

सन् १८६० ई. में 'संगत-सभा' नामक एक संस्था की स्थापना हुई। यहाँ ब्राह्म सदस्य एकत्रित होकर धर्म-चर्चा किया करते थे। गोस्वामीजी इस संस्था के सदस्य बन गये। पूर्ण ब्रह्म-समाजी बनने के कारण पुनः जनेऊ पहनना बन्द कर दिया। कट्टरपंथियों को यह बात पसन्द नहीं आयी। उन लोगों ने इनका उग्र रूप से विरोध ही नहीं किया, बल्कि बिरादरी से अलग कर दिया। इससे गोस्वामीजी नाराज नहीं हुए। वे और भी तीव्र गति से ब्रह्म-समाज के उत्थान में जुट गये। यहाँ तक कि उन्होंने 'साधारण ब्रह्म-समाज' की स्थापना कर डाली।

ठीक इन्हीं दिनों आप एक बार भगवानदास बाबाजी के यहाँ गये। गोस्वामीजी को देखते ही उन्होंने इन्हें साष्टांग प्रणाम किया। गोस्वामीजी को प्यास महसूस हुई। बाबाजी अपने कमण्डल को अच्छी तरह धोकर पानी ले आये।

गोस्वामीजी ने कहा—"मैं ब्रह्मज्ञानी हूँ। कृपया आप अपने कमण्डल में पानी मत दीजिए। सभी के यहाँ कच्चा भोजन करता हूँ।"

बाबाजी ने कहा—"प्रभु, जाति-बुद्धि विद्यमान रहने पर धर्म प्राप्ति नहीं होती। केवल भक्ति-देवी प्राप्त होती है। रहा ब्रह्म-ज्ञान का प्रश्न, वही तो भक्ति-प्राप्ति की जड़ है। बिना ब्रह्म-ज्ञान के भक्ति कैसे प्राप्त होगी। कृपया आप मेरी परीक्षा न लें। अब जल ग्रहण करें।"

गोस्वामीजी के पानी पीने के बाद शेष पानी बाबाजी ने पी लिया। यह दृश्य देख कर वहाँ बैठे एक सज्जन ने कहा—"बाबाजी! आपको मालूम है या नहीं? गोस्वामीजी ने जनेऊ फेंक दिया है।"

बाबाजी—"अद्वैतवादी जनेऊ नहीं रखते। यह क्यों नहीं देखते कि अद्वैत का सन्तान ब्रह्म-समाज में जाकर भी आचार्य पद पर प्रतिष्ठित है।"

दूसरे व्यक्ति ने कहा—"कुर्ता-जूता पहनने वाला आचार्य है?"

बाबाजी—"प्रभु को सुसज्जित करना हमारा कार्य है। हमारे लिए यह दुर्भाग्य की बात है कि हम ऐसा नहीं करते। इन्होंने स्वयं इन सामग्रियों का संकलन किया है। यह देख कर हम प्रसन्न हों, ऐसा सौभाग्य भी हमारे पास नहीं है।"

इस उत्तर को सुन कर सभी लोग चुप रह गये। गोस्वामीजी के विरुद्ध लोग अपना मंतव्य प्रकट करते हैं, यह बात उनसे छिपी नहीं रही, पर वे इन बातों को लेकर परेशान नहीं होते थे। यहाँ तक कि ब्रह्म-समाज की सेवा में लगे रहने के कारण कभी-कभी इन्हें भूखा ही रह जाना पड़ता था। एक बार इनका एक पड़ोसी इनसे मिलने आया तो उसे ज्ञात हुआ कि पूरा परिवार कई दिनों से अनाहार है। तुरन्त उन्होंने अपनी जेब में हाथ डाला। उसमें डेढ़ पैसे थे। डेढ़ पैसे की लाई से उस दिन का काम चला।

ब्राह्म-धर्म के प्रचार के सिलसिले में आप लाहौर आये। यहाँ आपकी मुलाकात एक अपूर्व सुन्दरी से हुई। उसे देख कर आपके मन में विकार उत्पन्न हो गया। मन में ज्ञान का झटका लगते ही बड़ी ग्लानि हुई। इस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए उन्होंने कमर में पत्थर बाँध कर, रावी में आत्महत्या करने का निश्चय किया। ज्योंही वे कूदने को प्रस्तुत हुए, त्योंही पीछे से किसी ने उन्हें पकड़ लिया। पलट कर गोस्वामीजी ने देखा—वह एक फकीर था।

फकीर ने कहा—"जान देने से पाप-प्रवृत्ति का नाश नहीं होगा। धीरज धरो। मुझे

खुदा से हुक्म मिला कि मेरा एक बन्दा खुदकशी करने जा रहा है। जा, उसे रोक। मैं बहुत दूर से यहाँ आया हूँ। तुम्हारा भला होगा। खुदा ने तुम्हारे लिए सब ठीक कर रखा है। आगे तमाशा देखना।''

धर्म-प्रचार के सिलसिले में आप काशी आये और यहाँ वे लोकनाथ मैत्रेय के यहाँ ठहरे। काशी में रहते समय गोस्वामीजी अक्सर तैलंग स्वामी के यहाँ जाते थे। तैलंग स्वामी को काशी विश्वनाथ का अवतार समझा जाता था। नगर के लोग स्वामीजी की पूजा करते थे। एक दिन तैलंग स्वामी गोस्वामीजी को लेकर वरुणा नदी की ओर चल पड़े। नदी किनारे आकर उन्होंने गोस्वामीजी से कहा—''जाओ, नदी में स्नान कर आओ। मैं तुम्हें दीक्षा दूंगा।''

गोस्वामीजी ने कहा—''आप मुझे क्यों दीक्षा देंगे? मैं दीक्षा आपसे क्यों लूँगा? आप तो खड़े-खड़े शिवलिंग पर लघुशंका करते हैं।''

तैलंग स्वामी ने कहा—''मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा, क्योंकि मैं तुम्हारा असली गुरु नहीं हूँ। मेरा जितना कर्तव्य है, वही करूँगा। बाद में असली गुरु तुम्हें दीक्षा देंगे।''

गोस्वामीजी ने कहा—''मैं यह सब नहीं मानता।''

यह सुन कर तैलंग स्वामी ने उन्हें पकड़ कर जबरन नहलाया। इसके बाद दीक्षा देते ही गोस्वामीजी की मनःस्थिति बदल गयी। तैलंग स्वामी ने कहा—''यह तुम्हारी आखिरी दीक्षा नहीं है। तुम्हारे गुरु उपयुक्त समय पर दीक्षा देंगे। वे समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मुझे जितना करना था, उसे पूरा कर दिया।''

काफी दिनों के बाद गोस्वामीजी की मुलाकात एक सौम्य मूर्ति वाले संन्यासी से हुई। उन्हें प्रणाम करते ही उन्होंने गोस्वामीजी के सिर पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया। उनके स्पर्श से गोस्वामीजी का सारा तन-मन स्निग्ध हो उठा। देर तक उनसे धर्म सम्बन्धी चर्चा होती रही। बातचीत के सिलसिले में गोस्वामीजी ने कहा—''जाने क्यों मुझे शान्ति नहीं मिलती। बराबर बेचैन रहता हूँ।''

स्वामीजी ने कहा—''यह बात अपने गुरु से कहो। वे इसका उपाय बतायेंगे।''

गोस्वामीजी ने कहा—''एक तो मैं गुरुवाद नहीं मानता, दूसरे मेरा कोई गुरु नहीं है।''

स्वामीजी ने हँस कर कहा—''बिना गुरु के धर्म की प्राप्ति नहीं होती। स्वयं भगवान् राम और कृष्ण को गुरुओं के निकट जाकर दीक्षा लेनी पड़ी थी।''

स्वामीजी की बातें सुन कर गोस्वामीजी अपने आप में खो गये। इसके बाद धीरे से बोले—''गुरु के बिना अगर धर्म की प्राप्ति नहीं होती तो आप मेरे गुरु बन जाइये।''

स्वामीजी—"मैं तुम्हारा गुरु नहीं बन सकता। जो गुरु तुम्हें दीक्षा देंगे, वे समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

इस घटना के कुछ दिनों बाद आप दार्जिलिंग गये। एक दिन रात के वक्त जंगल के भीतर से आ रहे थे। सहसा एक दिव्य ज्योति देख कर आप रुक गये। पास जाकर आपने देखा—एक बौद्ध योगी अपने आसन पर ध्यानस्थ थे। उनके मस्तिष्क से ज्योति निकल कर चारों ओर प्रकाशमान है। यह दृश्य देख कर वे विस्मयाभिभूत हो उठे। काफी देर तक वे अपलक दृष्टि से योगी को देखते रहे। कुछ देर बाद जब योगी का ध्यान भंग हुआ, तब उन्हें प्रणाम करने के बाद गोस्वामीजी ने पूछा—"आपके मस्तिष्क से एक अद्‌भुत ज्योति निकल रही थी। इस वक्त वह गायब हो गयी। ऐसा कैसे हुआ?"

योगी ने कहा—"साधना के माध्यम से जब कुण्डलिनी-शक्ति षट्‌चक्र भेद करती हुई मस्तिष्क के सहस्रदल कमल में पहुँचती है, तब वह ज्योति निकलती है।"

इस अद्‌भुत तथ्य को सुनने पर गोस्वामीजी समझ गये कि यह योगीजी उच्च-कोटि के साधक हैं। इनसे दीक्षा लेनी चाहिए। उनका मंतव्य सुन कर योगी ने कहा—"मुझे दीक्षा देने का अधिकार प्राप्त नहीं है। नर्मदा के किनारे मेरे गुरुदेव रहते हैं, आप उनके निकट जाइये।"

योगीजी के बताये स्थान पर गोस्वामीजी आये। योगी के गुरु से अपनी इच्छा प्रकट करते ही उन्होंने कहा—"वास्तव में तुम्हारा गुरु मैं नहीं हूँ। तुम्हारे जो गुरु हैं, वे समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं। घबराने की बात नहीं है, जल्द वह समय आने वाला है।"

गोस्वामीजी का अतृप्त हृदय बराबर उस गुरु की तलाश में लगा रहा, जिसके बारे में अधिकांश साधक आश्वासन देते आ रहे थे। ब्रह्म-समाज की ओर से धर्म-प्रचार के लिए वे गया शहर में आये। यहाँ वे गोविन्दचन्द्र रक्षित के घर ठहरे। इनकी प्रवृत्ति-प्रकृति देख कर एक दिन रक्षित महाशय ने कहा—"यहाँ के आकाशगंगा पहाड़ पर बाबा रघुवरदास रहते हैं। सुनता हूँ कि बड़े सिद्ध पुरुष हैं। असल में आकाशगंगा पहाड़ सिद्ध योगियों के लिए उपयुक्त है।"

अन्धे को क्या चाहिए, दो आँखें। रक्षितजी की बातों ने उन्हें आकर्षित किया। गोस्वामीजी ने कहा—"चलो, कल सवेरे वहाँ चलेंगे। सिद्ध योगियों से ज्ञान की प्राप्ति होगी।"

आकाशगंगा पहाड़ पर आते ही गोस्वामीजी ने देखा—बहुत दूर एक बाबा बैठे हाथ के इशारे से उन्हें बुला रहे हैं। बाबा के समीप आते ही गोस्वामीजी उनके चरणों पर गिर पड़े। बोले—"मेरे ऊपर दया करें। मैं धर्म के बारे में कुछ नहीं जानता।"

बाबा ने कहा—"निराश होने की जरूरत नहीं, बेटा। तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी। तुम तो देवी के कृपा-पात्र हो। समय आने दो।"

इसके बाद दोनों व्यक्ति धर्मालोचना करने लगे। बाबा के पास एक ब्रह्मचारी भी रहते थे। गोस्वामीजी यहाँ नित्य बाबा से मिलने आते थे। एक दिन वे बाहर बैठे ब्रह्मचारी से बातें कर रहे थे। कुछ चरवाहे बालक पास आये। उनमें से एक ने कहा—"इस पर्वत के ऊपर एक साधु महाराज बैठे हैं।"

गोस्वामीजी के मन में उत्सुकता हुई। अपने मित्र को साथ लेकर वे पहाड़ पर गये। वहाँ जाने पर गोस्वामीजी ने देखा कि एक सन्त बैठे हैं। उनके शरीर से दिव्य ज्योति निकल रही थी। आँखें चार होते ही गोस्वामीजी के अन्तस् में भक्ति का ज्वार उमड़ पड़ा। साथ लाये फल-फूल उनके चरणों के पास रख कर बैठ गये। कुछ देर बातचीत करने के बाद चले आये। इसके बाद नित्य ब्रह्मचारीजी के साथ दर्शन करने जाते रहे।

एक दिन अकेले जाना पड़ा। ब्रह्मचारीजी किसी कार्य से शहर गये हुए थे। उस दिन वहाँ जाते ही गोस्वामीजी व्याकुल हो उठे। यहाँ तक कि रो पड़े। इन्हें अचानक रोते देख कर महात्माजी ने पास बुलाया, फिर गोद में बैठा कर दीक्षा दी। बीजमन्त्र दिये। बीजमन्त्र पाते ही गोस्वामीजी को लगा जैसे बिजली का एक झटका सारे शरीर की तन्त्रियों को झकझोर गया। बाद में महात्माजी उन्हें साधना की विभिन्न प्रणालियों के बारे में बताने लगे।

सहसा यह सब करते-करते गोस्वामीजी बेहोश हो गये। काफी देर बाद होश आने पर उन्होंने चकित-भाव से देखा—महात्माजी अन्तर्धान हो गये हैं। इधर-उधर काफी देर तक वे महात्माजी की तलाश में चक्कर काटने के बाद वापस आ गये।

आखिर एक दिन उनके हृदय की तृष्णा शान्त हुई। उस दिन वे रामशिला पहाड़ पर घूमने गये थे। सहसा उनके गुरु वहाँ दिखाई दे गये। गोस्वामीजी के हाथ को पकड़ कर बोले—"मेरे लिए इतना व्याकुल होने की जरूरत नहीं। वक्त आने पर तुम्हें सब कुछ मिल जायेगा। साधना करते रहो। कठोर-साधना से ही साधक को इच्छित सामग्री मिलती है।"

गुरु के दर्शन मात्र से ही वे आनन्द से विभोर हो उठे थे। गोस्वामीजी के गुरु का नाम ब्रह्मानन्द स्वामी था। नानकपंथी यानी पंजाबी थे। अधिकतर वे मानस सरोवर में रहते हैं। कभी-कभी शिष्यों से मिलने चले आते हैं।

गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर गोस्वामीजी आकाशगंगा पहाड़ पर कठोर-साधना करने लगे। आहार-निद्रा त्याग कर नये साधन में जुट गये। कुछ दिनों बाद एक दिन गुरुजी आये और कहा—"वत्स, अब तुम्हें संन्यास ग्रहण करना पड़ेगा। काशी में हरिहरानन्द एक संन्यासी रहते हैं। तुम शीघ्र उनके पास चले जाओ। उनसे संन्यास ले

लो। उनके निकट कोई बात मत छिपाना। इसके बाद वे जो आज्ञा दें, बिना मीन-मेख किये उसे मान लेना। इससे तुम्हारा भला होगा।''

गुरुदेव की आज्ञा मान कर गोस्वामीजी काशी चले आये। हरिहरानन्द के पास जाकर अपनी सारी रामकहानी सुनाने के बाद संन्यास देने की प्रार्थना की।

स्वामीजी ने कहा—''तुम अत्यन्त पवित्र और सदाचारी हो, परन्तु शास्त्रों की मर्यादा का पालन करना जरूरी है। तुम्हें प्रायश्चित्त करने के बाद यज्ञोपवीत धारण करना पड़ेगा। बात यह है कि संन्यास ग्रहण करते समय ब्राह्मणों को शिखा-सूत्र त्याग करना पड़ता है। इतने कार्य करके आओ, तब आगे का कार्य किया जायेगा।''

स्वामीजी की आज्ञानुसार गोस्वामीजी ने प्रायश्चित्त किया। यज्ञोपवीत धारण किया, बाद में शिखा-सूत्र त्याग कर उन्होंने संन्यास-धर्म ग्रहण किया। संन्यास लेने के बाद उन्होंने निश्चय किया कि अब मुझे हमेशा के लिए गृहस्थाश्रम त्याग देना चाहिए, क्योंकि अब मैं संन्यासी हो गया हूँ। तभी उनके गुरुदेव प्रकट हुए और कहा—''नहीं, तुम्हें गृहस्थाश्रम नहीं छोड़ना है। तुम पत्नी, पुत्र-पुत्रियों के साथ रह कर साधना करते रहो। ब्रह्म-समाज को भी मत छोड़ो। समयानुसार एक-एक कर सब अलग हो जायेंगे।''

एक दिन बातचीत के सिलसिले में गोस्वामीजी ने अपने गुरुदेव से पूछा—''शास्त्रों में जितनी सिद्धि की बातें हैं, क्या वह सब सत्य हैं?''

''क्या तुम्हें विश्वास नहीं होता?''

गोस्वामीजी—''जी, नहीं।''

गुरुदेव ने कहा—''शास्त्रों में जिन सिद्धियों का वर्णन है, वह सब तपस्या के जरिए प्राप्त किया जा सकता है। आओ, आज तुम्हें कुछ दिखाता हूँ।''

इसके बाद गोस्वामीजी को अपने साथ लेकर गुरुदेव एक निर्जन स्थान में आये। एक के बाद एक करके उन्होंने सभी सिद्धियाँ दिखाईं। कभी हवा से छोटा बन कर पक्षी की तरह आकाश में उड़ने लगे। कभी अणु बन कर, पहाड़ को भेदते हुए दूसरी ओर निकल गये। इस प्रकार अष्ट सिद्धियों का प्रयोग उन्होंने किया। यहाँ तक कि सूक्ष्म शरीर के रूप में वे मृत शरीर में प्रवेश कर गये, जबकि उनका शरीर वहाँ मृतावस्था में पड़ा रहा।

यह सारा दृश्य देख कर गोस्वामीजी रोमांचित हो उठे। गुरुदेव ने मुस्कराते हुए पूछा—''अब भी विश्वास हुआ या नहीं?''

गोस्वामीजी ने सिर हिला कर स्वीकार करते हुए गुरुदेव को प्रणाम किया।

इधर उनके मित्रों ने एक नया गुल खिलाया। गोस्वामीजी को गेरुआ वस्त्र पहनते देख सभी भयभीत हो गये। उन्हें भय हुआ कि वे गृहस्थी छोड़ कर अन्यत्र न चले

जायें। तुरन्त इस आशंका की सूचना योगमाया देवी को दी गयी। योगमाया देवी अविलम्ब गया आयीं और उन्हें साथ लेकर कलकत्ते चली गयीं।

कलकत्ता आने के बाद गोस्वामीजी की ख्याति बढ़ने लगी। उनके विचार तथा भाषणों का प्रभाव लोगों पर पड़ा। बंगाल धर्म-प्राण प्रांत है। फलत: लोग इनसे दीक्षा लेने के लिए आने लगे। इस कार्य के लिये उन्होंने गुरुदेव से आज्ञा प्राप्त की। आज्ञा प्राप्त होते ही वे अपने शिष्यों को दीक्षा देने लगे। गोस्वामीजी जब किसी व्यक्ति को दीक्षा देते थे, तब दीक्षित व्यक्ति के अलावा अन्य कोई वहाँ नहीं रहता था। प्रत्येक व्यक्ति को दीक्षा देने के पहले सर्वप्रथम गुरुदेव से आज्ञा लेते थे। यह आज्ञा आध्यात्मिक ढंग की होती थी। अपने आसन पर बैठे-ही-बैठे वे सूक्ष्म रूप में गुरु से बातें करते थे। जब तक गुरु से आज्ञा नहीं मिलती थी, तब तक वे किसी को दीक्षा नहीं देते थे। दीक्षा देने के बाद गोस्वामीजी प्रत्येक शिष्य को चेतावनी देते थे—''स्त्री-जाति से जितना अधिक दूर रहोगे, साधना ठीक चलेगी। उनके संस्पर्श से दूर रहना।''

गोस्वामीजी की गुरुगिरी ब्राह्म-समाजियों की आँखों में खटकी। अधिकांश लोगों ने इनके विरुद्ध प्रचार करना प्रारम्भ किया। उनका आरोप था—आजकल ब्रह्मचारीजी जो कार्य कर रहे हैं, उससे ब्राह्म-समाज का अनिष्ट हो रहा है। इनके कमरे में तरह-तरह की अश्लील तस्वीरें रखी हैं। गोस्वामीजी छिपा कर दीक्षा देते हैं। इनके शिष्य आपके चरणों पर माथा टेक कर प्रणाम करते हैं। इन सभी प्रकरणों से मनुष्य भगवान् के पद पर प्रतिष्ठित हो रहा है, अतएव इन्हें प्रचारक पद से हटाया जाय।

गोस्वामीजी ने इन आरोपों का कोई उत्तर नहीं दिया। धीरे-धीरे इनके विरुद्ध विरोध इतना उग्र हो गया कि १७ मई को एक विशेष सभा बुलाई गई। इस सभा में गोस्वामीजी ने अपना त्याग-पत्र दे दिया। इस प्रकार उन्हें ब्राह्म-समाज से मुक्ति मिल गयी।

बंगाल के कई नगरों का भ्रमण करते हुए आपने बिहार में प्रवेश किया। यहाँ दरभंगा जिले में आकर आप पेट की पीड़ा से परेशान होने लगे। डॉक्टरी सेवा असफल हो गयी। मेजवान ज्ञान बाबू चिन्तित हो उठे। गोस्वामीजी को देखने के लिए संन्यासी भी आते थे। एक दिन मकान से बाहर निकलते ही ज्ञान बाबू ने देखा—बाहर चौकी पर एक गोरे रंग का संन्यासी बैठा है। आलखल्ला (एक प्रकार का वस्त्र जो गर्दन से पैर तक कुर्ते की भाँति होता है) पहने हुए हैं। उन्होंने सोचा कि गोस्वामीजी को देखने आये होंगे। चूँकि वे जल्दी में थे, इसलिए उन्हें प्रणाम कर अपने कार्य से चले गये।

इसके बाद गोस्वामीजी के स्वास्थ्य में अचानक तेजी से सुधार होने लगा। शाम होते-होते वे पूर्ण रूप से ठीक हो गये।

बातचीत के सिलसिले में ज्ञान बाबू ने कहा—"आज सवेरे एक बाबाजी आये थे। उन्हें भीतर आते नहीं देखा। बाहर ही बैठे रहे और फिर न जाने कहाँ चले गये। व्यस्त रहने के कारण आपको यह समाचार अभी तक कह नहीं सका।"

गोस्वामीजी ने कहा—"मुझे मालूम है। वे स्वयं परमहंसजी थे। उचित समय न होने के कारण उन्होंने अपना परिचय नहीं दिया।"

काफी दिनों तक बीमार रहने के कारण उसी दिन जब गोस्वामीजी स्नान की तैयारी कर रहे थे, तब उनके निकट उनकी पुत्री शान्तिसुधा खड़ी थी। अचानक वह चीख उठी—"ब्रह्मचारीजी।"

उसे डाँटते हुए गोस्वामीजी ने कहा—"चुप-चुप। देख, तूने ब्रह्मचारीजी को देखा है, यह बात किसी से मत कहना। भूलना नहीं।"

शान्तिसुधा ने बारिदी के लोकनाथ ब्रह्मचारी को देखा था। इसके पूर्व वह उनका दर्शन कर चुकी थी, इसलिए उन्हें तुरन्त पहचान गयी थी। उलंग स्थिति में देखने के कारण वह चीख उठी थी।

उसी दिन गोस्वामीजी अपने बच्चों को समझा रहे थे कि जीवन में झूठ नहीं बोलना चाहिए। जो लोग झूठ नहीं कहते, हमेशा सत्य कहते हैं, उन्हें भगवान् के दर्शन होते हैं।

शान्तिसुधा ने कहा—"मैं तो कभी झूठ नहीं बोलती, पर मुझे कभी दर्शन नहीं हुआ।"

गोस्वामीजी ने कहा—"होगा री, होगा।"

शान्तिसुधा ने जिद्द पकड़ ली—"तब मुझे दिखाओ।"

गोस्वामीजी ने कहा—"कल दिखाऊँगा।"

दूसरे दिन स्नान करते समय गोस्वामीजी ने कहा—"कुछ खाने लायक सामान लेती आ।" शान्तिसुधा घर में जाकर माँ से खाद्य-सामग्री माँग लायी। उस वस्तु को हाथ में लेकर गोस्वामीजी कुछ देर तक स्तव-पाठ करते रहे। थोड़ी देर बाद पानी में से दिव्य आभूषणों से सज्जित एक हाथ ऊपर उठ आया। गोस्वामीजी ने खाद्य-वस्तु को उस हाथ पर रख दिया। तुरन्त ही वह हाथ गायब हो गया। शान्तिसुधा की आँखें विस्मय से बड़ी-बड़ी हो गयीं। धीरे से बोली—"क्या यह गंगा देवी का हाथ था?"

गोस्वामीजी ने कहा—"नहीं, यह पद्मा देवी का हाथ था। तुम सब भाग्यवती हो वर्ना कलियुग में प्रत्यक्ष दर्शन दुर्लभ है।"

बिहार के कई स्थानों को देखने के बाद गोस्वामीजी वाराणसी आकर श्री

ज्ञानेन्द्रनाथ गुहाराय के यहाँ ठहरे। एक दिन गोस्वामीजी ने गुहाराय से कहा—"काशी में एक महान् सन्त रहते हैं, स्वामी विशुद्धानन्द। चलो, उनका दर्शन कर आयें।"

गोस्वामीजी को देखते ही स्वामी विशुद्धानन्द ने बड़े आदर के साथ अपने पास बैठाया। ऊँचे दर्जे के साधक स्वतः एक-दूसरे की प्रतिभा को देख कर समझ लेते हैं। दोनों व्यक्ति काफी देर तक आपस में धर्म-सम्बन्धी चर्चा करते रहे। दूसरे दिन स्वामी विशुद्धानन्द का एक शिष्य गोस्वामीजी के पास आया। उन्हें अपने साथ विशुद्धानन्दजी के आश्रम में ले आया। गोस्वामीजी को देखते ही भावातिरेक हो स्वामी विशुद्धानन्द उनकी पदधूलि लेकर माथे से लगाने लगे। इस दृश्य को देख कर उपस्थित सभी लोग चकित रह गये, क्योंकि काशी में स्वामीजी पूजनीय माने जाते थे।

वाराणसी में कुछ दिन निवास करने के बाद गोस्वामीजी वृन्दावन चले आये। एक दिन वे बिछावन पर सो रहे थे। उन्हें अनुभव हुआ कि असंख्य खटमल उन्हें काट रहे हैं। पता नहीं, इतने खटमल कहाँ से आ गये? खाट पर से उठ कर प्रकाश में उन्होंने देखा—बिछावन पर एक भी खटमल नहीं है। बगल वाली खाट पर श्रीधर खर्राटे ले रहा है, उसकी खाट पर भी खटमल नहीं है, फिर मेरी खाट पर कैसे आये और कहाँ गायब हो गये। बात कुछ समझ में नहीं आयी। पहले की तरह चुपचाप सो गये। पुनः उन्हें खटमल काटने लगे और रात भर काटते रहे। सवेरे सोकर उठने के बाद उन्होंने अनुभव किया कि उनका काम समूल रूप से नष्ट हो गया है। इसके बाद ही वे ऊर्ध्वरेता हुए।

विजयकृष्ण गोस्वामी ने निश्चय किया कि अब कुछ दिनों तक यहाँ रह कर भजन किया जाय। एक दिन वे राधा बाग जाकर भजन करने लगे। सहसा सर्र-सर्र आवाज सुन कर चौंक उठे। उन्होंने देखा—सामने एक वृक्ष बुरी तरह काँप रहा है, जबकि न तो आँधी है और न तूफान। इसी बीच वृक्ष गायब हो गया और उसकी जगह एक वैष्णव प्रकट हुआ। इस अद्‌भुत काण्ड को देख कर गोस्वामीजी ने पूछा—"क्या आप यहाँ वृक्ष के रूप में निवास कर रहे हैं?"

वैष्णव ने कहा—"हाँ, प्रभो, मैं यहाँ वृक्ष के रूप में निवास करता हूँ।"

बाद में गोस्वामीजी को ज्ञात हुआ कि यहाँ ऐसे अनेक वृक्ष हैं जो वास्तव में वैष्णव हैं। यहाँ रहते समय गोस्वामीजी स्नान करने के लिए यमुना में जाते थे। एक दिन स्नान करने की तैयारी कर रहे थे कि कुछ प्रेतात्माएँ आपके पास आयीं और उनमें से एक ने विनय के साथ कहा—"प्रभो, हम लोग बड़ा कष्टमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। कृपया हमें इससे छुटकारा दिलाइये।"

गोस्वामीजी ने पूछा—"तुम लोगों का दुःख कैसे दूर कर सकता हूँ, कोई उपाय बताओ।"

प्रेत ने कहा—"आप स्नान करने के बाद घाट पर खड़े हो जायँ। आपकी जटा से गिरने वाले जल को पीने से हमारा कष्ट दूर हो जायेगा।"

गोस्वामीजी स्नान के बाद भींगा शरीर लिये घाट पर खड़े हो गये। प्रेतगण उनकी जटा से गिरने वाले जल को चुल्लू में भर कर पीने लगे। आश्चर्य के साथ गोस्वामीजी ने देखा—प्रेतों का काला शरीर ज्योतिर्मय हो उठा। इस प्रकार उन्हें प्रेत-योनि से मुक्ति मिल गयी।

उन्हीं दिनों वहाँ गुरुदेव आये और विशेष व्रत पालन करने की आज्ञा तथा विधि बता गये। इस व्रत के लिए पत्नी से अलग रहना था। गोस्वामीजी ने योगमाया देवी, पुत्र तथा पुत्रियों को ढाका भेज दिया। इसके बाद अपने अनुष्ठान में लग गये।

पति से अलग होने के कारण योगमाया देवी को मानसिक कष्ट होने लगा। दुःख के कारण उन्होंने आहार-निद्रा का त्याग कर दिया। फलस्वरूप वे दिन पर दिन क्षीण होती गयीं। लाचारी में एक दिन उन्होंने अपनी सारी स्थिति लिखते हुए लिखा कि जल्द से जल्द मुझे अपने चरणों में बुला लें। गोस्वामीजी ने उत्तर दिया कि अभी नहीं। तुम रासयात्रा के समय आ सकती हो। इस समाचार को पढ़ कर योगमाया देवी बहुत व्याकुल हो उठीं। रासयात्रा में अभी काफी देर है। कहीं मुझे छोड़ कर वे संन्यासी न बन जायँ, इस आशंका से योगमाया देवी इतनी भयभीत हुईं कि तुरन्त वृन्दावन चली आयीं।

योगमाया देवी को देख कर गोस्वामीजी ने कुछ नहीं कहा। वे शान्त रहे। पति का यह रुख देख कर योगमाया देवी अधीर हो उठीं। बोलीं—"मुझसे बोल क्यों नहीं रहे हो?"

गोस्वामीजी ने कहा—"आजकल जिस व्रत का पालन कर रहा हूँ, उसमें पत्नी से बातें करना मना है।"

"तब मैं क्या करूँ?"

गोस्वामीजी ने कहा—"तुम अलग से कहीं किराये पर कमरा ले लो और वहीं रहो। मेरे साथ नहीं रह सकती।"

योगमाया देवी ने कहा—"मैं तुमसे दूर नहीं रह सकती।"

गोस्वामीजी ने कहा—"पर मेरे साथ भी नहीं रह सकती। इस बारे में मुझे अधिक परेशान मत करो।"

पति की ओर गौर से देखने के बाद योगमाया देवी ने कहा—"ठीक है। अब तुम्हें परेशान नहीं करूँगी। मैं यहाँ से जा रही हूँ।" कहने के पश्चात् वे बाहर निकल गयीं।

काफी देर हो जाने पर भी जब वे वापस नहीं आयीं, तब लोग चिन्तित हो उठे। एक कमरे में एक टुकड़ा कागज मिला, जिस पर उनके हाथ से लिखा था—"मैं जा रही हूँ। मुझे खोजने की कोशिश न करें।" इस कागज को पाकर लोग सन्नाटे में आ गये। तरह-तरह की आशंकाएँ मन में उत्पन्न हो गयीं। जिसे जिधर शंका हुई, उधर खोजने के लिए चला गया। धीरे-धीरे तीन दिन बीत गये। कहीं से कोई सूचना न पाकर लोगों को विश्वास हो गया कि वे जीवित नहीं हैं।

गोस्वामीजी ने अपने सुपुत्र योगजीवन से कहा—"तू कुतु (छोटी लड़की) को लेकर ढाका चला जा। बारेंद्र श्रेणी वाले किसी ब्राह्मण लड़के से कुतु का विवाह कर देना। एक मन्दिर बनवा कर उसमें माँ की सामग्री रख कर पूजा करना।"

ठीक इसी समय अलंग वैष्णव अखाड़ा के पुजारी आये और कहा—"माताजी का पता चल गया है।" इस समाचार को सुनते ही गोस्वामीजी के साथ कुछ लोग अलंग अखाड़े में आये। गोस्वामीजी को देखते ही योगमाया देवी कमरे के बाहर निकल आयीं।

यहाँ से आश्रम आने तक दोनों ही चुपचाप रहे। रात को दाऊजी के मन्दिर से प्रसाद आया। प्रसाद ग्रहण करने के बाद गोस्वामीजी ने अपनी पत्नी से कहा—"अब तुम ग्रहण करो।"

योगमाया देवी नाराज रहीं, इसलिये प्रसाद लेने से इन्कार कर दिया। काफी मान-मनौवल करने के बाद भी वे प्रसाद खाने को तैयार नहीं हुईं। यह देख कर गोस्वामीजी ने कहा—"तुम्हारे निकट जो अपराध किया है, उसे क्षमा कर दो और अब प्रसाद ग्रहण करो।"

इन बातों से योगमाया देवी की नाराजगी दूर हो गयी। प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने प्रसाद ग्रहण किया। जब तक योगमाया देवी साथ नहीं थीं, तब तक गोस्वामीजी दाऊजी का भोग खाते रहे। अब योगमाया देवी के साथ रहने के कारण उनका बनाया भोजन करने लगे। एक दिन योगमाया देवी को स्वप्न में दाऊजी ने कहा—"तुम इतना बढ़िया भोजन बनाती हो, पर मुझे कभी नहीं देती? मुझे भी दिया करो।"

इस स्वप्न को देखने के बाद से योगमाया देवी अपने हाथ का बनाया भोजन नित्य मन्दिर में भेजने लगीं। इसी खुशी में सम्भवत: उन्हें दाऊजी से द्रौपदी का वरदान मिला। वे भोजन बनाने के बाद जब तक स्वयं भोजन नहीं कर लेती थीं, तब तक चाहे कितने ही व्यक्ति आयें, सभी को वे भोजन कराती थीं। कभी कम नहीं होता था।

सन् १८९१ ई० की बात है। माघ का महीना। एक रात को कई महापुरुष गोस्वामीजी के पास आये और कहा—"आज हिमालय स्थित मुक्तिनाथ तीर्थ में उत्सव होगा। हम लोग वहीं जा रहे हैं। आप भी चलिये।"

गोस्वामीजी को जाते देख योगमाया देवी कह उठीं—"मैं भी आप लोगों के साथ चलूँगी। मुझे भी साथ ले लो।"

गोस्वामीजी ने कहा—"तुम हम लोगों के साथ कैसे चलोगी? हम लोग सूक्ष्म शरीर से जायेंगे।"

योगमाया देवी—"अगर तुम इच्छा करो तो ले जा सकते हो?"

पत्नी का आग्रह देख कर गोस्वामीजी ने कहा—"तुम जिस स्थिति में हो, उसके कारण सूक्ष्म शरीर में वहाँ नहीं जा सकती।"

योगमाया देवी—"अगर तुम चाहो तो इस स्थिति को बदल सकते हो। बदल दो।"

गोस्वामीजी—"तुम जो चाह रही हो, अगर उसे पा लोगी तो इस संसार में रहना पसन्द नहीं करोगी। उस वक्त माया-मोह से मुक्त हो जाओगी, ब्रह्मानन्द में डूब जाओगी। भगवान् की नित्य-लीला देखने में विभोर हो जाओगी। अगर तुम्हारी अवस्था खोल दूँगा तो इस शरीर में नहीं रहना पसन्द करोगी। भूलो मत कि अभी तुम्हारी माँ और बेटी जीवित हैं।"

गोस्वामीजी के इस अनुरोध को योगमाया देवी ने अस्वीकार कर दिया। अभी कुछ दिन पहले छोटी बेटी के साथ गोस्वामीजी यमुना किनारे बैठे थे। अचानक कह उठे—"डुबो मत देना। देखो, डुबोना नहीं।" लड़की ने पूछा—"आप किसे कह रहे हैं?" गोस्वामीजी ने कहा—"और किसे कहूँगा बेटी? यहाँ चुपचाप बैठा था। श्रीकृष्ण गोपियों के साथ आये और कहा कि चलो, जरा सैरकर आयें। नटखट प्रकृति के हैं। बीच भँवर में नाव को घुमाने लगे। यह दृश्य देख कर गोपियाँ डर गयीं। तभी मैंने कहा—'डुबो मत देना।' गोकि वे नाव डुबोते नहीं।"

गोस्वामीजी को ऊहापोह करते देख उनके गुरुदेव ने कहा—"इसकी अवस्था खोल देने का समय आ गया है।" इतना कहने के पश्चात् उन्होंने योगमाया की अवस्था खोल दी। तुरन्त उनकी आँखों के सम्मुख सम्पूर्ण आध्यात्मिक तत्त्व प्रकट होने लगे। योगमाया देवी इन लोगों के साथ मुक्तिनाथ सूक्ष्म शरीर में दर्शन करने चली गयीं।

गुरुदेव की आज्ञा से एक वर्ष तक गोस्वामीजी वृन्दावन रह गये। समय समाप्त होने के बाद उन्होंने अपनी पत्नी से कहा—"गुरुदेव की आज्ञा से यहाँ एक वर्ष रहना था, सो पूरा हो गया। अब हरिद्वार जाने की इच्छा है। वहाँ का कुम्भमेला देख कर ढाका जाऊँगा। यात्रा की तैयारी कर लो।"

सारी बातें सुनने के बाद योगमाया देवी ने कहा—"तुम लोग हरिद्वार जाना चाहते हो, जाओ। मैं नहीं जाऊँगी। मैं यहीं रहूँगी।"

गोस्वामीजी ने विस्मय से पूछा—"यहाँ किसके पास रहोगी?"

योगमाया—"इस शरीर को लेकर ही सारी झंझट है। इस शरीर को त्याग कर नित्य लीला में अंगीभूत हो जाऊँगी, तब इसी धाम में निवास करूँगी।"

गोस्वामीजी ने कहा—"अभी तुम्हारी माँ-बेटी, बेटे जीवित हैं। अगर तुमने शरीर त्याग दिया तो इन्हें बड़ा कष्ट होगा।"

योगमाया—"संसार में कोई किसी का नहीं है। सभी अपने कर्मों को भोग रहे हैं। जीवितकाल में माया है, बाद में कहीं कुछ नहीं।" इतना कहने के बाद वे घर से पंचांग उठा लायीं और उसे खोल कर देखने के बाद पुन: बोलीं—"आगामी १० फाल्गुन को इस नश्वर शरीर को त्याग दूँगी। इसी दिन श्रीमन्नित्यानन्द का आविर्भाव दिवस है।"

गोस्वामीजी सारी बात समझ गये। अब पत्नी को रोका नहीं जा सकता। निश्चित दिन उन्हें कै-दस्त की बीमारी हुई। केवल गोस्वामीजी इस बात को जानते थे कि आज योगमाया देवी अपना कलेवर बदल डालेंगी। भोजन के पश्चात् गोस्वामीजी नित्य की भाँति साधु दर्शन करने गये। उनके वापस आने के पूर्व ही पत्नी का निधन हो गया था। योगमाया के शरीर का संस्कार करने के बाद उन्होंने पुत्र से कहा—"अस्थिसंचय कर लो। इसमें से कुछ हरिद्वार में प्रवाहित करना है और शेष ढाका ले जाकर वहाँ एक मन्दिर बनवा देना।"

× × ×

पत्नी के सभी संस्कारों को पूर्ण करने के बाद पूज्य गोस्वामीजी हरिद्वार चले आये। एक दिन उनकी मुलाकात एक उच्च-कोटि के सन्त से हो गयी। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा—"मैं नित्यानन्द महाप्रभु को देख चुका हूँ। आज से चार सौ साल पूर्व वे गुजरात गये थे। उन दिनों मेरी उम्र १५-१६ वर्ष थी।"

गोस्वामीजी ने पूछा—"इतनी लम्बी उम्र आपको कैसे प्राप्त हुई?"

सन्तजी जो कि शरीर से गुजराती थे, बोले—"हठयोग के माध्यम से मैंने दीर्घ जीवन प्राप्त किया है। हिंगलाज तीर्थ में मुझसे भी वृद्ध एक महात्मा हैं, जिनका दर्शन मैं कर चुका हूँ। वे कृष्ण-बलराम का दर्शन कर चुके हैं। आजकल वे अपने आसन से उठ नहीं पाते। उनकी जटा इतनी बड़ी हो गयी है कि देख कर आश्चर्य होता है।"

गोस्वामीजी ने कहा—"जिस हठयोग के जरिये आप दीर्घजीवी हैं, अगर असुविधा न हो तो मुझे दिखाइये।"

सन्तजी ने कहा—"ठीक है। तुम रात के अन्तिम पहर में मेरे यहाँ आ जाना। सब दिखा दूँगा।"

गोस्वामीजी उस सन्त की कुटिया में गये और हठयोग की समस्त क्रियाएँ देखते रहे। इसमें आठ घण्टे लगे। इसी प्रकार हरिद्वार में एक पूर्वपरिचित महात्मा से अचानक

उनकी मुलाकात हो गयी। कुछ वर्ष पूर्व गोस्वामीजी इनके साथ कैलास-पर्वत देखने के लिये गये थे। अलमोड़ा से आगे बढ़ने पर सीमा चौकी की पुलिस ने आगे जाने से रोक दिया। उसने कहा—"सरकार की ओर से आगे जाने की मनाही है। आगे रास्ता बहुत खतरनाक है। जो लोग इस रास्ते से गये, वे फिर वापस नहीं आये।"

यह बात सुन कर गोस्वामीजी वापस लौट आये, परन्तु सन्तजी की दृढ़ता देख कर इन्हें आगे जाने की अनुमति दे दी गयी। गोस्वामीजी को इस बात की उत्सुकता हुई कि आगे की यात्रा कैसी रही?

साधु ने कहा—"आपसे अलग होकर मैं आगे बढ़ गया। उस क्षेत्र में बड़ी कड़ी सर्दी पड़ती है, हठयोग का अगर अभ्यास न हो तो उधर नहीं जाना चाहिए। आगे जाने पर विचित्र दृश्य देखा। हमारे शास्त्रों में तपोवनों के बारे में जैसा वर्णन है, मेरे सामने ठीक उसी प्रकार के दृश्य प्रतिफलित हो रहे थे। वहाँ नर-मांस-भोजी जंगली जातियों को भी देखा। लगातार कई दिनों के सफर के बाद एक बड़े तालाब के समीप आया। उस तालाब के किनारे अनेक महापुरुष और साधु पूजा की विभिन्न सामग्री लिये खड़े थे।"

मुझे देखते ही कुछ लोगों ने कहा—"जल्दी से स्नान कर आओ।" उनकी आज्ञा मान कर स्नान कर आया। उन लोगों ने अपने उपहारों में से कुछ सामग्रियाँ मुझे देते हुए कहा—"इस सरोवर से अभी एक रथ निकलेगा। हम लोग उसी रथ की प्रतीक्षा में खड़े हैं। कैलासपति का रथ निकलते ही पूजा करनी पड़ेगी।" कुछ देर बाद सरोवर के बीच से अपरूप सुवर्ण रथ ऊपर आया। चारों ओर शंख-घड़ियाल बजने लगे। कुछ देर तक रथ स्थिर रहा। पूजा समाप्त होते ही रथ डूब गया। अगर रथ दिखाई दे तो कैलास-दर्शन या हर-गौरी-दर्शन सम्भव नहीं है। मैं इन लोगों के साथ कैलास-पर्वत आया। उसका रूप शिवलिंग की तरह है। वहाँ एक स्वर्णपुरी है। शाम के समय उस पुरी का दरवाजा खुला, तब हम लोग भीतर गये। हमारे शास्त्रों में कैलास के बारे में जो कुछ लिखा है, वह सब सही है। एक बड़ी गुफा में हीरे का सिंहासन था, जिस पर भगवान् शिव और पार्वती देवी विराजमान थे। साधुओं का दल वहाँ जाकर पूजा-अर्चना करने लगे। रात भर पूजा होती रही। सुबह हमें आशीर्वाद देकर विदा कर दिया गया। अंग्रेज जिसे कैलास-पर्वत कहते हैं, वास्तव में वह कैलास-पर्वत नहीं है। कैलास-पर्वत अनाविष्कृत है। कैलास-पर्वत दूर की बात—अभी तक हिमालय में ऐसे अनेक स्थान अज्ञात हैं, जहाँ बर्फ की अधिकता के कारण लोग वहाँ तक पहुँच ही नहीं पाते।"

हरिद्वार से गोस्वामीजी गेंडरिया आश्रम आये। यहाँ दर्शन करने के लिये भक्तों की भीड़ लग गयी। कुछ दिनों के बाद आपको सन्निपात की शिकायत हो गयी।

डॉक्टरों ने जाँच के बाद बताया कि स्वामीजी के दोनों फेफड़े बेकार हो गये हैं। यह सुनकर स्वामीजी के शिष्य हाय-हाय कर उठे। लोग समझ नहीं पा रहे थे कि कैसे स्वामीजी को अच्छा किया जाय। खाँसते समय गोस्वामीजी के मुँह से खून के थक्के निकलने लगे। पूरे आश्रम में मातम छा गया। इस प्रकार पन्द्रह दिन बीत जाने के बाद सोलहवें दिन गोस्वामीजी ने कहा—''मेरा शरीर दही माँग रहा है।''

सन्निपात-रोग में दही? यह बात सुनकर सभी सहम गये। कोई उन्हें मना कर भी नहीं सकता था। कुछ प्रिय शिष्यों ने दबी जबान से मना किया, पर उन्होंने इस विरोध को स्वीकार नहीं किया। दही खाने के बाद वह ठीक हो गये। दूसरे दिन स्वाभाविक रूप से उन्होंने भोजन किया। यह घटना सभी के लिए विचित्र थी।

एक दिन की घटना है। प्रभुपाद गोस्वामीजी अपने आसन पर बैठे भजन कर रहे थे। इसी समय एक मुसलमान फकीर सर्प के रूप में आकर बोला—''मैं एक मुसलमान फकीर हूँ। कालवश शरीर नष्ट हो गया है। इस वक्त सर्प-योनि में हूँ। मैं एकान्त में साधना करना चाहता हूँ, पर मन लायक स्थान नहीं मिल रहा है। अगर आप अपना आसन दें तो यहीं बैठ कर साधना करूँ।'' यह बात सुन कर उन्होंने अपना आसन छोड़ दिया। सर्प ने उस पर अपना अधिकार जमाया। एक ही रात में आसन वल्मीक स्तूप से ढँक गया और नित्य उसकी ऊँचाई बढ़ने लगी।

यह दृश्य देख कर एक दिन कुंजबाबू ने कहा—''अगर यही हालत रही तो एक दिन यह वल्मीक छप्पर फाड़ कर आगे निकल जायेगा।''

यह बात सुनते ही गोस्वामीजी ने स्तूप के ऊपर हाथ रख दिया। इस प्रकार उसका नित्य का बढ़ना रुक गया। महापुरुषों के आसन का महत्त्व होता है। यहाँ तक कि समाधिस्थल भी अपना प्रभाव दिखाते हैं। अनाधिकारियों को ऐसे स्थानों पर नहीं बैठना चाहिए। एक बार इसी गेंडरिया आश्रम में गोस्वामीजी का पुत्र योगजीवन उनकी अनुपस्थिति में, उनके आसन पर बैठ गया था। बैठने के साथ ही उसे लगा जैसे कोई उसका गला दबा कर मार डाल रहा है। उसकी चिन्तनीय स्थिति देख कर लोग घबरा उठे। तुरन्त गोस्वामीजी को सूचना दी गयी। वापस आकर उन्होंने लड़के को ठीक किया। बाद में अपने पुत्र से कहा—''तुमने बड़ा गलत काम किया। मेरे आसन की रक्षा महापुरुषगण करते हैं। आसन की अमर्यादा हो, यह किसी को पसन्द नहीं। चूँकि तुम अभी अबोध बालक हो, इसलिए बच गये। भविष्य में कभी मेरे आसन पर मत बैठना।''

कुछ दिनों बाद आश्रम में समाचार आया कि गोस्वामीजी की पुत्रवधू अस्वस्थ है। स्थिति चिन्तनीय है। कलकत्ता से गोस्वामीजी गेंडरिया आये। मृत्यु के दिन गोस्वामी बसन्तकुमारी देवी का हाथ अपने हाथ में लेकर हरिनाम जपने लगे। उनके स्पर्श से पुत्रवधू का कष्ट लाघव होने लगा। शाम तक रोगी के चेहरे पर शान्ति छा गयी।

गोस्वामीजी के शिष्य प्रसन्नचन्द्र ने कहा—"अगर आप चाहें तो इसे रोग मुक्त कर सकते हैं। कृपया इसे ठीक कर दीजिये।"

गोस्वामीजी ने कहा—"जो जीव जीवन्मुक्त होना चाहता है, उसे रोकना उचित नहीं है। यह तो स्वतः मुक्तावस्था प्राप्त कर रही है। बड़े सौभाग्य से मनुष्य को यह अवसर प्राप्त होता है। इसे बचाने का अनुरोध मत करो। अभी मुक्तावस्था में थोड़ी देर है। मेरी सास (योगजीवन की नानी) का व्यवहार इसके साथ अच्छा नहीं रहा, इसलिये यह कष्ट पा रही है। यातना की स्मृतियाँ इसे कष्ट दे रही हैं।"

"यह कष्ट कैसे दूर होगा?"

गोस्वामीजी ने कहा—"शीघ्र ही यह संकट दूर हो जायेगा। मेरी सास आकर इससे क्षमा माँगेगी और बहू उन्हें क्षमा कर देगी।"

कुछ देर बाद ही गोस्वामीजी की सास रोगी के पास आकर फफक कर रोने लगी। आँसुओं को पोंछती हुई अपने द्वारा दी गयी यातनाओं के लिये क्षमा माँगने लगी। बहू ने प्रसन्न-भाव से क्षमा कर दिया।

गोस्वामीजी ने कहा—"अब मुक्तावस्था प्राप्त हो गयी।"

कहने के साथ ही बहू के प्राणपखेरू उड़ गये। मरने से पहले बहू ने इच्छा प्रकट की थी कि एकादशाह के दिन वह अपने पति के हाथ से पिण्डदान लेगी और स्वयं प्रकट होगी। गोस्वामीजी ने योगजीवन से पिण्डदान कराया, जिसे बसन्तकुमारी ने अपने हाथ से लिया, पर उसे प्रकट नहीं होने दिया।

× × ×

गेंडरिया से कलकत्ता, ढाका आदि शहरों के भक्तों को दर्शन देते हुए गोस्वामीजी पुरीधाम आये। उनकी इच्छा हुई कि यहाँ कुछ दिनों तक निवास करूँगा। पुरी में उन दिनों श्री संप्रदाय के महन्त की ख्याति थी। गोस्वामीजी के निवास के कारण अधिकांश भक्तों की भीड़ इधर चली आयी। महन्तजी का महत्त्व घट गया। इसके पूर्व एक बार श्री संप्रदाय के महन्तजी ने गोस्वामीजी से एक आश्रम के निर्माण के लिये कई हजार रुपये देने को कहा था। गोस्वामीजी ने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए इन्कार कर दिया था। महन्तजी के मन में इस बात का आक्रोश था। इधर जब से गोस्वामीजी पुरी आये हैं, तब से दिन दूनी रात चौगुनी उनकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही थी। इन सभी घटनाओं के कारण महन्त ने इस काँटे को दूर करने का निश्चय किया। गोस्वामीजी को मार डालने का षड्यंत्र किया गया। इस कार्य के लिये एक संन्यासी को ठीक किया गया जो विषमिश्रित लड्डू लेकर आया। आपने उसे खा लिया।

खाने के साथ ही जीभ और पेट में दर्द प्रारम्भ हो गया। थोड़ी देर बाद बेहोश हो

गये। दिनभर बेहोश रहने के बाद रात आठ बजे होश में आये। उठ कर भोजन किया। भोजन करने के बाद आपने कहा—"मुझे जहर दिया गया है। साधु वेषधारी एक व्यक्ति विषमिश्रित मगदल के लड्डू लेकर आया और कहा—'महाराज, आपके लिए जगन्नाथजी का प्रसाद ले आया हूँ।' इन लड्डुओं में जहर मिलाया गया है, यह बात मैं जान गया था। उनमें जहर इतना था कि उसे खाने के बाद एक हाथी मर जाता। लड्डुओं को देखने के बाद सोचा कि इसे खाना उचित है या नहीं? मुझे ऊहापोह करते देख उक्त साधु ने कहा—'प्रसाद पाते ही खाना चाहिए।' कहा गया है—

शुष्कं पर्युसितं वापि नीतं वा दूरदेशतः।
प्राप्तमात्रेण भोक्तव्यं नात्र काले विचारणा॥'

इस श्लोक को सुनने के बाद मैंने प्रसाद को उदरस्थ कर लिया। सोचा—जो होने वाला है, जगन्नाथजी जानें। तुरन्त पेट में दर्द हुआ और मैं बेहोश हो गया। इसके बाद शरीर से मेरी आत्मा बाहर निकल आयी यानि मेरी मृत्यु हो गयी। मेरी मृत्यु हो जाने के बाद जगन्नाथजी ने तुरन्त लोकनाथ से कहा—'पापात्माओं ने गोस्वामी को मार डाला है। तुम तुरन्त जाकर उसकी रक्षा करो।' जगन्नाथजी के आदेशानुसार लोकनाथ मेरे पास आये। जिस देवता ने समुद्र-मंथन के समय जिस वेद-मन्त्र पाठ करते हुए हलाहल-पान किया था, उसी मन्त्र को पढ़ते हुए मेरे शरीर के सारे विष को पी गये। लेकिन पूरा नहीं पी सके। बाद में मनसा देवी ने अपने कुम्भ से मेरे ऊपर जल छिड़का। इससे मेरी शारीरिक यंत्रणा कम हुई और मैं जीवित हो गया। बाद में जगन्नाथजी आकर बिगड़ने लगे—'विषमिश्रित मिष्टान्न क्यों खाने गये?' मैंने कहा—'प्रसाद की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।' जगन्नाथजी ने पूछा—"यह तुमसे किसने कहा कि विषमिश्रित प्रसाद खाना चाहिए? पापियों ने तुम्हें मार डालने के लिये ही जहर दिया था। अब वे तुम्हारे पुत्र और नातियों को मारने के चक्कर में हैं। उन्हें सावधान कर देना।"

शिष्यों ने प्रश्न किया कि लोकनाथ ने सारा विष क्यों नहीं ग्रहण किया? गोस्वामीजी ने कहा—"इसका रहस्य वे ही बता सकते हैं। मैं क्या बताऊँ?"

कुछ दिन बाद उसका रहस्य सामने आ गया। प्रभुपाद दिन ब दिन निस्तेज और दुर्बल होते गये। हमेशा शीतल पदार्थ खाना चाहते थे। इसी बीच एक शिष्य ने उनसे पूछा—"अगर आप इच्छा न करें तो आपका शरीर नष्ट नहीं हो सकता।"

गोस्वामीजी ने कहा—"अगर मैं इच्छा न करूँ तो ब्रह्मा-विष्णु और शिव मिलकर भी मेरा शरीर नष्ट नहीं कर सकते।"

इस जवाब को सुन कर लोग सन्तुष्ट हो गये कि फिलहाल गुरुदेव हमसे बिछुड़ने वाले नहीं हैं।

कुछ दिनों बाद शिष्यों ने निश्चय किया कि गुरुदेव को कलकत्ता ले चला जाय।

यह समाचार पाते ही गोस्वामीजी ने कहा—"जब तक यहाँ के दुकानदारों का कर्ज चुकता नहीं हो जाता, तब तक मैं कहीं नहीं जाऊँगा।"

इस घोषणा के कुछ दिनों बाद अपने जामाता जगद्बन्धु मैत्र को बुलाकर उन्होंने कहा—"मुझसे उठा नहीं जा रहा है। जरा मदद करो। पेशाब करूँगा।"

मैत्र तथा सरलनाथ की सहायता से ज्योंही वे उठ कर खड़े हुए, त्योंही पेशाब के साथ-साथ उन्होंने मलत्याग भी किया।

यह देख कर गोस्वामीजी ने कहा—"यह स्थान साफ कर दो और मुझे कहीं बैठा दो। अब मैं अपने आसन तक नहीं जा सकता। हो सके तो कोई ठंडी चीज पिलाओ।"

थोड़ी देर बाद चाय पीते ही उनका शरीर स्थिर हो गया। २२ ज्येष्ठ, फसली सन् १३०६ यानी सन् १९१० के दिन भारत के इस महान् योगी ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।





४

वामा क्षेपा

उस समय तारापीठ (तारापुर) गाँव के निवासी गहरी नींद में सो रहे थे, पर एक युवक बड़ी बेचैनी के साथ अपने घर के आँगन में टहल रहा था। उसकी चहलकदमी की आवाज से राजकुमारी की आँखें खुल गयीं। उसने चौंक कर कहा—"कौन, वामा! तू अभी तक सोया नहीं? जा, सो जा।"

वामा ने कहा—"मुझे मुक्ति दो माँ। मैं इस माया में नहीं रहना चाहता। बचपन के दिनों तुम कहा करती थी कि भगवान् को दिल लगा कर पुकार। अब उन्हें पुकारने जा रहा हूँ।"

माँ घबरा कर बोल उठी—"इस अँधेरे में कहाँ जायेगा? पागलपन मत कर। चल, सो जा।"

"तुम इसकी चिन्ता मत करो। बस, मुझे अपना आशीर्वाद दो।"

इतना कहने के बाद वामा तेजी से घर के बाहर निकल गया। श्मशान के पास आते ही अनेक डरावने दृश्य उसे भयभीत करने लगे। वामा 'जय माँ तारा' उच्चारण करता हुआ आगे बढ़ने लगा। एकाएक उसने देखा कि सामने एक विराट् पुरुष दोनों हाथ बढ़ा कर उसे अपने अंक में भर लेना चाहता है। तुरन्त उसने तेज आवाज में पूछा—"कौन है? क्या आप श्मशान भैरव हैं?"

"नहीं वत्स! मैं तुम्हारा गुरु हूँ और तुम मेरे एकमात्र शिष्य हो। मैं तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रहा था" कहने के साथ ही उन्होंने उसे अपने गले से लगा लिया।

जिस प्रकार परमहंस रामकृष्ण स्वामी विवेकानन्द को, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी सतीशचन्द्र मुखर्जी को पाने के लिये व्याकुल थे, ठीक उसी प्रकार ब्रजवासी कैलासपति वामा की प्रतीक्षा कर रहे थे। अब तक वामा अपने परिवार से जुड़ा रहा और आज सारा बन्धन तोड़ कर अनजाने गुरु के पास चला आया। राजकुमारी ममता के कारण कभी-कभी आती और अपने बेटे को एक नजर देख कर वापस चली जाती। गाँव के अन्य लोगों की तरह वह भी ब्रजवासी महाराज से डरती थी।

ब्रजवासी और स्वामी मोक्षदानन्द कुटिया के सामने बैठे प्राय: धर्मालोचन किया करते थे। वामा एक ओर चुपचाप बैठा उनकी बातें सुना करता। मूर्ख वामा को उनकी बातें समझ में नहीं आती थीं। बातचीत करते समय एक दिन ब्रजवासी ने अपने सहयोगी मोक्षदानन्द से कहा—"वामा सत्यवादी, सरल और साहसी है। इसके भीतर लज्जा, घृणा या भय नहीं है। इसे दीक्षा देने की जरूरत नहीं। वेदान्त की बातें सुनाते जाओ। आगे कभी इसका अभिषेक कर दिया जायेगा, तब इसकी पूर्व स्मृति अपने-आप आ जायेगी। उस वक्त यह स्वयं ही जान लेगा कि वह क्या है? इसे बताने की जरूरत भी नहीं होगी।" इसके बाद वामा की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—"कल से मोक्षदानन्द तुझे वेद पढ़ कर सुनायेंगे। मन लगाकर सुनना।"

दूसरे दिन से वेद-पाठ का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ और कृष्ण त्रयोदशी के दिन पाठ समाप्त हुआ। वामा को भिक्षाटन के लिये भेजा गया। आज उसका अभिषेक होगा। रसोई बना कर वामा ने 'तारा माँ' को भोग लगाया और प्रसाद दरिद्रनारायण में वितरित किया।

शाम के समय ब्रजवासी उसे अपने साथ लेकर श्मशान भूमि पर आये। चारों ओर सियार, कुत्ते और गिद्ध अधजले शवों को खा रहे थे। वृक्षों पर चमगादड़, उल्लू आदि फड़फड़ा रहे थे। सहसा वामा ने देखा—घोर अन्धकार के मध्य एक बीजमन्त्र प्रकट हुआ। इस दृश्य को देख कर वह चकित रह गया। बीजमन्त्र पाते ही उसके सारे शरीर में आनन्द की लहरें हिलोरें लेने लगीं।

यह घटना सन् १८६८ की एक महारात्रि को हुई थी। ब्रजवासी ने एक सेमल

वृक्ष के नीचे उसे बैठाते हुए कहा—"तुम्हें जो बीजमन्त्र मिला है, यहाँ बैठ कर उसका जप करते रहो। डरना मत। मैं सामने मन्दिर में हूँ।"

गुरु के कथनानुसार वह बैठ कर जप करने लगा। चारों ओर भीतजनक शब्द और अद्‌भुत दृश्य देख कर उसका मन चंचल होने लगा। इसी समय एक नारी अट्टहास करती हुई सामने आकर खड़ी हो गई। उसकी लाल जीभ और बिखरे बालों को देख कर वामा इतना डर गया कि जप छोड़ कर सीधे मन्दिर की ओर भागा। उसे आसन छोड़कर आते देख ब्रजवासी ने पूछा—"क्या हुआ रे? भाग क्यों आया?"

वामा ने कहा—"बाप रे, एक राक्षसी मुझे निगलने आयी थी। उसकी आँखें अंगारे की तरह जल रही थीं।"

ब्रजवासी ने कहा—"बड़ा डरपोक है। चल, दिखा कहाँ है तेरी राक्षसी?"

श्मशान के निकट आने पर कहीं कोई दिखाई नहीं दिया। उसे पुनः आसन पर बैठाते हुए ब्रजवासी ने कहा—"डरना मत। मैं मन्दिर में हूँ।" गुरु से आश्वासन पाकर वामा इस बार दृढ़ होकर आसन पर बैठ गया। थोड़ी देर बाद हाथी और शेर का गर्जन सुनाई देने लगा। ठीक उसी समय मन्दिर की ओर से आवाज आई—'माभैः माभैः।' वामा को लगा जैसे पास ही कोई कह रहा है—'खर्व्वां लम्बोदरीं भीमां व्याघ्रचर्म्मावृतां कटौ। नवयौवनसम्पन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम्। चतुर्भुजा लोलजिह्वां महाभीमां वरप्रदाम्।'

रात के शेष पहर में साधक का शरीर समाधिस्थ हो गया। सहसा मधुर मातृकण्ठ सुनते ही साधक की आँखें खुलीं। आसपास किसी को न देख कर वामा का अन्तर रो पड़ा। कहा—"कहाँ हो माँ?" तुरन्त आवाज आई—"मैं तेरे पास ही हूँ वत्स! तू रो क्यों रहा है? मैं तो युग-युगान्तर से सेमल वृक्ष के रूप में यहाँ रहती हूँ। पहर काल बाद यह वृक्ष स्वतः गिर जायेगा।"

वामा ने पूछा—"ऐसा क्यों होगा माँ?"

तुरन्त आवाज आयी—"चिन्ता करने की जरूरत नहीं। शिलारूप में मैं यहाँ रहूँगी और अपना कुछ अंश तुझे दूँगी।"

धीरे-धीरे पौ फटने लगी। मन्दिर की ओर जाते हुए कोई कह रहा था—"नीलवर्णा सदा पातु जानुनी सर्वदा मम। नागमुण्डधरा देवी सर्वांगं पातु सर्वदा।। नागांगदधरा देवी पातु अन्तरदेशतः। चतुर्भुजा सदा पातु गमने शत्रुनाशिनी।।"

साधना के माध्यम से वामा को यह ज्ञात हो गया कि वह पूर्व जन्मों में क्या था। यहाँ तक कि उसे अपने इस आसन को पहचानने में देर नहीं लगी। मोक्षदानन्द को तब तक यह नहीं मालूम हो सका था कि वामा को जातिस्मरता प्राप्त हो गयी है। नित्य के नियम के अनुसार उन्होंने वामा से कहा—"हुक्का भर ला।" तुरन्त वामा ने इन्कार

कर दिया। मोक्षदानन्द अपने शिष्य की अवहेलना सह्य नहीं कर सके। नाराज होकर कटु वाक्य कहने लगे।

ठीक उसी समय ब्रजवासी ने कहा—"नाराज होने की आवश्यकता नहीं है मोक्षदानन्द। आज वामा सिद्ध पुरुष हो गया। स्वयं तारा देवी उसे यह रहस्य बता चुकी हैं कि यही तेरा आसन है, जहाँ बैठ कर कई जन्मों से यह साधना करता रहा। हमारा कार्य पूरा हो गया है। अब हमें यह स्थान छोड़ देना चाहिए।"

× × ×

अकबर के हिन्दू सेनापति वीर मानसिंह ने जब बंगाल विजय किया, तब उसके नाम पर अकबर ने तीन जिलों का नामकरण किया—वीरभूमि, मानभूमि और सिंहभूमि। वीरभूमि जिला साधकों के निकट साधना-भूमि रही है। साधकों का कहना है कि दक्ष-यज्ञ ध्वंस होने के बाद शक्ति के कई अंग इसी जिले में गिरे हैं। अनादि काल से इस जिले के विभिन्न स्थानों में तान्त्रिक साधना करते आये हैं। इनमें केन्द्रुली और तारापीठ की ख्याति दूर-दूर तक है।

इसी तारापुर गाँव में सर्वानन्द अपनी पत्नी तथा छह सन्तानों के साथ रहते थे। उनका मुख्य पेशा था बच्चों के द्वारा नाटक (जात्रा) करना। बड़ी लड़की जयकाली, इसके बाद वामाचरण प्रथम पुत्र हुआ। इसके बाद तीन पुत्रियों के बाद रामचन्द्र द्वितीय पुत्र था। इन आठ प्राणियों का भरण-पोषण वे ठीक से नहीं कर पाते थे। थोड़ी जमीन थी, जिसे अधिया पर देने के कारण अन्न कम प्राप्त होता था। इसी बीच एक मुसीबत और आ गयी। बड़ी लड़की विधवा होकर बाप के घर वापस आ गयी।

बचपन से ही वामाचरण निर्बुद्धि था। अक्सर वह ऐसी हरकतें करता था, जिसके कारण लोग उसे क्षेपा (पागल) कहने लगे। स्वयं माँ भी परेशान रहती थी। असल में वामाचरण को बचपन से ही समाधि होने लगी थी, जिसे लोग समझ नहीं पाते थे। राजकुमारी देवी ने कभी यह अनुभव नहीं किया कि उसकी कोख से एक असाधारण पुरुष ने जन्म लिया है।

अपनी माँ से वह यदाकदा प्रश्न करता—"क्यों माँ, मिट्टी के देवता भी जिन्दा होते हैं?"

जान छुड़ाने की गरज से माँ जवाब देती—"बेटा, भगवान् हमेशा जिन्दा रहते हैं। मन लगाकर उन्हें पुकारना चाहिए।"

माँ की बातें सुनकर वह प्रसन्न हो उठता। घर पर मिट्टी लाकर काली, शिव, गणेश की प्रतिमा बनाता। बेर, आम, अमरूद आदि वृक्षों की पत्तियों से उनका शृंगार करता। बाद में हाथ जोड़ कर निवेदन करता कि भगवान्! कुछ तो खा लो। जब मिट्टी के देवता न खाते, तब वह जबरन उनके मुँह में घुसेड़ देता था। पुत्र की यह दशा देख

कर कभी माँ हँसती, तो कभी चिन्तित हो उठती। वामाचरण को न अपने खाने की चिन्ता थी और न सोने की। माँ खाना ले आती तो उससे कहता—''माँ, तुमने कहा था कि मन से पुकारने पर भगवान् सुनते हैं, पर मेरी बात वे नहीं सुनते।''

बड़ी बहन भी थोड़ी सनकी थी। वह तुरन्त कहती—''भइया, अभी नहीं, कुछ दिन बाद सुनेंगे।''

सन् १८५६ में सर्वानन्द अपनी गृहस्थी छोड़ कर स्वर्गवासी हो गये। सर्वानन्द के रहते सभी का गुजारा नहीं होता था। उनकी मृत्यु के बाद राजकुमारी पर जैसे मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। अन्त में एक दिन राजकुमारी ने वामाचरण से कहा—''बेटा, अब सहन नहीं हो रहा है। कहीं काम-धंधा कर, वर्ना सभी भूखों मरेंगे।''

माँ की आज्ञा मान कर वामाचरण नौकरी खोजने लगा। एक तो अशिक्षित, दूसरे ब्राह्मण होते हुए भी पूजा-पाठ करना नहीं जानता था। 'माँ तारा' के अलावा कुछ नहीं कह पाता था। भाग्य से मुलुटी गाँव के काली मन्दिर में नौकरी लग गयी। भोग के लिये रसोई बनाना और पूजा के लिए फूल चुनना था। जो बालक कभी चूल्हे के पास नहीं गया, वह भोजन कैसे बनाता? कभी कच्चा, तो कभी जल जाने की शिकायत होने लगी। लाचारी में पुजारी ने उसे केवल फूल संग्रह करने का काम सौंपा।

मन लायक काम पाकर वामा प्रसन्न हो उठा। कुछ दिनों बाद यहाँ भी लापरवाही करने लगा। अक्सर उसे भाव-समाधि होने लगी। उस वक्त वह पेड़ पर घण्टों बैठा रह जाता। एक दिन पुजारी को कहीं जाना था। फूल लाने में देर होते देख, वे बाग में आकर 'वामा-वामा' चिल्लाने लगे। वामा की ओर से कोई आवाज न पाकर बाग के भीतर आकर उन्होंने देखा कि वह एक पेड़ पर चुपचाप बैठा है। पुजारी ने एक नौकर को बुलाकर कहा—''उसे ऊपर से घसीट ला।''

नीचे आने पर भी उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। चेहरे पर पानी के छींटे पड़ते ही उसकी समाधि टूट गयी। होश में आकर उसने कहा—''पुजारीजी, आज ढेर सारे फूल लाया हूँ।''

फूल लेकर पुजारीजी ने जल्दी से पूजा समाप्त करने के बाद कहा—''भोग तू चढ़ा देना।''

वामा ने कहा—''भक्तिहीन पूजा के बाद मैं भोग नहीं चढ़ा सकता।''

'छोटा मुँह बड़ी बात' सुन कर पुजारीजी को क्रोध आ गया। उसी दिन उसे नौकरी से निकाल दिया गया। इसके बाद वह खेती का काम करने लगा। वहाँ भी उसे असफलता मिली। परिवार का बोझ कम करने की गरज से माँ ने अपने दोनों पुत्रों को अपने भाई के यहाँ भेज दिया। राजकुमारी ने जिस उद्देश्य से भेजा, वह पूरा नहीं हुआ।

मामा तो सीधे थे, पर मामी इन दोनों भाईयों को फूटी आँखों से नहीं देख पाती थी। वामाचरण को गाय चराने का काम दिया गया था। गोशाले से गाय लेकर वह मैदान में चला जाता और मैदान में छोड़ कर स्वयं एक पेड़ के नीचे बैठ जाता। एक दिन गायों को छोड़ कर भावावेश में आकर 'हरि बोल' गाते हुए नाचने लगा।

वामाचरण यह भूल गया कि पास ही किसानों के खेत हैं, जहाँ जाकर छुट्टा पशु फसल चौपट कर देंगे। अपने खेत में गायों को चरते देख किसानों ने वामा को डाँटना शुरू किया—"अन्धा है क्या? गायों को छोड़ कर नाच रहा है।"

बात वामाचरण के कानों तक नहीं पहुँची। वह देवी के प्रेमानन्द में मग्न रहा। इधर किसान गायों को मारते हुए अपने खेतों से भगाने लगे। तभी वामाचरण ने चीखते हुए कहा—"मुझे मत मारो भाई, मत मारो। मैं तो मामी की मार से त्रस्त रहता हूँ, तिस पर तुम सब मारोगे तो मर जाऊँगा।"

वामाचरण की बातें सुन कर किसान हँसने लगे। हम तो गायों को मार रहे हैं और यह कहता है कि मुझे मत मारो। पागल है। इस प्रकार की घटनाओं की शिकायत लगातार आने के कारण वामाचरण तथा उसके भाई रामचन्द्र को मामी ने भगा दिया।

× × ×

तारापुर गाँव को आजकल तारापीठ कहा जाता है। वास्तव में यह स्थान तान्त्रिकों का शक्तिपीठ है। कुलार्णव तन्त्र में लिखा है—

वामे वामा रमणकुशला दक्षिणे पानपात्र-
मग्रे न्यस्तं मरिचसहितं शूकरस्योष्णमांसम्।
स्कन्धे वीणा ललितसुभगा सद्गुरूणां प्रपञ्चः,
कौलो धर्मःपरमगहनो योगिनामप्यगम्यः ।।

अर्थात् बायीं ओर रमणकुशला वामा, दायें पानपात्र, सामने मरिचसहित शूकर मांस, कन्धे पर सुललित मोहिनी वीणा और साथ में सद्गुरु का संग। यही है—कौल्य धर्म, अत्यन्त दुर्बोध, योगियों के लिये भी अगम्य।

तारापीठ का महाश्मशान इस श्लोक में वर्णित दृश्य को चरितार्थ करता है। यहाँ सामान्य जन कभी-कभी आते हैं। वृक्षों पर कौवे, उल्लू और चमगादड़ रहते हैं। एक ओर सेमल वृक्ष है, जिसके नीचे वशिष्ठ देव द्वारा स्थापित पंचमुण्डी आसन पर देवी की शिला-मूर्ति स्थापित है। इसे वशिष्ठ सिद्धपीठ कहा जाता है। कभी वशिष्ठ मुनि यहाँ बैठ कर साधना करते थे। आगे चल कर वामाचरण ने इसे लक्षमुण्डी आसन बनाया। प्राचीन वृक्ष कालान्तर में गिर गया और वहाँ पातालभेदी सुरंग बन गयी। इसी सुरंग के ऊपर ईंटों का चबूतरा बना कर लक्षमुण्डी आसन बनाया गया था। तारा, उग्रतारा, महोग्रतारा, वज्रा, नीला, सरस्वती, कामेश्वरी, भद्रकाली मिला कर तारा के

अष्टरूप हैं। ज्ञातव्य है कि वशिष्ठ, परशुराम, भृगु, दत्तात्रेय, दुर्वासा आदि मुनि तारा विद्या में सिद्ध थे।

ठीक इन्हीं दिनों अर्थात् सन् १८५८ ई. में ब्रजवासी कैलासपति नामक एक सिद्ध कौल तारापीठ आये। यहाँ आकर वे सिद्धपीठ पर साधना करने लगे। वामा अक्सर इधर आया करता था। ब्रजवासी के आकर्षण ने उसे यहाँ बुला लिया। एक प्रकार से वह ब्रजवासी का सेवक बन गया। ब्रजवासी एक प्रकार से औघड़ थे। जब वे भोजन करने बैठते, तब उनकी थाली में सूअर, कुत्ते और कभी-कभी गिद्ध मुँह लगा कर खाते थे। धीरे-धीरे वह प्रवृत्ति वामा में जन्म लेने लगी। ब्राह्मण के लड़के को ऐसा करते देख गाँव के लोग उसे म्लेच्छ, पिशाच, भण्ड आदि कहने लगे। लेकिन वामा को इसकी परवाह नहीं हुई। ब्रजवासी उच्च-कोटि के साधक थे। कभी-कभी अपना चमत्कार दिखाते थे, इसलिये लोग उनसे भय और श्रद्धा रखते थे।

ठीक इन्हीं दिनों विश्वेश्वर भट्टाचार्य के प्रधान शिष्य वेदज्ञ बाबा मोक्षदानन्द का आगमन हुआ। मोक्षदानन्द भी उच्च-कोटि के तान्त्रिक साधक थे। इन दोनों सन्तों ने इस सिद्धपीठ पर अड्डा जमाया। ब्रजवासीजी वामा के भीतर के आधार को जान चुके थे। उन्होंने निश्चय किया कि इसे दीक्षा देकर योग्य बनाऊँगा, तभी यह अपने को पहचान सकेगा। एक दि़न ब्रजवासी ने वामा से कहा—"खाली समय में तू इसी सेमल वृक्ष के नीचे बैठ कर 'जय तारा' जप करते रहना।"

इन दो सन्तों के कारण तारापीठ का महाश्मशान जाग्रत हो उठा। ब्रजवासीजी वामा के प्रथम और प्रधान गुरु बने। जब दोनों साधक शास्त्र-चर्चा करते तब वामाचरण एकमात्र श्रोता बनकर मनोयोग से उनकी बातें सुना करता। इस प्रकार उनकी बातें सुनते-सुनते उसमें वैराग्य की भावना उत्पन्न हुई और एक दिन माँ से अनुमति लेकर हमेशा के लिये श्मशानवासी हो गया, जिसका उल्लेख किया जा चुका है।

उस दिन दोपहर को ब्रजवासी बाबा के लिए वामा ने चिलम तैयार कर दी। तंबाकू पीने के बाद ब्रजवासीजी ने एक ओर चिलम रख दी। इसके बाद दोनों व्यक्ति नींद के झोंके में झूमने लगे।

उसी तन्द्रातुर स्थिति में वामा ने देखा कि उसके सामने कुमारी वेश में तारिणी देवी सामने आकर खड़ी हो गयी हैं। वामा को पुकारती हुई बोलीं—"तू सो क्यों रहा है। कैलासपति की चिलम लेकर आटला गाँव चला जा और वहाँ के पुआल पर फेंक आ। लंकाकाण्ड का मजा आयेगा।"

लंकाकाण्ड का मजा! यानी मैं हनू बनूँगा। इस कल्पना से वह प्रसन्न हो उठा। जब माँ आज्ञा दे रही हैं, तब देर क्यों? कैलासपति की चिलम लेकर वह आटला गाँव चला गया।

गर्मी का मौसम। दोपहर के वक्त लोग खा-पीकर अपने-अपने घर में आराम कर रहे थे। सहसा गाँव में हलचल मच गयी। पुआल के ढेर में आग लग गयी। तेज हवा के कारण झोपड़ियाँ भी जलने लगीं। इधर इस आग को देख कर प्रसन्नता से उछलते हुए वामा चिल्लाने लगा—"मैं हनुमान् हूँ। लंका में आग लगा दी। तारा माँ को बड़ी प्रसन्नता हो रही है।"

इधर गाँव के लोग तालाब तथा कुएँ से पानी लाकर आग बुझाने में जुटे हुए थे। इस बात को सुनते ही सभी क्रोधित हो उठे। समझते देर नहीं लगी कि यह आग अपने आप नहीं लगी है, बल्कि वामा ने लगायी है। फिर क्या पूछना। उसे इतना मारा गया कि वह बेहोश हो गया। इसके बाद उसे उठा कर जलती हुई आग में फेंक दिया गया।

क्रोध में आकर लोगों ने वामा की हत्या कर दी। बाद में बड़े-बूढ़ों के फटकारने पर लोगों को होश आया। आग बुझ जाने पर लोग वामा की लाश खोजने लगे। कहीं कोई अवशेष नहीं मिला। उन्हें आश्चर्य हुआ कि एक लाश के जलने में आठ मन लकड़ी लगती है, कई घण्टे जलने पर भी कुछ न कुछ अंश बच जाता है और यहाँ कुछ भी नहीं है, जबकि लोग आग को बुझा चुके थे।

इसी समय उधर से मोक्षदानन्द तारापीठ की ओर जा रहे थे। भीड़ देख कर उन्होंने कारण पूछा तो पता चला कि गाँव में वामा ने आग लगा दी थी।

"आग में क्या खोज रहे हो?"

"वामा आग लगाने के बाद इसी में कूद गया था। उसकी जली लाश को हम खोज रहे हैं।"

यह बात सुनकर मोक्षदानन्द हँस पड़े। एक वृद्ध ने पूछा—"बाबाजी! आप हँस क्यों रहे हैं?"

"तुम लोगों की बात सुनकर। वामा मरा नहीं है। इस वक्त वह तारापीठ में बैठा होगा। विश्वास न हो तो जाकर देख लो।" इतना कहकर मोक्षदानन्द चले गये।

कुछ लोग इस बात का पता लगाने के लिए तारापीठ श्मशान की ओर चल पड़े। इन लोगों ने उसे मार-पीट कर आग में फेंक दिया था और वह गायब हो गया। कैसे तारापीठ पहुँच गया?

इतने लोगों को एक साथ देख वामा घबराकर तारा देवी के मन्दिर में घुस गया। उसे समझते देर नहीं लगी कि ये लोग फिर मारेंगे।

वामा को मन्दिर की ओर भागते देख सभी विस्मय से अवाक् रह गये। क्या यह पिशाच सिद्ध है? चारों ओर से शोर होने के कारण ब्रजवासीजी अपनी कुटिया से बाहर आये। सारी बातें सुनने के बाद उन्होंने पुकारा—"वामा, बाहर आ।"

वामा डरते-डरते बाहर आया। उन्होंने पूछा—"क्या यह सच है कि तूने इनके गाँव के पुआल में आग लगायी थी।"

"हाँ।"

"फिर तू कैसे बच गया?"

वामा ने कहा—"इन लोगों ने मुझे मार-पीट कर आग में झोंक दिया और तभी तारा माँ ने मुझे अपनी बाँहों में लेकर जंगल में फेंका। मैं वहाँ से दौड़ता हुआ यहाँ आ गया।"

"आइन्दा ऐसी हरकत मत करना। जा, पूजा कर।" ब्रजवासी ने फिर गाँव वालों से कहा—"अब आप लोग जाइये। आइन्दा कोई घटना नहीं होगी।"

इसी प्रकार की एक घटना और हुई थी। उस दिन दोपहर के वक्त वामा कहीं से पैदल आ रहा था। गर्मी का मौसम, गर्म हवा से लोग परेशान थे। ठीक ऐसे माहौल में अचानक वामा ने सुना कोई उसे पुकार रहा है—"वामा, वामा।"

वह चलते-चलते रुक गया। कौन पुकार रहा है? कहाँ से पुकार रहा है? सारा मार्ग सुनसान है। तभी पुन: आवाज आई—"मैं यहाँ हूँ, वामा।"

चकपकाकर चारों ओर देखने के बाद उसने देखा कि चक्रवर्ती के टूटे मकान की एक खिड़की से एक बालक पुकार रहा है। जैसे कोई सयाना बुलाता है—"वामा! इधर तो आ।"

आँखें मिलते ही बालक ने कहा—"मुझे यहाँ से ले चल। लोग यहाँ मुझे पानी तक नहीं देते। गर्मी से बेचैन हो जाता हूँ।"

"पानी नहीं देते? तुम किसके लड़के हो?" वामा कुछ समझ न पाने के कारण पूछ बैठा।

"मैं?" बालक हँस पड़ा—"मैं किसी का बालक नहीं हूँ। भक्तों का दास हूँ। इस घर का नारायण।"

"तुम नारायण हो तो तुम्हें पानी क्यों नहीं देते?"

"शायद भूल गये हैं। तुम मुझे ले चलो। तुम पानी देते रहना।"

वामा ने कहा—"नहीं, बाबा। कहीं कोई फसाद हो गया तो मुसीबत में फँस जाऊँगा।"

बालक ने कहा—"कुछ नहीं होगा। आ जा।"

"मगर कैसे आऊँ। न सीढ़ी है और न रस्सी। ऊपर कैसे चढूँगा।"

बालक नारायण ने कहा—"सीढ़ी-रस्सी नहीं है तो क्या हुआ। तुम ठहर जाओ, मैं धोती लटकाता हूँ। उसी के सहारे ऊपर आ जाना।"

कहने के साथ ही ऊपर से एक धोती नीचे लटक गयी। उसी धोती के सहारे वामा चक्रवर्ती के मकान पर चढ़ गया। कमरे में जाकर देखा—चाँदी के सिंहासन पर एक शालग्राम रखा हुआ है। बालक ने उस शालग्राम को वामा को देकर कहा—"अब जल्दी से भाग जाओ।"

"क्या तुम साथ नहीं चलोगे?"

"मैं बाद में आऊँगा।"

उस शालग्राम को लेकर वामा श्मशान में आया और बालू की एक वेदी पर रख दिया। इसके बाद चार जंगली फूल तथा कुछ बेलपत्तियाँ चढ़ाने के बाद कहा—"ठाकुर! पूजा हो गयी। अब आराम से सो जाओ। मैं बड़ी माँ (तारा देवी) के पास जा रहा हूँ।"

कहने के साथ ही वह मन्दिर की ओर दौड़ गया। शालग्राम का कहीं अकेले में मन न लगे, इसलिए आसपास के अन्य कई देवताओं को लाकर वेदी के पास रख दिया।

चक्रवर्ती के घर से शालग्राम गायब हो गया, यह समाचार तेजी से फैल गया। लोगों को सन्देह हुआ कि हो न हो, यह कार्य वामा क्षेपा ने किया है। अपना सन्देह मिटाने के लिए लोग श्मशान में आये।

इतने लोगों को साथ आते देख ब्रजवासी बाबा समझ गये कि वामा ने कुछ किया है। कारण का पता लगते ही उन्होंने वामा से पूछा।

वामा ने कहा—"हाँ, गुरु महाराज। ठाकुर ने कहा तो मैं उन्हें ले आया। श्मशान के पश्चिम रखा है।"

ब्रजवासी ने कहा—"यह गलत काम है। ऐसा नहीं करना चाहिए।"

वामा ने कहा—"इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। आजकल के देवता ही खराब हैं।"

× × ×

"मुझे मत मारो—मुझे मत मारो। मैं सच कह रहा हूँ। इसमें मेरी कोई गलती नहीं है।" मन्दिर के भीतर से वामा की आवाज आई।

"बदमाश कहीं का। बनता है साधु और कर्म यह है। तिस पर कहता है कि माँ के कहने पर खाने लगा। सारा भोग जूठा कर दिया। चाण्डाल कहीं का।" पुरोहित महाशय वामाचरण पर बरस रहे थे।

भीड़ में से किसी ने कहा—"इतना नहीं मारना चाहिए था और वह भी दरबान के द्वारा। ब्राह्मण का लड़का है।"

पुरोहित बिगड़ उठा—"कौन कहता है कि ब्राह्मण का लड़का है? जो आदमी कुत्ता-सियार के साथ एक पत्तल में खाता है, वह चाण्डाल है। अब मन्दिर में दिखाई दिया तो टाँग तोड़ दूँगा।"

पुरोहित को आपे से बाहर देख कर भीड़ में से कोई कुछ नहीं बोला। राजा का पुरोहित है। कौन झगड़ा मोल लेने जाय। उधर नाटोर राज्य की महारानी अन्नदा सुन्दरी ने स्वप्न में देखा—तारापीठ की शिलामयी देवी मन्दिर छोड़ कर चली जा रही हैं। उनका चेहरा उदास है। आँखों में आँसू भरे हुए हैं, पीठ पर रक्त के दाग हैं। यह दृश्य देख कर रानी काँप उठी। बोली—"माँ, यह कैसा दृश्य दिखा रही हो?"

माँ ने कहा—"मैं यहाँ अनादि काल से हूँ। तूने मेरे लिये मन्दिर बनवाया, पूजा का प्रबन्ध किया। आज तेरे पुरोहित ने मेरे पुत्र क्षेपा को बहुत मारा है। उसने क्षेपा को नहीं, मुझे मारा है। देख ले, मेरी पीठ पर रक्त के कितने दाग हैं।"

रानी काँप उठी। बोली—"मुझे क्षमा करो। मैं इस पाप का प्रायश्चित्त करूँगी।"

माँ ने कहा—"मेरे लड़के को आज चार दिन हुए प्रसाद खाने को नहीं मिला, इसलिए मैंने भी ग्रहण नहीं किया।"

रानी बोली—"क्या? तुम भी उपवासी हो माँ?"

माँ ने कहा—"हाँ, अपने लड़के को दिये बिना माँ भला कुछ खाती है? अगर मेरे भोग के आगे वामा क्षेपा के लिए भोग का इन्तजाम कर सकोगी तो मैं रह सकती हूँ, वर्ना हमेशा के लिए चली जाऊँगी।"

देवी की बातें सुन कर रानी ने कहा—"कल ही इसका इन्तजाम करती हूँ। तुम जाओ मत।" सहसा रानी की नींद खुल गई। सुबह रानी ने अपने स्वप्न की चर्चा राजा साहब से की।

इधर स्वयं तारा माँ अपने लड़के को मना रही थी और वामा श्मशान भूमि पर बच्चों की तरह लोटते हुए कह रहा था—"नहीं, मैं तेरे मन्दिर में नहीं जाऊँगा। आदर के साथ खाने के लिए बुलाया और जब खाने बैठा तो दरबान से पिटवाया। तू पाषाणी है, मायाविनी है। मैं तेरी बात नहीं सुनता।"

माँ ने कहा—"नहीं, मेरे बेटे, मान जा। उन लोगों ने तुझे नहीं, मुझे मारा है।"

वामा क्षेपा ने चौंक कर पूछा—"तुम्हें मारा है?"

ठीक इसी समय अनेक लोगों के आने की आहट मिली और वह अदृश्य आवाज गायब हो गयी। नाटोर की महारानी के आदेश से कई राजकर्मचारी क्षेपा बाबा की तलाश कर रहे हैं। महारानी ने जैसा स्वप्न देखा था, उसी के अनुसार भोग का प्रबन्ध किया गया है। रानी के आदेश से पुराने पुरोहित और दरबान को नौकरी से

निकाल दिया गया। पूजा तथा भोग की पूरी जिम्मेदारी वामा क्षेपा बाबा को सौंप दी गयी। बाबा को रानी के स्वप्न की घटना सुनाने पर वे विस्मय से अभिभूत हो उठे। रानीजी ने स्वयं ही इच्छा प्रकट की है कि आगे से देवी की पूजा बाबा करेंगे। उनकी सहायता के लिए अलग से एक पुजारी की नियुक्ति की गयी।

अब आगे से देवी-पूजा बाबा करेंगे, यह बात सुन कर अनेक दरिद्रनारायण प्रसाद पाने के लिए मन्दिर के पास आने लगे। बाबा किस तरह से पूजा करेंगे, यह देखने के लिए गाँव से काफी लोग आ गये। समय पर ढाक, घण्टा, घड़ियाल, शंख बजने लगा। पुजारीजी बाबा को पकड़ कर मूर्ति के सामने बैठाते हुए बोले—"अब पूजा शुरू कीजिये।"

बाबा आसन पर बैठने के बाद बोले—"आज मेरी बेटी पेट भर कर खायेगी, कई दिनों से भोजन नहीं मिला है। पर खायेगी कैसे? तू तो पाषाणी है, तू कैसे खा सकती है?"

इसके बाद आव देखा न ताव, लगे स्वयं ही भोजन करने। लोग अवाक् होकर बाबा की कार्यवाही देखते रहे। भोजन करने के बाद उन्होंने कहा—"कहाँ हो, कालाचाँद काका? चलो, अब बलिदान करो।"

घातक के गँड़ासे पर दो फूल चढ़ा कर बकरे का बलिदान किया गया। इसके बाद बाबा ने कहा—"यह ले चना सुन्दरी और शर्बत बाबाजी। माँ! खा ले।" इस प्रकार उनकी पूजा सम्पन्न हो गयी। भोग के बाद चन्दन मिश्रित फूल और बेल की पत्तियाँ शिला मूर्ति की ओर फेंकते हुए बोले—"यह रही फूल और बेल की पत्तियाँ।"

एक-एक फूल फेंकते जा रहे थे और गाली बकते जा रहे थे। लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा कि फेंके गये सभी फूल अपने-आप देवी के गले में माला के रूप में परिणत हो गये। बाबा की मन्त्रहीन पूजा अपने ढंग की अकेली थी।

बाबा नित्य पूजा नहीं करते थे। जब मन में आया, पूजा करने आये, वर्ना कई दिनों तक गायब रहते थे। बाबा को साधक बनते देख ब्रजवासी कैलासपति तथा बाबा मोक्षदानन्द तारापीठ से काशी चले गये थे। वहाँ से कई स्थानों की यात्रा करते रहे। एक दिन मोक्षदानन्द ने देखा कि ब्रजवासी नहीं हैं। उन्होंने सोचा कि शायद वे तारापीठ चले आये हैं। यहाँ आने पर भी वे नहीं मिले। वामा क्षेपा से पूछने पर उन्होंने जवाब दिया—"मेरे श्री गुरु बाबा शून्य में लीन हो गये हैं।"

न जाने क्या सोच कर मोक्षदानन्द फिर कहीं नहीं गये। स्थायी रूप से यहीं रह कर वे साधना करते रहे। बाद में माँ के आँगन में उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। मोक्षदानन्द को वामा क्षेपा वेदज्ञ बाबा कहते थे। वहीं उनकी समाधि बना दी गयी।

× × ×

उस दिन भयंकर आँधी आयी और थोड़ी देर बाद मूसलाधार पानी बरसने लगा। हवा के साथ-साथ मेघ गरज रहे थे। बिजली चमक रही थी। नदी में न जाने कितनी झोपड़ियाँ और पशु प्रखर धारा में बहते हुए जा रहे थे। ठीक इसी समय कुछ लोग शव लेकर श्मशान में आये। यह शव बाबा की माँ, राजकुमारी देवी का था।

किसी ने कहा—''शव यहीं रख दो। इस दुर्योग में आगे नहीं जाया जा सकता।''

महाश्मशान में एक वृक्ष के नीचे बाबा बैठे थे। सहसा 'हरि बोल' कहते हुए खड़े हो गये। शव के साथ आये लोगों में से किसी ने पूछा—''बाबा, कहाँ जा रहे हैं?''

बाबा ने कहा—''रामू भाई, तुम जरा ठहरो। मेरी दुःखिया माँ उस पार माँ के आँगन में रहेगी।''

क्षेपा बाबा को पागलपन करते देख लोगों ने समझ लिया कि आज उनकी जलसमाधि होगी। बाबा अपनी माँ का शव पीठ पर लाद कर वेगवती नदी में कूद पड़े। लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा कि वे उस पार पहुँच गये हैं। शव-वाहकों में से किसी की हिम्मत उस पार जाने की नहीं हुई। लोग चुपचाप वापस चले गये।

माँ की अन्तिम क्रिया करने के बाद बाबाजी दिल खोल कर रोने लगे। तारा माँ का भक्त बनने के बाद वे अपनी सगी माँ को छोटी माँ और तारा देवी को बड़ी माँ कहा करते थे। आज गर्भधारिणी छोटी माँ से वे हमेशा के लिये बिछुड़ गये जो अभी तक बराबर अपने पुत्र को देखने के लिये श्मशान आती रही।

तेरहीं के दिन अजीब घटना हुई। एकादशाह तो गाँव वालों की सहायता से रामचन्द्र ने सम्पन्न किया, परन्तु तेरहीं के दिन बिना बुलाये न जाने कहाँ-कहाँ से लोग श्राद्ध भोजन करने के लिए आने लगे। आने वालों से पूछने पर पता चला कि स्वयं वामा क्षेपा ने इन लोगों को निमन्त्रित किया है। डर के कारण रामू छिप गया। पड़ोस के सुरेन्द्रनाथ ने लोगों से कहा—''रामचन्द्र में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह आप लोगों को खिला सके। वामा को इसीलिए लोग क्षेपा (पागल) कहते हैं। आप लोग क्षमा करें।''

सुरेन्द्रनाथ की बातों से सभी लोग नाराज हो गये। भोजन का न्योता देकर दरवाजे पर अपमान किया जा रहा है। धीरे-धीरे हंगामा बढ़ने लगा। एकाएक लोगों ने देखा—पूर्ण दिगम्बर रूप में बाबा आ रहे हैं। तारा माता की कृपा से सारा प्रबन्ध हो गया है। उनके पीछे काफी लोग भोज्य-पदार्थ लेकर आ रहे हैं। यह दृश्य देख कर सभी शान्त हो गये। पंक्तिवार लोग बैठ गये। लोगों को भोजन परोसा गया। इसी समय आकाश की रंगत बदल गयी। बादल घिर आये और बिजली चमकने लगी। भोजन करने वाले घबरा गये।

बाबा ने कहा—''किसी को पत्तल से उठने की जरूरत नहीं। कुछ नहीं होगा।

यहाँ तारा माँ स्वयं उपस्थित हैं। मैं रेखा खींच दे रहा हूँ। इसके भीतर तुम लोगों पर एक बूँद पानी नहीं गिरेगा।''

थोड़ी देर बाद मूसलाधार वृष्टि होने लगी। बाबा के आश्वासन के बावजूद लोग घबरा उठे। अधिकतर लोग भोजन नष्ट हो जायेगा समझ कर हाय-हाय करने लगे। तभी बाबा ने पुन: कहा—''बेकार घबरा रहे हो। आराम से भोजन करो। यहाँ पानी नहीं गिरेगा।''

आखिर तक वही हुआ जो बाबा ने कहा था। सभी को भोजन कराने के बाद बाबा अपने स्थान पर चले गये।

शुक्ला चतुर्दशी के दिन तारा मन्दिर के खुले आँगन में संन्यासियों का भण्डारा हो रहा था। ठीक इसी समय वामा क्षेपा श्मशान की ओर से अजस्र गालियाँ बकते हुए आये। आजकल कुछ दिनों से इनका मिजाज काफी उग्र हो गया था। उनकी आकृति और बातचीत देख कर लोग पास नहीं जाते थे। इस वक्त भी बाबा का रंगढंग देख कर किसी को कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ। बाबा किसी ओर देखे बिना सीधे मन्दिर के भीतर चले गये। कुछ देर तक अस्पष्ट आवाजें आईं, फिर ऐसा लगा जैसे कोई किसी को बेतहाशा मार रहा है। भक्तों तथा अन्य लोगों को मालूम है कि बाबा तारा माँ से लड़ते हैं, गाली बकते हैं, यहाँ तक कि मूर्ति पर लघुशंका भी कर चुके हैं। लेकिन आज बाबा को उछलते कूदते और फफक कर रोते देखा गया। सहसा उनकी पीठ दिखाई दी, जिस पर मार के निशान स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। बाबा चीखते हुए मन्दिर से बाहर आये।

तुरन्त लोग उनकी ओर दौड़े। लोगों ने चकित-भाव से देखा—बाबा के सारे शरीर पर मार के दाग हैं। वे बराबर उछल रहे हैं। मन्दिर में बाबा के अलावा अन्य कोई नहीं था, यानी तारा माँ अपने पुत्र को मार रही थीं। बाबा बाहर आकर कहने लगे—''तू माँ नहीं है, राक्षसी है। अब तेरे मन्दिर में नहीं आऊँगा।''

इसके बाद बाबा महाश्मशान चले गये। आश्चर्य की बात यह रही कि इस घटना के बाद से उनके स्वभाव में व्यापक परिवर्तन हो गया। अब जो कोई उनके पास जाता, उसका स्वागत मधुर-भाव से करते और कभी-कभी लोगों को गले से लगा लेते थे।

एक दिन न जाने क्या मूड आया, बाबा ने यह निश्चय किया कि अब वे कठोर-साधना करेंगे। भोजन के नाम पर केवल बेलपत्ती और माँ का चरणामृत पान करेंगे। साधना शुरू हुई। दिन ब दिन शरीर क्षीण होता गया। बातचीत बन्द, आँखें ढँपी-ढँपी। न पानी माँगते और न भोजन। चारों ओर अजीब मनहूस वातावरण हो गया। यहाँ तक कि जानवरों ने हिंसा करना छोड़ दिया। इस प्रकार छह माह व्यतीत हो गये। छह माह बाद आसन से उठे तो सीधे कुण्ड के भीतर डूब गये। असल में इस बीच इतने

दर्शनार्थी आये कि वे झल्ला कर डूब गये। इस प्रकार कठोर साधना के माध्यम से वे इस युग के महान् योगी हुए। उनकी साधना तपस्या का फल बाबा के भक्त आज भी उठा रहे हैं। तारापीठ के भक्त समस्त भारत में फैले हुए हैं, जो कभी-कभी चमत्कार दिखाते हैं।

× × ×

प्रात:काल का समय, बाबा ध्यान लगाये बैठे थे। सहसा एक आदमी दौड़ता हुआ आया और बाबा के पैरों के पास धड़ाम से गिर पड़ा। बाबा ने पूछा—"क्या हुआ?"

—"मेरी जान बचाइये, बाबा।"

बाबा बिगड़ उठे—"अबे साले, तुम लोग जिन्दगी भर पाप करते रहोगे और उसका फल मैं भोगूँ? जा, मन्दिर में जाकर तारा माँ से कह। मैं ओझा नहीं हूँ जो मन्त्र से जहर उतार सकूँगा।"

गिरे हुए युवक की माँ भी साथ आई थी। बाबा की बातें सुनते ही वह फफक कर रो पड़ी। बाबा पुनः नाराज होते हुए बोले—"धत तेरी की। अब तू क्या कुतिया की तरह रोने लगी? जा, मन्दिर के भीतर जाकर रो। भाग यहाँ से।"

इतना बिगड़ने पर भी जब कोई नहीं हटा, तब पुनः नाराज होते हुए बोले—"बोल साले, क्या हुआ है?"

बाबा में एक आदत थी। वे हर किसी को 'साले' कह कर सम्बोधित किया करते थे। युवक दिगम्बर ने कहा—"एक सप्ताह पूर्व मेरे यहाँ एक संन्यासी आया था। उसने कहा कि तुम्हारे जीवन का अन्तिम काल आ गया है। ठीक एक सप्ताह बाद तुम्हें साँप काटेगा और अपघात से तुम्हारी मौत होगी। उनकी बातें सुनकर मैं डर गया। संन्यासी से मैंने पूछा कि इससे बचने का कोई उपाय है, तब उन्होंने कहा कि मैं तुम्हें मौत से नहीं बचा सकता। अगर तारापीठ के बाबा जो महान् शक्ति-साधक हैं, चाहें तो कृपा करके बचा सकते हैं। इसीलिए आपके पास आया हूँ।"

बाबा में औघड़दानी शिव की तरह दया थी। माँ के करुण क्रंदन से उनका अन्तर पिघल गया। लाल नेत्रों से उस युवक की ओर देखते हुए बोले—"अबे साले, अभी तक तू यहाँ बैठा है। तेरा काल अपने घर से चल चुका है। बस आ रहा है। जा, जल्दी से स्नान कर आ। अरी बुढ़िया, तू यहाँ क्यों मर रही है। जा, मन्दिर में तारा माँ के पास निवेदन कर कि वह बेटे को बचा ले।"

बाबा का आदेश पाते ही दिगम्बर नदी की ओर स्नान करने चला गया और माँ मन्दिर में। इन दोनों के जाने के बाद बाबा अपने आप बोल उठे—"मैं अपने को जितना छिपा कर रखना चाहता हूँ, उतना ही तारा माँ मुझे परेशान करती हैं। परीक्षा लेती हैं।"

थोड़ी देर बाद दिगम्बर भीगे कपड़ों में सामने आकर खड़ा हो गया। बाबा उठते हुए बोले—"चल, जल्दी। मेरे साथ आ।"

सेमल वृक्ष के नीचे पंचमुण्डी आसन पर उसे बैठा कर बाबा ने कहा—"यहाँ बैठ कर केवल 'जय माँ तारा' जप करते रहना। मैं चारों तरफ रेखा खींच दे रहा हूँ। चाहे कितनी आफत आये, पर इस रेखा के बाहर भूल कर मत आना। कुछ भी देखना-डरना नहीं। डर के वक्त जोर-जोर से तारा माँ को बुलाना। मैं पास ही रहूँगा।"

इतना कहकर बाबा जंगल के भीतर चले गये। धीरे-धीरे शाम होने लगी। चारों ओर शृगाल, कुत्ते, गिद्ध अधजले शवों के पीछे आपस में लड़ते रहे। चमगादड़ों के कारण वातावरण भयंकर हो उठा। भय से सिहर कर दिगम्बर जोर-जोर से 'जय माँ तारा' कहने लगा। ठीक इसी समय फूत्कार सुन कर उसने देखा—एक बड़ा साँप उसकी ओर बढ़ता आ रहा है। वह भागने ही वाला था कि अचानक बाबा की बातें याद आ गयीं। अत्यधिक भय के कारण वह बेहोश हो गया। इधर साँप रेखा के चारों ओर भीतर जाने का मार्ग ढूँढ़ता रहा। अन्त में निराश होकर चला गया। सुबह होश आने पर उसने देखा कि पुरोहितजी माँ का प्रसाद खाने के लिए कह रहे हैं।

प्रसाद खाने के बाद वह मन्दिर में आया तो देखा—बाबा ध्यान लगाकर बैठे हैं। उनका गोरा शरीर नीला हो गया है। साँप के जहर को बाबा ने नीलकण्ठ की तरह धारण कर लिया है। कुछ देर बाद बाबा कुण्ड में स्नान करने लगे। वहाँ से लौटने पर स्वाभाविक स्थिति में आ गये।

वामा क्षेपा बाबा सिद्ध पुरुष थे। उनके श्रीमुख से जो निकल जाता था, वह अवश्य होता था। यह कार्य स्वयं तारा माँ करवाती थीं। बाबा का जो लोग दर्शन करने या अपने कष्ट के निवारण के लिए आते थे, मनोकामना पूर्ण होने पर भेंट चढ़ाते थे। बाबा की इच्छा थी इस धन से माँ के स्थान को भव्य बनायेंगे। प्राप्त रकम एक भक्त रखता था। उसके मन में कुबुद्धि उत्पन्न हुई। उसने उसमें से काफी रकम हड़प ली। यह रहस्य छिप नहीं सका। बाबा के एक भक्त वकील थाने में रिपोर्ट दर्ज कराने के बाद उसे न्यायालय तक घसीट ले गये।

न्यायालय के अनेक अधिकारी बाबा पर श्रद्धा रखते थे। अपराधी व्यक्ति पर मुकदमा चल रहा था कि एक दिन बाबा स्वयं ही अदालत पहुँच गये। वहाँ जाकर जज साहब से उन्होंने कहा—"भाई, इसे छोड़ दो।"

बाबा का अनुरोध सुन कर उपस्थित लोग आश्चर्य में पड़ गये। बाबा के वकील भी घबरा उठे। जज ने पूछा—"आखिर आप ऐसा क्यों कह रहे हैं?"

बाबा ने करुण स्वर में कहा—"अगर इसे सजा हो गयी तो कौन मेरे लिये गाँजा तैयार करेगा? कौन कारण (शराब) लायेगा?"

जज साहब ने उसे रिहा करते हुए कहा—"अब ऐसे उदार सन्त के साथ धोखेबाजी की तो सीधे जेल भिजवा दूँगा।"

बाबा जीवन-दान देते हैं, रोगी को अच्छा कर देते हैं आदि बातें सुन कर बंगाल के कोने-कोने से कष्ट-पीड़ित लोग आने लगे। कभी-कभी बाबा भीड़ से घबरा कर श्मशान में चले जाते थे, जहाँ डर के कारण लोग नहीं जाते थे।

एक दिन नगेन्द्र पण्डा एक सज्जन को लेकर आये। इसके पूर्व वे अकेले आये थे, पर बाबा का उग्र मिजाज देख कर कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। बाबा नगेन्द्र पण्डा को 'लगेन काका' कहते थे। आगन्तुक सज्जन के यहाँ एक व्यक्ति बीमार है। अगर बाबा वहाँ जाकर उस बीमार से कह दें कि तेरा रोग दूर हो गया है तो वह अच्छा हो जायेगा।

नगेन्द्र पण्डा ने तिकड़म किया। आगन्तुक से एक बोतल शराब और बाबा को ले जाने के लिए पालकी मँगवाई। बाबा सारा रहस्य समझ गये। जब पण्डा ने अनुरोध किया, तब वे चुपचाप पालकी पर सवार हो गये। मार्ग में नगेन्द्र ने अपने मतलब की बातें कीं और उन्हें सिखाया—"बाबा, आप रोगी को देखते ही कहियेगा कि अबे साले, तुझे कुछ नहीं हुआ है। चल उठ कर बैठ जा। तू ठीक हो गया है। समझे न?"

बाबा ने कहा—"हाँ, समझ गया। इसी प्रकार तुम मुझे सिखाते रहना।"

पालकी आगन्तुक के घर के पास आकर रुक गयी। तारापीठ के बाबा को देखने के लिए काफी भीड़ जुट गयी थी। बाबा आ रहे हैं, सुनकर रोगी प्रसन्न हो गया। रोगी को देखते ही बाबा कह उठे—"लगेन काका, यह साला तो देख रहा है। थोड़ी देर में फट हो जायेगा।" कहने के बाद ही उन्होंने दोनों हाथों से ताली बजायी।

बाबा ने ताली बजायी और रोगी की आँखें उलट गयीं। बाबा ज्योंही बाहर रखी पालकी पर बैठे, त्योंही भीतर से रोने की आवाजें गूँजने लगीं।

बाबा की बातें सुन कर नगेन्द्र पण्डा ने दुःखी होकर कहा—"अगर मैं यह जानता कि आप यहाँ आकर यही बात कहेंगे तो मैं आपको यहाँ न लाता।"

बाबा ने कहा—"लगेन काका, इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। तुमने जो सिखाया था, वही कहने जा रहा था तभी तारा माँ मेरी जीभ पर आकर बोलीं—'क्षेपा, यह बात मत कह, बल्कि फट कह दे।' मुझे क्या मालूम कि मेरी बात सुन कर लोग रोना-चिल्लाना शुरू कर देंगे।"

सन् १९०७ ई० की घटना है। हुगली शहर के दो वकीलों ने विचार किया कि एक बार बाबा का दर्शन कर आयें। इस चर्चा को सुन कर स्थानीय अध्यापक श्री नन्दलाल ने कहा—"वहाँ जाने की मेरी भी इच्छा है, पर पिताजी की हालत ऐसी है कि उन्हें छोड़ कर मैं कहीं जा नहीं पाता। पता नहीं, कब क्या हो जाय। कई डॉक्टरों

को दिखाया। सभी की राय है कि इस उम्र में मूत्रग्रन्थि का आपरेशन कराना बेकार है। जब तक चल रहे हैं, चलने दीजिए। आपरेशन से ठीक हो जायेंगे, इसकी गारंटी नहीं दी जा सकती।''

नन्दलाल के दोनों मित्र यात्रा की तिथि निश्चित कर चुके थे। जब यह बात नन्दलाल के पिता तक पहुँची, तब उन्होंने कहा—''साधुदर्शन की इच्छा जब मन में उत्पन्न हुई है, तब चले जाओ। मैं तो काफी दिनों से भुगत रहा हूँ। मेरी चिन्ता मत करो।''

बाबा के प्रमुख शिष्य तारानाथ (तारा क्षेपा) व्यक्तिगत कार्य के सिलसिले में हुगली बराबर जाया करते हैं। उनकी जबानी वामा क्षेपा के बारे में कई अलौकिक कहानियाँ सुनने के कारण नन्दलाल स्वयं बाबा का दर्शन करने को उत्सुक थे। पिताजी से आदेश पाते ही वे अपने मित्रों के साथ तारापीठ आये। बाबा उस समय सेमल वृक्ष के नीचे आराम कर रहे थे। रह-रह कर 'जय माँ तारा' कह रहे थे। तीनों मित्र बाबा के पास चुपचाप बैठ गये। धीरे-धीरे शाम हो गयी। सियार, कुत्तों की आवाजों से वातावरण भयानक हो उठा। रात को एक पुजारी आया और बाबा से कहा कि बाबा! प्रसाद लाया हूँ। ग्रहण कीजिये।

बाबा तुरन्त उठ बैठे और लगे ''जय काली-जय काली'' कहने। इस आवाज को सुनते ही कई कुत्ते, शृगाल दौड़ते हुए बाबा के पास आये। बाबा उनके साथ एक ही पत्तल में भोजन करने लगे। भोजन के बाद उनके पालतू कुत्ते बाबा के पास रह गये। तीनों मित्र यह दृश्य देख कर रोमांचित हो उठे।

दूसरे दिन तीनों मित्र तारापीठ स्थित जीवित कुण्ड में जब स्नान कर रहे थे तभी बातचीत के सिलसिले में एक सज्जन ने पूछा—''शायद आप लोग यहाँ प्रथम बार आये हैं। बराबर यहाँ आने पर ही बाबा के बारे में जान सकेंगे। हमारे बाबा महान् योगी हैं। बाबा में सबसे बड़ी खूबी यह है कि किसी बात की चिन्ता मन में करते हुए बाबा का स्मरण करेंगे तो उसका ठीक उत्तर मिल जायेगा।''

नन्दलाल के अलावा अन्य किसी ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। स्नान करने के बाद नन्दनाल मन ही मन पिता की अस्वस्थता के बारे में चिन्ता करने लगे। बाबा सेमल वृक्ष के नीचे अर्द्धशायित स्थिति में लेटे हुए थे। सहसा 'तारा' नाम लेकर नन्दलाल की पीठ पर हल्के ढंग से लात मारते हुए बाबा ने कहा—''अभी १५ वर्ष और।''

नन्दलाल इस बात का अर्थ नहीं समझ सके। थोड़ी देर बाद बाबा ने कहा—''तुम लोगों का मित्र तारा आ रहा है।''

रात १२ बजे तारानाथ कहीं बाहर से सफर करके वापस आये। इन लोगों को

बाबा के पास बैठे देख कर तारानाथ ने कहा—"यहाँ आने के पूर्व आप लोगों को मुझे सूचना देनी चाहिए थी।"

इसके बाद क्या-क्या घटनाएँ हुईं, सारी बातें तारानाथ ने पूछीं। सारी बातें सुनने के बाद उन्होंने कहा—"आपके पिताजी ठीक हो गये हैं। अभी १५ वर्ष और जीवित रहेंगे। बाबा के कहने का यही मतलब है।"

इस बात को सुन कर नन्दलाल खुशी से भर गये। दो दिन बाद घर आने पर उन्होंने देखा कि पिताजी स्वस्थ होकर बरामदे में बैठे हैं।

× × ×

दोपहर का समय था। भोजन के पश्चात् बाबा एक पेड़ के नीचे श्मशान के दृश्य देख रहे थे। इसी समय एक साधु आया और उन्हें प्रणाम करने के बाद बैठ गया। बाबा ने उसकी ओर देखते हुए पूछा—"कुछ लाये हो, बाबाजी?"

संन्यासी ने कहा—"हाँ, बाबा।" कहने के बाद उसने गाँजे की पुड़िया निकाली। दोनों आदमियों ने सेवन किया। गाँजा पीने के बाद साधु वामा क्षेपा बाबा के पास ही चिलम की आग उलट कर चला गया। बाबा ने ध्यान नहीं दिया। करवट लेने के कारण आग उनकी जाँघ के नीचे आ गयी। मांस जलने की गन्ध आने लगी, पर बाबा का ध्यान उधर नहीं था।

सहसा एक भक्त ने गौर से देखा और उनका पैर हटाते हुए कहा—"बाबा, आपकी जाँघ जल रही है।"

—"अरे! अब क्या होगा?"

—"घबराने की बात नहीं है। दवा लगा देता हूँ। ठीक हो जायेगा।"

बाबा ने कहा—"ठीक है, लगा दो बेटा।"

यह भक्त बाबा के निकट बराबर आता है। अब कुछ ज्ञानी हो गया है। उसे यह समझते देर नहीं लगी कि काम पर विजय प्राप्त कर लेने के कारण ही बाबा को अपनी जाँघ जलने की चिन्ता नहीं हुई। कुछ देर चुप रहने के बाद भक्त ने पूछा—"काम कैसे नष्ट किया जा सकता है?"

बाबा ने कहा—"नष्ट कैसे करोगे? उस पर विजय प्राप्त करना चाहिए। काम का दमन करने पर क्रोध प्रकट होता है। ईश्वर काम के अधीन नहीं है। जीव काम के वश में रहता है। काम का नाश कभी नहीं होता।"

भक्त—"साधकों का वास्तविक लक्ष्य क्या होना चाहिए?"

बाबा—"सर्वभूतों में भगवान् का दर्शन तथा भगवान् के भीतर सर्वभूतों का दर्शन करना साधक का एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए।"

बाबा शिक्षित नहीं थे। अक्षर-ज्ञान तक उन्हें नहीं था। किन्तु जब कोई जिज्ञासु भगत दर्शन, तन्त्र, धर्म के बारे में प्रश्न करता था, उसे इस प्रकार जवाब देते थे कि वह अवाक् रह जाता था। वहीं दूसरी ओर उनका व्यवहार, दैनिक कार्यक्रम देख कर लोगों के मन में विकार उत्पन्न हो जाता था। कुत्ते के मुँह से खाद्य-पदार्थ छीन कर खाने में संकोच नहीं होता था। स्वयं खाते समय कुत्ते, सियार या गिद्धों के मुँह में रोटी तथा मांस का टुकड़ा खिला देते थे। अधजले शवों और मुर्दों की खोपड़ियों के बीच में भोजन करने में संकोच नहीं होता था। मन्दिर में जाकर मल-मूत्र करके गन्दगी कर देते थे। उनमें घृणा, हर्ष, विषाद आदि के लक्षण कभी दिखाई नहीं देते थे। दरअसल बाह्य आचार-विचार के प्रति ध्यान नहीं देते थे।

उन्हें शराब पीते देख एक बार एक भक्त के मन में घृणा उत्पन्न हो गयी। बाबा से यह रहस्य छिपा नहीं रहा। उसे अपने पास बुला कर शराब की कटोरी दिखाते हुए बोले—"अबे साले, देख तो क्या मैं शराब पी रहा हूँ। मैं तो माँ का चरणामृत पी रहा हूँ। इस अमृत को तू शराब समझता है।

भक्त ने साश्चर्य देखा कि वास्तव में प्याली में चरणामृत है। जबकि इसके पूर्व वह उन्हें बोतल से शराब ढाल कर पीते देख चुका था। शराब कैसे चरणामृत के रूप में परिणत हो गयी, यह कैसा जादू है, वह समझ नहीं पाया।

इसी प्रकार एक बार सैंथिया स्थित अपने एक भक्त के घर गये थे। सैंथिया रामपुर हाट तथा बोलपुर के मध्य स्थित स्टेशन है। वहाँ बातचीत में काफी देर हो गयी। भक्त को यह ज्ञात था कि बाबा आज ही शाम को तारापीठ वापस जायेंगे। बाबा भी इस बात से परिचित थे। लेकिन किसी का ध्यान इधर नहीं था। इधर सैंथिया स्टेशन पर अन्तिम गाड़ी आकर खड़ी हो गयी। छूटने का समय हो गया। स्टेशन मास्टर ने घण्टी बजाकर गाड़ी को छोड़ने की सूचना दी। सिग्नल गिर गया। गार्ड ने ड्राइवर को सीटी बजाकर गाड़ी छोड़ने का निर्देश दिया। इतना होने पर भी गाड़ी आगे नहीं बड़ी। स्टेशन का सारा स्टाफ, ड्राइवर, गार्ड आदि सभी मिल कर प्रत्येक डिब्बे की जाँच करने लगे कि आखिर गाड़ी क्यों आगे नहीं बढ़ रही है।

यात्री लोग परेशान हो उठे। स्टेशन मास्टर ने रामपुरहाट जंक्शन को तार भेजा कि एक ईन्जन तुरन्त भेजो। दूसरा इंजन आया। लाइन पर बालू छिड़का गया। यहाँ तक कि इंजन का वैक्यूम बढ़ाया गया, फिर भी गाड़ी आगे नहीं बढ़ी। सभी लोग परेशान हो गये।

ठीक इसी समय यात्रियों में से कुछ लोगों ने देखा कि वामा क्षेपा बाबा भक्तों के साथ स्टेशन की ओर आ रहे हैं। इन यात्रियों में जो लोग भक्त थे, उन्हें विश्वास हो गया कि बाबा अगर कृपा करेंगे तो गाड़ी अवश्य चलेगी।

बाबा गाड़ी में आकर बैठे। यात्रियों ने कहा—"बाबा, गाड़ी नहीं चल रही है। जरा कृपा कीजिये। यहाँ कई घण्टे से रुकी है।"

बाबा ने कहा—"अच्छा।" फिर खिड़की को थपथपाते हुए बोले—"चल भाई, काफी देर तक इन्तजार किया।" बाबा के कहने की देर थी कि गाड़ी तुरन्त चल पड़ी।

बाबा के आकर्षण से प्रभावित होकर कलकत्ता के कुछ लोगों ने निश्चय किया कि इस बार दीवाली के अवसर पर तारापीठ जायेंगे। इस अवसर पर यहाँ बृहद् मेला लगता है और दूर-दूर से लोग यहाँ आते हैं। सवेरे के समय लाहिड़ी महाशय से बनर्जी बाबू ने कहा—"आप मेरे साथ इस बार तारापीठ चलियेगा। आज शाम को आफिस से लौटने के बाद मैं आपके पास आऊँगा। शाम को ७ बजे वाली गाड़ी से चलेंगे। साढ़े छह बजे आप तैयार रहियेगा। मेला भी देखेंगे और क्षेपा बाबा का दर्शन करेंगे।"

लाहिड़ी महाशय साथी के अभाव के कारण अब तक जा नहीं पा रहे थे। इस समाचार से उन्हें प्रसन्नता हुई। वे छह बजे पूरी तरह से तैयार होकर बनर्जी बाबू की प्रतीक्षा करने लगे। घड़ी की सुई धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी। एकाएक लाहिड़ी महाशय ने सोचा कि कहीं बनर्जी बाबू स्टेशन पर प्रतीक्षा न करते हों। यह ख्याल आते ही वे स्टेशन की ओर रवाना हो गये। रास्ते में एक जगह उन्हें यह स्मरण आया कि वामा क्षेपा बाबा गाँजा बड़े चाव से पीते हैं। उनके लिए एक पुड़िया ले लूँ। गाँजे की दुकान पर गये तो देखा—दुकानदार दुकान बन्द करके भीतर हिसाब मिला रहा है। इनके माँगने पर उसने कहा—"गाँजा पीते हैं और यह भी नहीं जानते कि छह बजे दुकान बन्द हो जाती है? जाइये कल आइयेगा। आबकारी के आदमी लगते हैं। इस वक्त हम गाँजा नहीं बेचते।"

लाहिड़ी बाबू ने कहा—"आपका ख्याल गलत है। न तो मैं आबकारी का आदमी हूँ, और न गाँजा पीता हूँ। तारापीठ दर्शन करने जा रहा हूँ। वामा क्षेपा बाबा के लिये ले जाना है।"

वामा क्षेपा का नाम सुनते ही दुकानदार के चेहरे की रंगत बदल गयी। बोला—"आप जरा ठहरिये।" फिर अपने कर्मचारी से कहा—"बक्से से बढ़िया गाँजा एक तोला बाबू को दे दे।"

लाहिड़ी महाशय ने पाँच रुपये का नोट बढ़ाया तो दुकानदार ने कहा—"दाम की जरूरत नहीं। अब आप जल्दी चले जाइये, वर्ना गाड़ी नहीं मिलेगी। आपको जो पुण्य मिलेगा, उसमें से कुछ हमें दे दीजियेगा।"

बस से उतरते ही लाहिड़ी महाशय की निगाह एक साइनबोर्ड पर पड़ी। लाहिड़ी महाशय को ज्ञात था कि बाबा शराब पीते हैं। साइनबोर्ड पर 'विलायती शराब' लिखा था। सीधे दुकान के पास आये। दुकानदार ने पूछा—"कौन-सी शराब चाहिए?"

लाहिड़ी बाबू ने कहा—"मैं नाम नहीं जानता, क्योंकि मैं पीता नहीं। वामा क्षेपा बाबा को देना है।"

दुकानदार ने कहा—"इन्हें एक्सा नम्बर वन दे दो। दूसरा मत देना वर्ना हजारों गाली देंगे।"

शराब लेकर लाहिड़ी बाबू ने साढ़े पाँच रुपये दिये। दुकानदार ने कहा—"आपसे साढ़े चार लूँगा।"

हावड़ा पुल पर चढ़ते समय उनकी निगाह घड़ी की ओर उठ गयी तो देखा—आठ बज कर चौबीस मिनट हो गये हैं। अब वे सोचने लगे कि गाड़ी तो चली गयी होगी। जाना बेकार है। ज्योंही यह विचार मन में आया, त्योंही उन्हें लगा जैसे कोई कमर और गर्दन पर हाथ लगाकर आगे की ओर ढकेल रहा है। स्टेशन से कुछ दूर थे कि गाड़ी की सीटी सुनाई दी। द्रुतगति से वे आगे बढ़ते गये। प्लेटफार्म पर एक गाड़ी खड़ी थी। बिना टिकट लिये वे उस पर सवार हो गये। उस वक्त आठ बज कर चालीस मिनट हो चुके थे। लाहिड़ी महाशय ने यह भी नहीं पूछा कि यह गाड़ी कहाँ जायेगी और कब छूटेगी।

आश्चर्य की बात यह हुई कि ज्योंही वे सवार हुए गाड़ी चल दी। इन्हें भयाक्रान्त-भाव से खड़ा देकर एक यात्री ने कहा—"आप खड़े क्यों हैं। पूरे डिब्बे में इतनी जगह खाली है, बैठ जाइए।"

—"यह गाड़ी कहाँ जायेगी?"

यात्री ने कहा—"वाह जनाब, गाड़ी रवाना होने के बाद आप यह पूछ रहे हैं कि कहाँ जायेगी? कम से कम किसी भी गाड़ी पर सवार होने के पूर्व यह पता लगाना चाहिये कि कब छूटेगी, कहाँ जा रही है। बहरहाल, आपको जाना कहाँ है?"

लाहिड़ी ने कहा—"मुझे तारापीठ वामा क्षेपा बाबा का दर्शन करने जाना है।"

यात्री ने कहा—"घबराइये नहीं। गाड़ी उधर ही जा रही है।"

—"आज यह गाड़ी इतनी लेट क्यों हो गयी?"

यात्री ने कहा—"शायद इंजन में कोई खराबी आ गयी थी। मुझे लगता है, यह सब बाबा की करतूत है, तभी इतनी देर से आने पर आपको गाड़ी मिल गयी।"

इसके बाद लाहिड़ी बाबू ने अपनी सारी रामकहानी सुनायी। कुछ देर बाद वर्धमान स्टेशन पर टिकट चेकर आया और इनके पास बैठ कर सभी लोगों के टिकट चेक किये। आश्चर्य की बात यह हुई कि लाहिड़ी महाशय से उसने टिकट दिखाने के लिए नहीं कहा। इस प्रकार बिना टिकट लाहिड़ी महाशय तथा एक अन्य साथी तारापीठ पहुँच गये।

अभी बाबा की कुटिया काफी दूरी पर थी। अचानक अँधेरे से एक आदमी इन लोगों के सामने आया और पूछा—"क्या आप लोग कलकत्ता से आ रहे हैं? अगर आपके पांस शराब और गाँजा हो तो तुरन्त मुझे दीजिये।"

आगन्तुक की बात सुनकर लाहिड़ी सन्नाटे में आ गये। इन दोनों को चुप रहते देख आगन्तुक ने पुन: कहा—"मैं बाबा का सेवक हूँ। दया करके आप लोग चुप मत रहिये। शाम से मैं उनकी गालियाँ सुन रहा हूँ। उनका कहना है कि कलकत्ते से एक लड़का साहबों वाला विलायती शराब और गाँजा लेकर आ रहा है। उसके साथ एक लड़का और है। जा, उन्हें अपने साथ लेता आ। अगर आप लोग वही आदमी हैं और आपके पास दोनों चीजें हैं तो झटपट मुझे दीजिये वर्ना फिर गाली सुननी पड़ेगी।"

लाहिड़ी महाशय दोनों सामान सेवक के हवाले कर उनके पीछे-पीछे चलने लगे। बाबा ने बोतल लेकर एक बरतन में शराब उड़ेली। थोड़ी-सी पीने के बाद बोले—"इस साले को कब से कह रहा हूँ कि मेरे लिये माल आ रहा है। जा, ले आ। जानता है, कल से इनके पीछे हूँ। पूछ साले, रात सात बजे गाँजा खरीदवाया। रात सात बजे कहीं गाँजा मिलता है? रात आठ बजे शराब खरीदवाया। कहीं गाड़ी छूट न जाय, इसलिए इंजन खराब कर दिया। यहाँ तक कि बिना टिकट तारा माँ के पास तक ले आया। साले, तुम चुप क्यों हो, कहते क्यों नहीं कि सारी बातें सच हैं या गलत? ये लोग मुझे शराबी और पागल समझते हैं।"

नन्दा डोम बाबा का परम भक्त है। उसका मुख्य काम था—बाबा के कुत्तों की देखभाल करना। बाबा उसी के हाथ का पानी पीते थे। कुष्ठ के कारण उसके दोनों हाथ खराब हो गये थे। नन्दा नित्य यह देखा करता था कि न जाने कितने रोगी तथा भिन्न-भिन्न कष्ट से पीड़ित लोग बाबा के पास आते हैं और वे रोग-मुक्त होकर चले जाते हैं। एक मैं हूँ कि बाबा की कृपा मुझ पर नहीं हो रही है।

बाबा को पीने के लिए नन्दा डोम जब पानी देने जाता तो अन्य भक्त उसे मना करते, तब वह कहता—"मैं क्या करूँ? बाबा मेरे अलावा और किसी के हाथ का पानी नहीं पीना चाहते।"

इस पर एक बार किसी ने कहा—"बाबा, आप नन्दा के हाथ का पानी क्यों पीते हैं, एक तो वह डोम है, दूसरे कोढ़ी।"

बाबा ने तुरन्त कहा—"अरे साले, मैं तो उसके हाथ का पानी पीता हूँ और तुम सब उसके पैर का धोवन पीते हो।"

बाबा के कहने का आशय लोगों को समझने में देर नहीं लगी। पास के कुण्ड में नन्दा नित्य जाकर अपने पैर धोता है। बरसात के दिनों में गाँव के सभी लोग इस कुण्ड

का पानी पीते हैं। उन दिनों नदी का पानी गँदला रहता है। बाबा नन्दा को काफी प्यार करते हैं। अगर वह दो-एक दिन दिखाई नहीं देता तो उसके लिए बेचैन हो जाते हैं। आज तक उस पर बाबा की कृपा क्यों नहीं हुई, यह रहस्य किसी के समझ में नहीं आता था। इधर नन्दा भी बाबा से अपने कष्ट के बारे में कुछ नहीं कहता था।

एक बार लगातार छह-सात दिन जब वह दिखाई नहीं दिया, तब बाबा ने स्थानीय एक भक्त से पूछा—"क्यों रे, आजकल नन्दा दिखाई नहीं दे रहा है।"

भक्त ने कहा—"आजकल वह अपने रोग के कष्ट से पीड़ित है। आज्ञा हो तो ले आऊँ?"

बाबा की आज्ञा पाकर लोग नन्दा को ले आये। उसकी शक्ल देखते ही बाबा उखड़ गये—"साला, तू बड़ा पापी है। तेरा हाथ गल-गल कर गिर पड़ेगा।"

बाबा अपने सेवक के प्रति इतने कठोर हो सकते हैं, किसी को स्वप्न में भी विश्वास नहीं था। बाबा के कटु वचन सुन कर नन्दा बुरी तरह रो पड़ा। कुछ देर बाद बाबा का क्रोध शान्त हो गया। गौर से नन्दा की ओर देखते हुए बोले—"अब आगे कभी पाप मत करना। जा, श्मशान की मिट्टी से मल-मल कर हाथ धो, ठीक हो जायेगा।"

इस आदेश को पाते ही नन्दा श्मशान भूमि की ओर चला गया। लगभग १५-२० दिन में उसका हाथ ठीक हो गया।

× × ×

श्री नन्दलाल भट्टाचार्य ने एक घटना के बारे में लिखा है—एक दिन तारापीठ के महाश्मशान में बाबा दिगम्बर रूप से बैठे हुए थे। रह-रह कर 'जय माँ तारा' कह रहे थे। ठीक इसी समय दूर कहीं से बाजा बजने की आवाज आई जो क्रमशः पास आती हुई ज्ञात हुई।

स्थानीय एक भक्त ने आकर सूचना दी कि लावलश्कर, गाजा-बाजा के साथ दरभंगा के महाराजा साहब बाबा के दरबार आ रहे हैं।

वामा क्षेपा ने तारा मन्दिर के पुजारी नगेन पण्डा से पूछा—"कौन आ रहा है?"

नगेन पण्डा ने कहा—"दरभंगा के राजा साहब आ रहे हैं बाबा।"

वामा ने पूछा—"वे क्यों आ रहे हैं? मैं तो नंगा फकीर हूँ। अब अगर राजा-महाराजा मेरे पास आने लगेंगे तो मुझे यहाँ से भागना पड़ेगा।"

राजा साहब सामान्य पहनावा तथा विनयावनत होकर आयें। वामा ने कहा—"मैं मूर्ख आदमी ठहरा। राजा-महाराजा से कैसे बात करनी चाहिए नहीं जानता। जरा मुझे सिखा दो ना।"

तभी राजा ने कहा—"मैं आपका एक छोटा भक्त हूँ। आपके लिये विलायती शराब ले आया हूँ। कृपया आप इसे ग्रहण करें।"

वामा ने कहा—"अच्छा किया बेटा। जीते रहो राजा साहब। तुम्हें दो-दो सन्तान प्राप्त हों।"

महाराजा अपुत्रक थे। बाबा के आशीर्वाद से उन्हें यमज पुत्र की प्राप्ति हुई।

प्रसिद्ध चित्रकार और लेखक श्री प्रमोदकुमार चटर्जी ने एक घटना का विवरण दिया है। इस घटना के वे प्रत्यक्षदर्शी थे।

चटर्जी बाबू वामा क्षेपा के पास बैंठे थे। नगेन पण्डा तथा अन्य कई लोग मौजूद थे। ठीक इसी समय एक दम्पत्ति गोद में एक बालक लिये आये।

बाबा ने उनसे कहा—"अपने लड़के को ले आया है, पर इस तरह आने से कुछ नहीं होगा। अपना लड़का मुझे दे सकेगा?"

पति ने कातर-भाव से उनके चरणों को स्पर्श करते हुए कहा—"यह तो आपका ही लड़का है बाबा, मेरा नहीं। आपकी जो इच्छा हो करिये।"

"अच्छा तो ठीक है। अब जो कह रहा हूँ उसे सुन। लड़के के शरीर पर से सारे कपड़े उतार डाल और इसके बाद लड़के को श्मशान में फेंक आ।"

इस आज्ञा को सुनते ही माँ का हृदय रो पड़ा। पिता को आत्मविश्वास था। बोला—"इतना रोती क्यों हो? जिसका लड़का है, वे जहाँ कह रहे हैं, वहाँ रखना ही होगा। चलो, उठो।"

पत्नी ने कहा—"वहाँ सियार-कुत्ते काफी हैं कैसे इस अबोध.....।"

पति ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। बालक के सारे कपड़े उतारने के बाद उसे लेकर श्मशान की ओर चल पड़ा। पत्नी भी साथ जा रही थी। तभी बाबा ने कहा—"बेटी, तुम वहाँ क्या करने जाओगी। बेटे को आने दो। तब तक तुम यहीं बैठी रहो। उनके आने के बाद जाना।"

महिला वहाँ बैठी बराबर रोती रही। कुछ देर बाद उसका पति वापस आ गया। बाबा ने कहा—"अब तुम दोनों यहाँ से सीधे मन्दिर में चले जाओ।"

वे दोनों बाबा को प्रणाम करने के बाद मन्दिर के भीतर चले गये। तभी बाबा ने वहाँ बैठे एक व्यक्ति से कहा—"देखो बेटा, केलो कहाँ है?"

वह व्यक्ति उठा और कुछ दूर आगे बढ़ कर 'केलो-केलो' आवाज देने लगा। सहसा एक काला कुत्ता दौड़ता हुआ पास आया। यह कुत्ता काले रंग का देहाती कुत्ता था। अत्यन्त खूँखार लग रहा था। बाबा के पास आकर उनके फैले पैरों पर सिर रख

कर सो गया। बाबा उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए बोले—"केलो, तू श्मशान चला जा और उस बच्चे की हिफाजत करते रहना।"

इस आज्ञा को सुनते ही केलो तड़ाक से उठा और श्मशान की ओर चला गया। चटर्जी बाबू को सारी बातें आश्चर्यजनक लग रही थीं। उनकी इच्छा हुई कि एक बार श्मशान तक जाकर उस अबोध शिशु की स्थिति को देख आयें, पर जा नहीं सके।

दोपहर को सभी लोग वहाँ प्रसाद खाने बैठे। इन लोगों में बच्चे के माता-पिता भी थे। उनके चेहरे पर विषाद की छाया थी। बातचीत के जरिये चटर्जी बाबू को ज्ञात हुआ कि बच्चे के पिता कलकत्ता में रहते हैं। रेलवे में काम करते हैं। इनके बच्चे होते हैं, पर बचते नहीं हैं। चार बच्चों को अब तक खो चुके हैं। इस बार बाबा के पास आये हैं। पति-पत्नी दोनों ही सात वर्ष से बाबा के शिष्य हैं।

भोजन के बाद बाबा विश्राम करने लगे। एक व्यक्ति उन्हें पंखा झल रहा था। बाहर केलो क़ो छोड़ कर कई कुत्ते थे। उनके नाम थे—केलो, भूलो, श्वेतफूली, लाली आदि।

काफी देर बाद कलकत्ता के रेलवे बाबू अपनी पत्नी के साथ आये। गोद में बच्चा था। बाबा को प्रणाम करते ही उन्होंने कहा—"आखिर तेरा लड़का जिन्दा हो गया न? सब तारा माँ की कृपा है।"

उक्त सज्जन ने कहा—"मेरा लड़का क्यों कह रहे हैं। यह तो आपका लड़का है। इसे आपने जीवन-दान दिया है।"

बाबा ने कहा—"नहीं रे, सब माँ की कृपा है। मैं भला क्या कर सकता हूँ। तुझे ही तो पालना पड़ेगा। जा, घर जाकर सर्वदा माँ को बुलाते रहना।"

उनके जाने के बाद बाबा ने कहा—"मुर्दा बच्चा लेकर आया था। माँ की कृपा हो गयी। मुझमें इतनी शक्ति कहाँ जो जीवन-दान दे सकूँ।"

× × ×

बाबा श्मशान में बैठे कुत्तों का आपस में लड़ने का खेल देख रहे थे। अचानक एक ओर से एक युवक आकर उनके चरणों में माथा रखते हुए रोने लगा। बाबा ने पूछा—"क्या बात है बेटा?"

युवक ने कहा—"मैं ज्ञान-भक्ति के लिये लालायित हूँ। कुछ दिन पूर्व मुझे स्वप्न में मन्त्र मिला था, पर उसके प्रयोग और फल का ज्ञान नहीं मिला। पुनः मुझे स्वप्न में आदेश मिला कि तारापीठ के बाबा के पास जाओ। वहीं तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। आप मेरे गुरु हैं। मुझे मार्ग दिखाइये।"

बाबा ने कहा—"तू सामान्य नहीं, असाधारण साधक है। तुझे स्वप्न में बीजमन्त्र मिल गया। यह तो माँ की असीम कृपा है।"

युवक ने कहा—"मन्त्र या देवता के प्रति मेरी आस्था उत्पन्न नहीं होती। मैं अलौकिक शक्ति प्राप्त करूँ, यह लालसा भी नहीं है। मैं इस सृष्टि के रहस्य को जानना चाहता हूँ।"

बाबा ने कहा—"तुम्हारी सारी बातें असंगत हैं बेटा। दरअसल तुम अपनी इच्छा ठीक से व्यक्त नहीं कर पा रहे हो। तर्क-वितर्क से कोई लाभ नहीं होता। सृष्टि के रहस्य को समझना सामान्य बात नहीं है। इसके लिये साधना करनी पड़ती है। साधना से मन में निग्रह होता है। इसके माध्यम से बुरा व्यक्ति भी अच्छा बन सकता है। तभी साधक अपने में निमग्नता और शान्ति का अनुभव करता है। साधक को जब समाधि प्राप्त होने लगती है तभी अभय पद प्राप्त होता है। आज हमें ऐसे साधकों की आवश्यकता है, जो जन-सेवा को विशिष्ट सेवा समझे। तुम धैर्य रखो, तुममें उत्कट जिज्ञासा है। समय आने पर सब दिखा दूँगा।"

युवक ने कहा—"क्या आद्या शक्ति का दर्शन हो सकता है?"

बाबा ने कहा—"क्यों नहीं। गुरु-मन्त्र में प्राण-प्रतिष्ठा करो। जब मन्त्र अन्तर की अनन्त गहराइयों में प्रवेश करेगा, तब तुम्हें सम्यक् ज्ञान प्राप्त होने लगेगा। उस समय तुम्हें अलौकिक अनुभूतियाँ प्राप्त होंगी।"

युवक ने बाबा के चरणों में अपना मस्तक रखते हुए कहा—"मैं निर्बुद्धि हूँ। भक्ति का ज्ञान मेरे पास नहीं है और न मैं प्राण-प्रतिष्ठा कर सकता हूँ।"

बाबा हँस पड़े। बोले—"जब मेरे निकट आये हो, तब चिन्ता किस बात की। तुम्हारे भीतर वह सब कुछ है, जिसकी जरूरत साधकों को होती है। तुम्हें केवल मार्ग-दर्शन की आवश्यकता है। मैं स्वयं तुम्हारी सहायता करूँगा।"

युवक चुप हो गया। शुभ दिन, शुभ लग्न देख कर बाबा ने वीराचारी पद्धति से उसका अभिषेक किया। बाद में उसे जप करने को कहा। २१ दिन के बाद उसे चिता पर वीरासन में बैठा कर उसके सामने एक दीपक रख दिया गया। इतना करने के बाद बाबा मन्दिर के भीतर चले गये।

कृष्ण चतुर्दशी की काली रात, महाश्मशान भूमि, कुत्ते-शृगालों के झगड़े, गिद्धों का लड़ना, वृक्षों पर चमगादड़, कौवे और उल्लुओं का फड़फड़ाना जारी रहा। सड़े, जल रहे नर-मांस की गन्ध से सारा वातावरण नरक-सा प्रतीत हो रहा था। जब तेज हवा चलती तब जमीन पर पड़े नर-मुंड आपस में टकरा जाते थे। इस वातावरण से घबरा कर साधक 'जय तारा माँ' का नारा बुलंद करने लगा। रात के तीसरे पहर उसे बाबा का मृदु स्वर सुनाई देने लगा। धीरे-धीरे साधक अपनी सत्ता में खो गया। सहसा एक अद्भुत प्रकाश हुआ। उस प्रकाश में उसने देखा—उसके सामने अभय मुद्रा की स्थिति में जगन्माता खड़ी हैं। चेहरे पर मनोमुग्धकारी मुस्कान थिरक रही है। ज्योंही

साधक का सिर प्रणाम के लिये झुका, त्योंही उसे लगा कि तीव्र गति से कुछ उसके मस्तिष्क से हृदय में प्रवेश कर गया।

× × ×

शारदा महाष्टमी के दिन काफी धूमधाम से तारा देवी की पूजा होती है। इस बार पूजा के बाद भूपति पण्डा मन्दिर से भोग लेकर बाबा के पास इस आशय से आया ताकि वे शान्तिपूर्वक खा लें। बाबा के जितने कुत्ते हैं, वे सब बहुत तंग करते हैं, बाबा को ठीक से खाने नहीं देते। इधर बाबा में एक बुरी आदत है, जब तक कुत्ते एक साथ उनकी पत्तल में नहीं खाते, तब तक उन्हें भोजन में आनन्द नहीं मिलता।

बाबा को भोजन परोसकर भूपति एक डण्डा लेकर बैठ गया। भूपति को डण्डा लेकर बैठते देख सभी कुत्ते ललचायी नजर से भोग की ओर देखते रहे। यह दृश्य बाबा के लिए असहनीय हो गया। समझ नहीं पा रहे थे कि कैसे इसका निवारण किया जाय। न जाने क्या मन में आया, लगे वे भूपति की प्रशंसा करने। बहुत कम लोग होंगे जो अपनी प्रशंसा सुन कर संकोचवश झुक न जाते हों। इधर भूपति जरा-सा गाफिल हुआ और तुरन्त बाबा ने मौका देख कर कुत्ते के मुँह में मांस का टुकड़ा डाल दिया। कालू को मुँह चलाते देख भूपति ने डण्डा चला दिया। मांस का टुकड़ा छोड़ कर वह काँय-काँय करता हुआ दूर चला गया।

यह देख कर बाबा ने कहा—"वन्ध्या को प्रसव-पीड़ा का अनुभव नहीं होता।"

भूपति अपुत्रक था। बाबा को क्रोधित होते देख वह चुप हो गया। नगेन्द्र पण्डा को जब यह ज्ञात हुआ कि बाबा ने प्रसाद ग्रहण नहीं किया है, तब वे तुरन्त मन्दिर से प्रसाद लेकर बाबा के पास आये। इस बार बाबा ने आवाज दी और सभी कुत्ते-शृगाल दौड़े हुए आए। इन जानवरों के साथ बाबा बड़े चाव से भोजन करने लगे।

भोजन के बाद बाबा अपने आसन पर जाकर बैठ गये। कुछ देर बाद एक मरणासन्न व्यक्ति को लेकर न जाने किस गाँव से कतिपय लोग आये। उनमें से एक ने कहा—"बाबा, इस पर आपकी कृपा-दृष्टि हो जाय। काफी इलाज हम करवा चुके, पर कोई लाभ नहीं हुआ। अपने माँ-बाप का इकलौता पुत्र है। इसे बचा लीजिये।"

बाबा ने कहा—"अबे साले, मैं क्या कोई डॉक्टर या कविराज हूँ जो बीमार को ठीक कर दूँगा। भाग जा।"

सभी लोग बाबा की आदतों से परिचित थे, इसलिए एक साथ उनके निकट बराबर निवेदन करते रहे। एकाएक बाबा क्रोधित मुद्रा में उठे और रोगी का गला दबाते हुए बोले—"साले, जिन्दगी भर पाप करेगा और आखिरी वक्त मेरे पास आयेगा। अब मर साले।"

सहसा बाबा का यह रूप देख कर आने वाले सभी लोग घबरा उठे। "कहाँ आये

थे हरि-भजन को और कहाँ ओटन लगे कपास'' वाली हालत हो गयी। एकाएक बाबा ने उसके गले को छोड़ दिया और कहा—''जा साले, तेरी किस्मत अच्छी रही। तू बच गया।'' इसके बाद उसे एक लात मारते हुए बोले—''चल उठ।''

तुरन्त रोगी उठ कर खड़ा हो गया। उसे देखने पर ऐसा लगता था जैसे वह कभी बीमार नहीं था। इस चमत्कार को देख कर लोग दाँतों तले उँगली दबाने लगे।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि बाबा युगपुरुष थे और इस तरह की अनेक चमत्कारी घटनाएँ अपने जीवन में कर चुके हैं। अगर ऐसी घटनाओं का संकलन किया जाय तो एक बृहद् पुस्तक तैयार हो सकती है। तारापीठ के भक्त न केवल बंगाल में, बल्कि सम्पूर्ण भारत में फैले हुए हैं। स्वयं मैंने दो ऐसे भक्तों को देखा जो व्यक्ति की आकृति देखते ही उसके जीवन के बारे में अद्भुत बातें बता देते हैं। मन में उत्पन्न होने वाली शंकाओं को बता देते हैं। वस्तुतः ऐसे साधक अपने को जल्द प्रकट नहीं करते, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को अपने भविष्य की जानकारी के लिए मन में उत्सुकता बनी रहती है।

प्रत्येक महापुरुष ठीक समय पर यह जान जाते हैं कि उनके महाप्रयाण की बेला आ गयी है। अब इस नश्वर शरीर को त्याग देना पड़ेगा। बरसात का मौसम था। चारों ओर मूसलाधार वृष्टि हो रही थी। बाबा अपनी कुटिया में आँखें बन्द किये बैठे थे। उनके पास कई भक्त थे। सहसा उनकी समाधि भंग हुई।

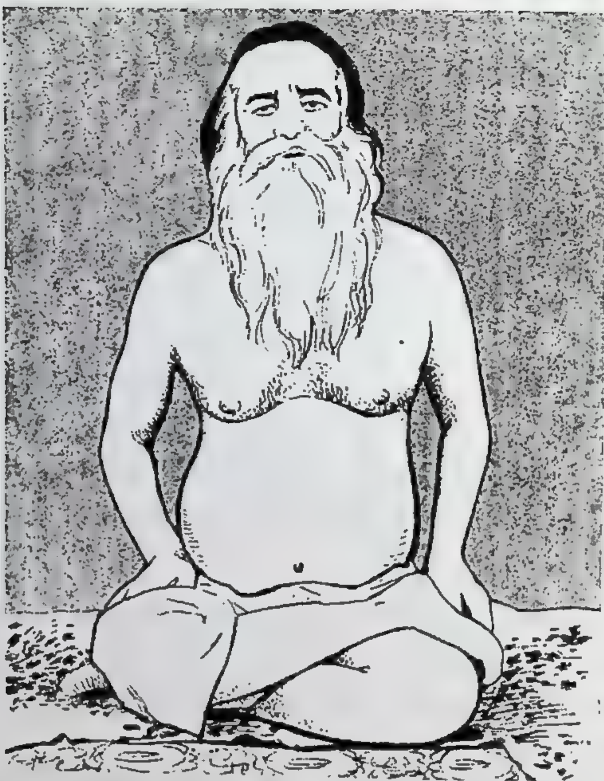
भक्तों की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—''नीम के पेड़ के नीचे जहाँ बाबा मोक्षदानन्द की समाधि है, वहीं उत्तर मुँह करके मुझे समाधि देना।''

बाबा की बातें सुन कर उपस्थित सभी भक्त चौंक पड़े। अपनी समाधि की चर्चा पिछले बीस वर्षों से उन्होंने कभी नहीं की। क्या बाबा हमसे बिछुड़ने जा रहे हैं। इस आशंका से सभी भक्त आसपास उनकी सेवा में लगे रहे। शाम होते-होते उनकी साँसें मन्द पड़ने लगीं। रह-रह कर केवल 'जय तारा-तारा माँ' उच्चारण करने के अलावा किसी प्रश्न का जवाब नहीं दे रहे थे। यह देख कर लोग कविराजजी को बुलाने के लिए दौड़ पड़े।

कविराजजी बाबा के अन्यतम भक्त थे। संवाद पाते ही आये। नाड़ी देखने के बाद वे फफक कर रो पड़े। बाबा परमब्रह्म में लीन हो चुके थे। उनकी इच्छा के अनुसार नीम के पेड़ के नीचे उन्हें समाधि दे दी गयी।

जय तारा, जय माँ तारा!





५

परमहंस परमानन्द

प्राचीनकाल से ही चित्रकूट की भूमि ऋषि-मुनियों की तप:स्थली रही है। भरद्वाज, दत्तात्रेय, अत्रि, वाल्मीकि आदि अनेक ऋषियों के आश्रम यहाँ थे। श्रीराम के आगमन के कारण यहाँ की भूमि और पवित्र हो गयी। श्रीराम के निवासकाल की गन्ध आज भी यहाँ के कण-कण में व्याप्त है। यहाँ आते ही एक अनजानी शान्ति प्राप्त होती है। अब्दुल रहीम खानखाना ने भी इसे स्वीकार किया है।

कामदगिरि पर्वत के चारों ओर स्थित मन्दिरों तथा सायंकाल मन्दाकिनी के तट पर रामायण के पद भक्तजन गाते रहते हैं। चित्रकूट का कस्बा केवल उत्तर प्रदेश में है, शेष दर्शनीय स्थल मध्य प्रदेश के क्षेत्र में हैं। इन दोनों प्रान्तों को 'धनुआ' नाला तथा 'मन्दाकिनी' अलग करते हैं।

चित्रकूट से आगे जानकी कुण्ड, इससे आगे स्फटिक शिला, उस पार हनुमान

धारा, पीछे लक्ष्मण टीला पार करने के बाद बायीं ओर एक सड़क गयी है जो अनसूया आश्रम जाकर समाप्त हो जाती है। अनसूया आश्रम का जीर्णोद्धार और पर्यटन-क्षेत्र बनाने का एकमात्र श्रेय परमानन्द महाराज को है। दोनों ओर घना जंगल है जहाँ आज भी अनेक हिंसक वन-पशु तथा डाकू रहते हैं। आजादी के बाद भी यात्रियों के दल लूटे जाते हैं।

अनसूया आश्रम घोर जंगल में, मन्दाकिनी के तट पर स्थित है। एक ऊँचे पर्वत के ऊपर महामुनि अत्रि अपनी पत्नी अनसूया के साथ रहते थे। श्रीराम के वनवास-काल में यहीं सीताजी को अनसूया देवी उपदेश देती रहीं। इस पहाड़ के नीचे टूटा-फूटा एक प्राचीन भवन है। इस भवन में कभी सिद्ध बाबा रहते थे। बाद में यहाँ परमानन्दजी आये। आजकल परमानन्दजी के शिष्य स्वामी भगवानानन्द पीठस्थविर हैं। पहाड़ की तलहटी में परमहंस आश्रम है। आश्रम के पार्श्व में अनसूया देवी का नवीन प्राचीन आश्रम एवं मन्दिर है। आश्रम के नीचे काफी दूर तक अनेक सोते हैं। आश्रमवासियों का कहना है कि मन्दाकिनी का उद्गम-स्थल यही है। लेकिन प्रत्यक्ष देखने पर ऐसा नहीं लगता। बहुत दूर से चौड़े नाले के रूप में मन्दाकिनी नदी आती दिखाई देती है। यहाँ के सोतों का जल लेकर वह पुष्ट हो जाती है। जिस पर्वत पर अत्रि मुनि रहते थे, वहाँ एक होमकुण्ड है। इस स्थान पर परमहंस आश्रम की ओर से एक ब्रह्मचारी चौबीसों घण्टे रहता है। प्रात:काल प्रात:क्रिया एवं भोजन के लिए एक बार नीचे आता है।

× × ×

बीसवीं शताब्दी के मध्य इस पवित्र भूमि पर अवधूत परमानन्द आये। आसपास न गाँव, न मानव-जाति की गन्ध। सिद्धों की भूमि हमेशा जाग्रत रहती है और उसका प्रभाव दर्शनार्थियों पर पड़ता है। परमानन्दजी के इष्टदेव ने इन्हें सुदूर कश्मीर से यहाँ आने का निर्देश दिया था। उन दिनों यहाँ सिद्ध बाबा की खण्डहर वाली कुटिया थी। इस कुटिया के एक तख्त पर आप बैठ गये। थोड़ी देर बाद आपको आदेश मिला— 'यहाँ मत बैठो। नीचे जाओ।'

इस आदेश को पाते ही आप काफी नीचे चले आये। पुन: आदेश मिला— "अब यहीं बैठ कर साधना करो। यही आसन तुम्हारा सिद्धपीठ है।" इष्ट की यह आज्ञा पाकर आप वहाँ बैठ गये। आगे चल कर वह स्थान आपका मुख्य स्थान बना।

परमानन्दजी किसी विशेष सम्प्रदाय के अनुगत नहीं थे। एक प्रकार से वे अवधूत थे। आपका जन्म पूर्वी उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के रामकोला गाँव में सन् १९१२ ई० में हुआ था। एक दिन माँ को अपने बच्चे के भविष्य की जानकारी का शौक लगा। पण्डित ने बालक का हाथ देख कर कहा—"यह बालक आगे चल कर राजा होगा अथवा योगी। बड़ा भाग्यवान् है।"

पण्डितजी की भविष्यवाणी सुन कर माँ घबरा उठी। राजा होने की कल्पना वह कर नहीं सकती थी। योगी होने की सम्भावना अधिक थी। इस अनिष्ट कल्पना के कारण वह शंकित रहने लगी।

जब आपकी उम्र पाँच वर्ष की हुई, तब आपको पाठशाला भेजा गया। वहाँ पढ़ने-लिखने की अपेक्षा मारपीट, हुड़दंग करते रहे। तंग आकर एक दिन मास्टर ने आपकी मरम्मत कर दी। दूसरे दिन से आपने स्कूल जाना बन्द कर दिया। शिक्षा का आदि और अन्त यहीं हो गया। स्कूल से मुक्ति पाने के बाद आपने पहलवानी की ओर विशेष ध्यान दिया। गाँव में हम उम्र के अधिकांश लोग पहलवानी करते थे। गाँव की परम्परा का पालन आप भी करने लगे। कुछ ही दिनों में आपकी गणना प्रसिद्ध पहलवानों में होने लगी। लोग आपकी ओर हसरतभरी निगाहों से देखा करते थे।

एक दिन आप अपनी मस्ती में झूमते हुए चले जा रहे थे। ठीक इसी समय एक तेज आवाज आई—'इस साधु को भोजन कराओ।' इस आवाज को सुनकर आप चौंक उठे। देखा—एक महात्मा 'सीताराम-सीताराम' कहता हुआ आगे न जाने कहाँ गायब हो गया। आपने चारों ओर चकित दृष्टि से देखा कि किसने किसको यह आदेश दिया? आपने आश्चर्य के साथ देखा—सभी अपने-अपने कार्य से गन्तव्य स्थल की ओर चले जा रहे हैं। किसी ने इस आवाज की ओर ध्यान नहीं दिया। राह चलते दो-चार व्यक्तियों से पूछने पर जवाब मिला—"मुझे कोई आवाज नहीं सुनाई दी।" जबकि वह आवाज इतनी तेज थी कि दूर तक सुनाई दी होगी। इसी चिन्ता में आप आगे बढ़ गये। इधर आपके मस्तिष्क में यह आदेश बराबर गूँजता रहा। अन्त में आपने निश्चय किया कि उस महात्मा को खोज कर मैं भोजन कराऊँगा। काफी देर खोजने के बाद महात्माजी से मुलाकात हुई। आपने उनसे पूछा—"बाबा, आप 'सीताराम-सीताराम' करते रहेंगे या भोजनादि करेंगे?'

सन्त ने कहा—"चलो, भोजन कराओ।"

उस समय आपके पास केवल तीन पैसे थे। उन पैसों से आवश्यक सामान खरीद कर आप बाबा को घर लेकर आये। भोजन करने के बाद सन्त ने आपसे पूछा—"मुझे तुमने भोजन क्यों कराया? क्या चाहते हो?"

परमानन्दजी को विश्वास था कि अगर सन्त आशीर्वाद दें तो वह फलीभूत होगा। आप पर पहलवानी का नशा था। आपने कहा—"मैं चाहता हूँ कि मुझे कुश्ती में कोई पराजित न कर सके।"

इस प्रार्थना को सुन कर बाबा 'एवमस्तु, कह कर चल दिये। आपको विश्वास हो गया कि अब आपको कोई अखाड़े में नहीं पटक सकता। महात्माजी के जाने के तीसरे दिन दंगल का आयोजन हुआ। बड़े दृढ़ विश्वास के साथ आप अखाड़े में उतरे, पर

फल उल्टा हुआ। अत्यन्त दु:खी मन से आप घर वापस आ गये। लज्जावश कई दिनों तक आप घर से बाहर नहीं निकले। बाद में आपका अन्तर्मन कहने लगा—"अगर इस दंगल में विजयी हो जाता तो सन्त के आशीर्वाद का गर्व स्थायी रूप धारण कर लेता जो उचित नहीं था।"

× × ×

आपके गाँव के पड़ोस में एक अन्य गाँव है। वहाँ एक नयी बहू ब्याह कर आयी थी। इस युवती के पीछे कुछ मनचले युवक पड़े थे। पता नहीं, किस भावना से उस युवती ने एक बुढ़िया के जरिये आपको अपने यहाँ आने का निमन्त्रण दिया। एक दिन शाम के समय आप खूब बन-ठन कर उस युवती के घर की ओर चल पड़े। कुछ दूर जाने के बाद आपके मन में विवेक उत्पन्न हुआ। कहीं मैं यह गलत काम तो नहीं करने जा रहा हूँ? तुरन्त उसी अदृश्य आवाज ने कहा—"यह घोर पाप है। नरक-यातना भोगोगे।"

इस चेतावनी को सुनते ही आप उलटे पाँव तुरन्त लौट पड़े। पुन: आवाज आयी—"कुछ दूर आगे देवालय है जहाँ तुम्हारे गुरुदेव तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

महापुरुषों और योगियों को अधिकतर आकाशवाणी के माध्यम से ऐसे आदेश दिये जाते हैं, जिसे केवल वही सुन पाते हैं। कुछ दूर आगे बढ़ने पर एक प्राचीन मन्दिर दिखाई दिया।

मन्दिर के भीतर घना अँधेरा था। कुछ देर अँधेरे में खड़े रहने के बाद आपको कुछ दिखाई देने लगा। सहसा एक ओर से किसी के खाँसने की आवाज आई। पास जाकर प्रणाम करने के बाद आप गुरुदेव के पैर दबाने लगे। तीन दिनों तक आप गुरुदेव की सेवा में लगे रहे। इसी बीच आपके गुरु सत्संगी महाराज आपको साधन-भजन आदि के अलावा श्वास-क्रिया के योग सिखाते रहे। सारी कार्यवाही करने के बाद गुरुदेव अन्तर्ध्यान हो गये।

गुरुदेव के निर्देशानुसार आप साधना में जुट गये। चार माह बाद गुरुदेव अचानक पुन: एक दिन आ गये। उस दिन भजन करने में आपको प्रसन्नता हुई। आपने गुरुदेव से कहा—"पता नहीं क्यों आज भजन करने में मेरा मन खूब लगा। इसके पूर्व कभी नहीं लगता था।"

गुरुदेव ने कहा—"बात यह है कि मैं अपने शिष्यों के मन को पकड़ कर ध्यानस्थ हो जाता हूँ, ताकि उनके मन में अस्थिरता उत्पन्न न हो।"

यह बात सुन कर परमानन्दजी ने सोचा—शायद इसीलिए मेरे गुरु-भाईयों का विकास नहीं हुआ। आपने गुरुदेव से प्रार्थना की कि "भविष्य में मेरा मन न पकड़ा जाय, बल्कि मुझमें ऐसी क्षमता उत्पन्न कर दी जाय ताकि मैं स्वतन्त्र रूप से साधन-भजन कर सकूँ।"

गुरुदेव ने कहा—"तथास्तु। भविष्य में ऐसा ही होगा।"

परमानन्दजी को वैरागी बनते देख घरवाले नाराज हो गये। पहले तो लोगों ने काफी समझाया, बाद में निश्चय किया कि असली जड़ इनका गुरु है, उसे मार कर भगा दिया जाय। मानव में सबसे बड़ी कमजोरी यह होती है कि लोग अपने लोगों में दोष नहीं देखते, दूसरों को दोषी समझते हैं। परमानन्दजी के परिवार के लोगों का निश्चय काफी महँगा पड़ा। परिवार में मौतों का सिलसिला चालू हो गया। एक के बाद एक करके घर के लोग मरने लगे। एक बार स्थिति इतनी चिन्तनीय हो गयी कि शोकातुर प्राणियों ने एक शव को इनके सामने रखते हुए कहा—"जब से तुम वैरागी बने हो, तब से घर की दुर्दशा हो रही है। जब सभी समाप्त हो जायेंगे, तब अकेले भजन करना।"

इस दर्दनाक घटना के कारण आपका मन विचलित हो उठा। इस हृदय-विदारक दृश्य को देख कर आपने निश्चय किया कि इस मार्ग को छोड़ देना श्रेयस्कर है। ठीक इसी समय आपके गुरुदेव ने आपको सम्हाल लिया।

उन्होंने कहा—"संकट की इस घड़ी में विचलित मत हो। यह सब परीक्षा की घड़ियाँ हैं। इस संसार में जो आया है, एक दिन उसे जाना है। तुम अपनी साधना में लगे रहो।"

आप रामकोला में जिस जगह पर बैठ कर साधना करते थे, उस स्थान के बगल में आम का एक बाग था। उस बाग में नित्य कोई आम चोरी कर लेता था। बाग के मालिक को यह सन्देह हुआ कि ये तथा इनके साथी बाग से आम चोरी करते हैं। इस धारणा के कारण वह नित्य चुन-चुन कर गालियाँ देता था। उसके इस व्यवहार से आपको क्षोभ हुआ कि मैं आम छूता तक नहीं और मुफ्त में गालियाँ मिलती हैं। आपके पास गाँव के जो लोग सत्संग के लिए आते थे, जब उन्हें सारी बातें मालूम हुईं तब उन लोगों ने कहा—"आज हम लोग यहीं सोयेंगे। आप भोर के वक्त हमें जगा दीजियेगा। हम पूरे बाग से आम गायब कर देंगे।, फिर देखें, वह क्या करता है।"

इस निश्चय के बाद सभी लोग उस दिन अपने-अपने घर न जाकर वहीं सो गये। सोते समय लोगों ने परमानन्दजी से कहा—"सुबह हमें जगा दीजियेगा।"

अर्द्धरात्रि के समय परमानन्दजी को हवा में तैरती हुई एक आवाज सुनाई देने लगी। लगा जैसे कोई गा रहा है—

जननी सम जानहिं पर नारी।
धन पराय विष ते विष नारी॥

इस पद को सुनना था कि आपका मन चंचल हो उठा। उस रात को आपने दुःस्वप्न भी देखा। स्वप्न में आपको आदेश मिला—"यह कार्य गलत है।"

योजनानुसार आपने सुबह किसी को नहीं जगाया।

× × ×

बरसात के बाद परमानन्दजी ने देखा कि वे जिस स्थान पर भजन कर रहे हैं, बड़ा मनोरम हो गया है। अब बराबर यहीं साधन-भजन करते रहेंगे। स्वच्छ हवा, शान्त परिवेश, पुरजनों की संगत आदि ने आपको प्रभावित किया। इधर ज्योंही इस स्थान के सम्बन्ध में आपके मन में आसक्ति उत्पन्न हुई, त्योंही आपको आदेश मिला कि अब प्रयाग चले जाओ।

इष्ट की अवहेलना करने की क्षमता उनमें नहीं थी। आप प्रयाग चले आये। बार-बार इष्ट द्वारा व्याघात उत्पन्न होने के कारण आपने निश्चय किया कि आगे से प्रत्येक कार्य के लिए इष्ट से आज्ञा लेकर उसे पूरा करूँगा। प्रयाग-संगम पर आकर आपने इष्ट से पूछा—"अब आगे मुझे क्या करना होगा?"

आदेश मिला—"वस्त्रों को यहीं नदी किनारे उतार कर रख दो।"

वस्त्रों को नदी किनारे उतार कर आप दिगम्बर हो गये। इस रूप में काफी दिनों तक नदी किनारे टहलते रहे। जब आप सिद्ध हो गये तब कोई शिष्य या भक्त जब यह प्रश्न करता कि आप तो अच्छे खाते-पीते घराने के थे, एकाएक साधु कैसे बन गये तब आप कहते थे—"साधु बना नहीं जाता। भगवान् स्वत: बना देते हैं।"

इसके पूर्व आप कई बार प्रयाग आ चुके थे। पहली बार की घटना है। संगम पर स्नान करते समय कुछ संन्यासियों से आपका विवाद हो गया। आपने अनजाने एक संन्यासी के फूटे लोटे में पानी भर कर ऊपर उठाया तो उसमें से पानी का एक बूँद भी नहीं गिरी। इस दृश्य को देख कर उपस्थित सभी साधु चकित रह गये। इधर आपकी स्थिति विचित्र हो गयी। उत्तेजनावश आपसे यह चमत्कार हो गया था, जबकि आपकी इच्छा ऐसा करने की नहीं थी। इस भूल के लिये आपने अपने इष्ट से क्षमा माँगी।

दूसरी बार आप कुम्भ के अवसर पर आये थे। संगम के दोनों ओर साधुओं के तंबू लगे थे। आप अकेले विचरण करते हुए जिस तंबू में जाते, वहाँ से भगा दिये जाते थे। इस कुम्भ में एक सेठ ने भण्डारे का आयोजन किया। आप भी यहाँ निमन्त्रित थे। पत्तल बिछ जाने पर जब आपकी वेष-भूषा और आकृति पर संन्यासियों की दृष्टि गयी तब उन लोगों ने सेठ से कहा—"हम महात्माओं के साथ इस 'खड़िया' को क्यों बैठाया है? इसकी शक्ल देखो, लगता है जैसे महीनों से स्नान नहीं किया है। कितना गन्दा है।"

सेठ ने विनयपूर्वक कहा—"मेरी दृष्टि में सभी महात्मा हैं। अपने यहाँ आमन्त्रित किसी भी संन्यासी का अपमान नहीं करना चाहता।"

परमानन्दजी पिछले चार दिनों से भूखे थे। ज्योंही वे भोजन करने लगे, त्योंही पानी बरसने लगा। सहसा आपके मुँह से निकला—"इसी समय पानी बरसना था?"

इतना कहते ही वर्षा रुक गयी। आपके इस चमत्कार से लोग प्रभावित हुए। परमानन्दजी से यह रहस्य छिपा नहीं रहा। भोजन के पश्चात् लोग हाथ धोने के लिए विशेष स्थान पर गये, पर आप सीधे गंगा नदी की ओर बढ़ गये। कुछ लोग इनके पीछे-पीछे गये। जब तक पीछे आने वाले लोग नदी किनारे आयें, उसके पूर्व आप उस पार पहुँच गये। वहाँ बाँस से घिरे एक प्रकोष्ठ में प्रवेश कर गये। आपकी तलाश में कुछ लोग नाव से उस पार गये, पर आपको खोज नहीं सके।

कभी-कभी इस घटना की चर्चा करते हुए आप अपने शिष्यों से कहते थे—"भगवान् ही सब पूर्ण करते हैं। ऋद्धि-सिद्धि से कुछ नहीं होता। ईश्वर के प्रति मन में विश्वास, स्थिरता और आस्था रहनी चाहिए। परम प्रभु की कृपा से ही अलौकिक घटनाएँ होती हैं।"

तीसरी बार पुनः कुम्भ में आए तो यायावर की तरह चारों ओर घूमते रहे। सहसा आपको पता चला कि एक देशी राज्य की रानी संन्यासियों को भण्डारे में भोजन करा रही हैं। आप वहाँ पहुँच गये। दरवाजे पर खड़े सिपाही ने आपको धक्का देकर बाहर कर दिया।

उसने कहा—"यह भण्डारा महात्माओं के लिये है। तुम जैसे पागलों के लिये नहीं। भाग जाओ।"

इस अपमान के कारण आपके मन में क्लेश उत्पन्न हो गया। क्या अभी तक मैं महात्मा नहीं बना? यह प्रश्न मन में उत्पन्न होते ही आपने निश्चय किया कि अब मैं भोजन के लिए कहीं नहीं जाऊँगा। भगवान् को खिलाने की इच्छा होगी तो स्वयं प्रबन्ध करेंगे। इस प्रकार की कल्पना करते हुए आप एक जगह बैठ गये।

कुछ देर बाद एक व्यक्ति ने आकर कहा—"महाराज, कृपा करके आप मेरे घर चलिये और भोजन कीजिये।"

परमानन्द ने कहा—"सेठ, मैं किसी के घर भोजन के लिये नहीं जाता। तुम्हें भोजन कराना है तो यहीं कराओ।"

इस बात को सुनकर वह व्यक्ति आपके लिये भोजन ले आया। भोजन करने के बाद आप वहाँ से चल पड़े। घूमते हुए आप वहाँ आये, जहाँ अपमानित हुए थे। वहाँ भीड़ लगी हुई थी। जिस सिपाही ने आपको धक्का देकर भगाया था, इस वक्त वह पेट के दर्द से छटपटा रहा था। सम्भवतः उसने भीड़ से कहा था कि आज एक सन्त को मैंने धक्का देकर अपमानित किया था, उन्हीं के कारण यह कष्ट है। लोग आपकी तलाश में थे। दर्शकों ने आपसे प्रार्थना की। सन्त-स्वभाव के कारण आप उस सिपाही के निकट बैठ कर पेट पर हाथ फेरने लगे। दर्द तुरन्त गायब हो गया।

अपनी आँखों से आपका चमत्कार देख कर श्रद्धालु लोगों की भीड़ बढ़ने लगी। आप वहाँ से तुरन्त गायब हो गये।

× × ×

इष्ट के आज्ञानुसार आप जौनपुर, काशी आदि स्थानों का भ्रमण करते हुए देहरादून आये। यहाँ एक वृक्ष के नीचे साधना करने का आदेश मिला। साथ ही यह चेतावनी दी गयी कि एक व्यक्ति दूध लेकर आयेगा, उसे मत पीना। यहीं तुम्हारा कल्याण-मार्ग प्रशस्त होगा।

दूसरे दिन एक व्यक्ति दूध लेकर हाजिर हुआ। आप बराबर पीने से इन्कार करते रहे। बाद में निरन्तर आग्रह होते देख आपने उसका दूध पी लिया। तुरन्त इष्ट ने आदेश दिया—"अब यह स्थान छोड़ दो।" आप इष्ट के निकट गिड़गिड़ाने लगे, पर इष्ट ने क्षमा नहीं किया।

अपने इस अनुभव के बारे में आप अपने शिष्यों से अक्सर कहा करते थे—"अन्तर जगत् से प्राप्त होने वाले आदेशों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उपेक्षा करने पर लक्ष्य-प्राप्ति में व्यवधान आ जाता है। समर्थ इष्ट की कृपा से साधक अपनी साधना में सफलता प्राप्त करता है।"

देहरादून से आप मधवापुर आये। यहाँ आने पर आपको संकेत मिला कि यहाँ एक देवालय है। वहाँ जाकर साधना करो। यह देवालय उपेक्षित रहा। गाँव के निवासी कभी यहाँ नहीं जाते थे। गाँव के लड़के स्कूल जाते समय देखते कि इस सुनसान मन्दिर में एक पागल बाबा ने डेरा जमाया है। 'बालक-बन्दर दोउ एक सुभाऊ' के अनुसार स्कूल जाते और वापस आते समय अधिकांश बालक मुँह चिढ़ाते और ढेला फेंकते थे।

एक दिन एक बालक का ढेला आपको लगा। क्रोध में गालियाँ बकते हुए आप बाहर आये। तब तक वह बालक दौड़ कर भाग गया। भागते समय एक जगह ठोकर खाने के कारण उसे चोट लगी। घर पर पूछने पर रोते हुए बालक ने आपकी शिकायत की।

एक तो आपको अजनबी समझ कर सभी आपसे शंकित रहते थे। दूसरे आपको दिगम्बर रहते देख आपको लोग नापसन्द करते थे। लड़के के बाप ने गाँव वालों से शिकायत की और निश्चय किया कि बाबा को यहाँ से भगा दिया जाय। इस निश्चय के बाद लोग गिरोह बना कर मन्दिर की ओर चल पड़े।

भीड़ में एक वृद्ध सज्जन थे। उन्होंने कहा—"देखो, उत्तेजनावश पहले कुछ मत करना। मैं बाबाजी की परीक्षा लूँगा। अगर वे वास्तव में ऊँचे दर्जे के बाबा होंगे तो मालूम हो जायेगा। साधारण होने पर हम इन्हें गाँव से निकाल देंगे। ऊँचे दर्जे का होने पर हम पर मुसीबत आ सकती है।"

बात सही थी। गाँव के लोगों ने उस वृद्ध के प्रस्ताव को स्वीकार किया। इधर गाँव के लोगों को एक साथ आते देख परमानन्दजी सारा रहस्य समझ गये।

मन्दिर के पास आकर वृद्ध ने कहा—"महाराज, हम आपके पास एक दोहे का अर्थ समझने आये हैं। कृपया हमें बताइए कि इसका वास्तविक अर्थ क्या है?"

परमानन्दजी ने कहा—"पूछो भाई।"

वृद्ध ने कहा—

एक बार हरि घोड़ा भये, ब्रह्मा भये लगाम।
चाँद सुरज रवि का भये, चढ़ि गये चतुर सुजान॥

परमानन्दजी वृद्ध के आशय को भाँप गये। मन ही मन मुस्कराये। बोले—"बहुत सुन्दर प्रश्न किया है आपने। इस पद का अर्थ है—साधना करते-करते साधक की ऐसी स्थिति स्वतः आ जाती है जब हरि अर्थात् इष्टदेव घोड़ा बन जाते हैं। ध्याता सवार हो जाता है। इष्टमयी बुद्धि लगाम बनकर नियंत्रण करने लगती है। इंगला-पिंगला योगी के चढ़ने के आधार हैं। चित्त का विरोध करने वाला कोई-कोई चतुर सुजान ही इस स्थिति को प्राप्त करता है। आया समझ में?"

उपस्थित सभी लोग वृद्ध की ओर एकटक देखने लगे, क्योंकि उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ा।

अपने दोहे की इस व्याख्या को सुनते ही वृद्ध उनके चरणों पर गिर पड़ा। गाँव वालों से उसने कहा—"यह हमारा सौभाग्य है कि ऐसे देवतास्वरूप योगी हमारे गाँव में निवास कर रहे हैं। हमें चाहिए कि हम इनकी सेवा करके परमार्थ लाभ करें।"

इस घटना के बाद से लोगों की श्रद्धा आपके प्रति बढ़ गयी। आप जिस मन्दिर में रहते थे, उसके पास एक बेल का पेड़ (जो आज भी है) है। अत्यधिक मिठास के कारण (पक जाने पर) उसमें कीड़े पड़ जाते थे। एक बार वहाँ श्रीमद्भागवत का पाठ हो रहा था। आयोजन में अनेक श्रोता उपस्थित थे। सहसा एक बेल आपके ऊपर गिरा। दर्द से आप कराह उठे। तत्काल आपके मुँह से निकला—"भविष्य में कभी इस पेड़ के फल कीड़ों से सड़ कर नहीं गिरेंगे।"

इस घोषणा के बाद से आज तक किसी भी फल में न कीड़े लगे और न सड़े। अब उस पेड़ के बेल को प्रसाद के रूप में ग्रहण किया जाता है।

महाराज परमानन्द की सेवा में एक भोला-भाला सेवक रहता था जो वन-रक्षक था। वह महाराज के लिए लकड़ियों का प्रबन्ध करता था। एक बार बरसात के मौसम में वह हैजे से पीड़ित हो गया। सहसा एक दिन उसकी याद आयी। तभी उसके यहाँ से आने वाले एक सज्जन ने कहा—"अब वह महाराज की सेवा में कभी नहीं आयेगा। अब तक शायद मर गया होगा। आज सवेरे गऊ दान मेरे सामने हुआ था।"

महाराजजी ने कहा—"एक काम करो। धूनी से विभूति ले जाकर उसे खिला दो। अभी वह मरा नहीं है।"

सूचना देने वाला अवाक् रह गया। वह स्वयं अपनी आँखों से उसकी स्थिति देख आया है। फिर भी उसने आज्ञा का पालन किया। भभूत खाने के कुछ देर बाद उसकी हालत में सुधार होने लगा। तीसरे दिन वह स्वयं ही महाराज से मिलने के लिये आया।

इन्हीं दिनों उज्जैन में कुम्भ मेला आरम्भ हुआ। इष्ट से अनुमति लेकर आप यहाँ आये। प्रत्येक कुम्भ में दानी सेठ पुण्य प्राप्त करने के लिए संन्यासियों को भोज देते हैं, जिसे भण्डारा कहा जाता है। आप साधुओं के साथ एक भण्डारे में चल पड़े। अचानक बीच रास्ते में आपका मन बिगड़ उठा—"क्या यहाँ भोजन की कामना से आया हूँ?" यह विचार मन में आते ही आप तुरन्त क्षिप्रा नदी की ओर चल पड़े। वहाँ एक जगह बैठ कर अपने आप बोल उठे—"भगवान् को भोजन देना होगा तो यहीं देगा वर्ना मैं किसी के यहाँ नहीं जाऊँगा।"

तीन दिन आप अनाहार उसी स्थान पर बैठे रहे। चौथे दिन एक महात्मा आपके पास से गुजरते हुए बोले—"यहीं बैठे रहो। लक्ष्मी मिलेगी।"

कुछ देर बाद एक माताजी भोजन लेकर आयीं। महाराज को खिलाने के बाद वह चुपचाप खड़ी रहीं। यह देख कर परमानन्द ने पूछा—"माँ, अब क्यों खड़ी हो?"

माताजी ने कहा—"मैं एक महात्माजी के लिए भोजन लेकर जा रही थी, अचानक न जाने कौन कह उठा कि सामने वृक्ष के नीचे जो सन्त बैठे हैं, उन्हें खिला दो। इनकी सेवा करो, आप सन्त हैं। मैं अभी तक यह नहीं समझ सकी किसने और क्यों मुझे यह आज्ञा दी?"

परमानन्द ने कहा—"यह सब भगवान् की लीला है, माँ। मैं भूखा था, भोजन मिल गया। मुझे सेवा की जरूरत नहीं। अब तुम अपने घर चली जाओ।"

उज्जैन से आप वापस चल पड़े। रास्ते में गृह नगर का स्टेशन आया। अचानक इष्ट ने आदेश दिया—"नीचे मत उतरना।" लेकिन आप इष्ट की आज्ञा की उपेक्षा कर नीचे उतर आये। तभी इष्ट ने आपको फटकारा—"तुम साधु नहीं हो, घर चले जाओ।" इस आदेश के बाद ही आपके हृदय-प्रदेश से एक प्रकाश निकल कर अन्तरिक्ष में विलीन हो गया।

इस समय आपकी स्थिति मणिहीन सर्प की तरह हो गयी। इतने दिनों की साधना सामान्य अवज्ञा करने के कारण निष्फल हो गयी। लगातार कई दिनों तक आप इष्ट से प्रार्थना करते रहे, क्षमा माँगते रहे, पर कोई लाभ नहीं हुआ।

इस घटना के बाद आप लगातार डेढ़ वर्ष तक कठोर तपस्या में निमग्न हो गये।

आपने यह निश्चय कर लिया कि भविष्य में कभी जन्मभूमि नहीं जाऊँगा। जब कभी शिष्यों के बीच यह प्रसंग छिड़ जाता, तब आप कहते—"साधु होना और मरना बराबर है। दुनिया में सभी हैं, पर घरवालों के नाम पर कोई नहीं।"

कुछ दिनों बाद आपने निश्चय किया कि अपनी जन्मभूमि से इतनी दूर चला जाऊँ जहाँ कोई परिचित भी न मिले। विभिन्न शहरों में घूमते हुए आप कश्मीर चले आये। कश्मीर में उन दिनों भयंकर सर्दी थी। आपके पास पर्याप्त वस्त्र भी नहीं थे। आप सोचने लगे कि आगे क्या करूँ? एकाएक इष्ट से आदेश मिला—"यहाँ से तुरन्त रवाना हो जाओ और सीधे चित्रकूट चले जाओ।"

आप वहाँ से चित्रकूट चले आये। कुछ दिनों तक आप यहाँ रह कर भजन करते रहे। एक दिन पुन: आदेश मिला—"अब अनसूया आश्रम में जाकर स्थायी रूप से भजन करो। वहीं तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी।"

× × ×

आपके अनसूया आश्रम आने का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। इष्टदेव के अनुसार आप यहीं तपस्या करने लगे। भोजन के अभाव में आपका स्वास्थ्य खराब होने लगा। पन्द्रहवें दिन आप कह बैठे—"जब यह शरीर ही नहीं रहेगा तो भजन कौन करेगा? पता नहीं क्यों इस उजाड़ खण्ड में ला पटका है।?"

इतना कहने पर आपको आदेश मिला—"कल से खाद्य-सामग्री ग्रहण कर सकते हो। प्रबन्ध कर दिया जायेगा।" दूसरे दिन आपने देखा कि सीढ़ियों पर खाद्य-सामग्री रखी है। आप नित्य उसे ग्रहण करने लगे। अनसूया आश्रम घोर जंगल में होने के कारण यहाँ डाकुओं का गिरोह बेखटक विचरण करता था। तीर्थयात्री कभी नहीं आते थे। जंगली जातियाँ लकड़ी, शहद आदि की तलाश में गिरोह के रूप में आती थीं। सारे इलाके में हिंस्र पशुओं का बोलबाला था। एक दिन आप उत्सुकतावश ऊपर सिद्ध बाबा द्वारा बनायी गयी एक कुटिया में गये तो देखा—वहाँ खून, मांस के लोथड़े और अनेक हड्डियाँ हैं। आप सोचने लगे कि यह डाकुओं की देन है या जंगली जानवरों की। एक दिन इसका पता चल गया। उस कुटिया में एक चीते को जाते देख आपने समझ लिया कि यही चीता अपनी खाद्य-सामग्री यहाँ ले आता है। आप अपने आसन से उठे और उस कुटिया से सारी सामग्री उठा कर बाहर फेंक दी। इसके बाद से वहाँ चीते का आना बन्द हो गया।

आप जिस स्थान पर आसन लगाकर साधना करते थे, ठीक उसी के नीचे नदी किनारे एक दिन कई डाकू आये। वे वहाँ बैठ कर लूट के माल का बँटवारा करने लगे। आपस में बातचीत करते समय एक डाकू की नजर आप पर पड़ी तो उसने कहा—"अरे, यहाँ यह बाबा कब से आकर रहने लगा?"

"रहने दो। अपना क्या जाता है।"

वे पीने के लिए शरबत बना रहे थे। उनमें से एक ने कहा—"एक गिलास शरबत बाबाजी को दे आओ।"

दूसरे ने कहा—"तुम्हें गरज हो तो जाओ। मैं नहीं जाऊँगा।"

सिफारिश करने वाला एक गिलास शरबत लेकर आपके पास आया तो आपने कहा—"मैं चोरी की रकम का शरबत नहीं पीता।"

इतना सुनना था कि एक डाकू लाठी लेकर नीचे से ऊपर आपको मारने के लिये आया। शरबत देने वाले डाकू ने उसकी लाठी पकड़ ली। उसने कहा—"हमारा काम था पूछना। अगर बाबा नहीं पीना चाहते तो इसमें नाराज क्यों होते हो?"

मारने वाले ने कहा—"हमें चोर कह रहा है।"

दूसरे दिन शरबत देने वाला डाकू आया और कहा—"महाराज, हम लोग अपराधी हैं। कल हमसे भूल हो गयी। हमें क्षमा कर दें।"

—"बात क्या है जो सवेरे-सवेरे क्षमा माँगने आ गये?"

—"मेरा जो साथी आपको मारने को तैयार हुआ था, वह यहाँ से जाते ही बीमार हो गया। स्थिति ठीक नहीं है। मेरा विश्वास है कि आपके साथ अभद्रता करने के कारण वह बीमार हो गया है। आप उसे क्षमा कर दें।"

परमानन्दजी ने कहा—"ले, यह विभूति ले जाकर उसे अभी खिला दे। वह ठीक हो जायेगा।"

कुछ दिनों बाद आपको मारने वाला डाकू आया और अपने कुकृत्य के लिये आपसे क्षमा माँगने लगा। बाद में उसने प्रतिज्ञा की कि भविष्य में डकैती नहीं करेगा। इस घटना का प्रभाव उसके साथियों पर भी पड़ा। आगे चलकर उन लोगों ने डाका डालना बन्द कर दिया।

चित्रकूट के आसपास कोल-भीलों की बस्ती है। जंगली जातियाँ सन्तों का महत्त्व नहीं समझतीं। एक बार कुछ कोल-भील शहद की तलाश में आश्रम के पास आ गये। इन्हें देखते ही परमानन्दजी ने कहा—"आश्रम के समीप शहद मत तोड़ो।"

वे लोग कुछ दूर आगे बढ़ कर एक पेड़ पर चढ़ने लगे। जो व्यक्ति बाँस लेकर चढ़ रहा था, सहसा उसमें आग लग गयी। उसे चिल्लाते देख दूसरा उसे बचाने के लिए ऊपर चढ़ने लगा तो न जाने कहाँ से एक साँप फन उठाये निकल आया। इस आकस्मिक विपदा को देखते ही वह नीचे कूद गया और ऊपर वाला भील स्वतः गिर पड़ा। एक के बाद दूसरी दुर्घटना देख कर सभी डर गये। कुछ दूर आगे जाकर पुनः तीसरा व्यक्ति एक पेड़ पर चढ़ने लगा। कुछ ऊपर चढ़ते ही उसका पैर फिसल गया।

नीचे गिरते ही वह तुरन्त मर गया। अब कोल-भील बुरी तरह भयभीत हो उठे। अपने मृत साथी की लाश उठा कर गाँव की ओर चल पड़े। उनमें से एक व्यक्ति के मन में यह सन्देह हुआ कि बाबा के मना करने पर भी हम लोगों ने उनकी बात नहीं मानी। मुमकिन है कि उन्होंने कुछ जादू किया हो।

दूसरे दिन वह गाँव के कुछ लोगों को साथ लेकर आया और परमानन्दजी से क्षमा माँगने लगा। परमानन्दजी ने कहा—"घबराने की कोई बात नहीं है। अब कुछ नहीं होगा।"

इस घटना के कारण कोल-भीलों में आतंक फैल गया। जो लोग आपको उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे, वे अब श्रद्धा-भक्ति करने लगे। परमानन्दजी को प्रसन्न करने के लिए लकड़ी तथा अन्य आवश्यक सामग्री ले आते थे। उनके आश्रम के निर्माण में सहयोग दिया। अनसूया के बाबा जादू जानते हैं, यह अफवाह तेजी से फैल गयी।

ठीक इन्हीं दिनों एक युवा ब्रह्मचारी सत्य-शान्ति की तलाश में चित्रकूट आया। यहाँ कुछ दिन रहने के बाद अयोध्या चला गया। वहाँ भी मन चंचल बना रहा। एक दिन उसे स्वप्न में आदेश मिला—"तुम जिस शान्ति की खोज में हो, वह तुम्हें अनसूया आश्रम में मिलेगा।" उधर परमानन्दजी को आदेश मिला—"एक युवा साधक आपकी शरण में आ रहा है, उसमें योगैश्वर्य के लक्षण हैं, उसे ब्रह्मविद्या का उपदेश दीजिये।"

कई दिनों की यात्रा के बाद उक्त युवा ब्रह्मचारी परमहंस परमानन्दजी के आश्रम में आया। उसने ज्योंही साष्टांग प्रणाम किया, त्योंही तड़ित् वेग से कोई शक्ति उसके शरीर में प्रवेश कर गयी। ब्रह्मचारी का चेहरा, हृदय सब कुछ बदल गया। यही ब्रह्मचारी सच्चिदानन्द परमानन्दजी के प्रथम शिष्य हुए। आगे चलकर आप महाराज की आज्ञानुसार धारकुण्डी आश्रम आये जहाँ महाभारतकाल में पाण्डव लोग अज्ञातवास करते रहे।

परमानन्दजी ने धीरे-धीरे वहाँ एक आश्रम स्थापित कर लिया। उस आश्रम का नाम 'परमहंस आश्रम' रखा गया। परमानन्दजी के निकट कुत्ते, बिल्लियाँ और सभी हिंसक जन्तु निडर होकर आते थे। आश्रम में एक पालतू तोता था, जिसे 'राम-राम' कहना सिखाया गया था।

एक दिन तोते को गोद में लेकर उस पर हाथ फेर रहे थे। सहसा उन्हें लगा कि तोते की जीवन-लीला समाप्त होने वाली है। आपके मन में यह विचार आया कि देखूँ कैसे यह मरता है। तभी दूर किसी वृक्ष से खाँसने की आवाज आई। उस समय आपके निकट कई भक्त तथा शिष्य बैठे थे। पुनः वही आवाज नदी के उस पार से आयी। थोड़ी देर बाद यह आवाज चारों ओर से आने लगी। आपके पास बैठे लोग शंकित हो उठे।

परमानन्द ने कहा—"यह यमराज है। आप लोग अपने-अपने आसन पर बैठे रहें। चिन्ता न करें।"

इतना कह कर वे तोते को लेकर कमरे के भीतर चले गये और भजन करने लगे। अर्द्धरात्रि के समय अचानक नींद उचट गई तो आपने टार्च जलाकर देखा—एक नेवला कमरे में चक्कर काट रहा है। तुरन्त आपने उसे दुत्कार दिया और तोते के पास पहुँचे। तोते को जीवित देख प्रसन्न हो उठे। इष्ट ने संकेत दिया कि संकट टल गया। दूसरे दिन जब तोता अपने आप 'सीताराम-सीताराम' कहने लगा तो आप बिगड़ते हुए बोले—"साले, कल चुप क्यों रहा? कल यही नाम लेता तो संकट टल जाता।"

× × ×

एक बार आवश्यक कार्य के लिए परमानन्दजी के हस्ताक्षर की आवश्यकता हुई। आपने कहा—"मैं कभी स्कूल नहीं गया, हस्ताक्षर कैसे करूँगा?"

शिष्यों ने 'परमानन्द' शब्द लिख कर उस पर बार-बार कलम चलाने को कहा। तीन दिन श्रम करने के बाद आप हस्ताक्षर कर सके। यह दृश्य देख कर एक भक्त ने पूछा—"महाराजजी, आप पढ़े-लिखे नहीं हैं, फिर कैसे महाभारत, रामायण, गीता, वेदांत, दर्शन आदि विषयों पर वार्ता करते हैं?"

परमानन्दजी ने कहा—"अरब के हजरत मुहम्मद कहाँ किस स्कूल में पढ़े थे? कबीर ने अपने बारे में कहा है—'मसि कागद छुयो नहीं, कलम गह्यो नहीं हाथ।' गुरु नानक को किस शिक्षक ने पढ़ाया था? मीरा किस विश्वविद्यालय में पढ़ने गयी थी? रामकृष्ण परमहंस या हरिहर बाबा कब पढ़ने गये थे?"

महाराजजी के इन प्रश्नों का जवाब भक्त नहीं दे सका। माकूल जवाब पाकर वह चुप हो गया।

परमानन्दजी ने अनसूया आश्रम को तीर्थ का रूप दिया, जबकि इसके पूर्व यात्री यहाँ नहीं आते थे। यह भी सम्भव है कि अत्रि तथा अनसूया देवी के कारण यह स्थान सिद्धों की भूमि बन गयी हो। दोनों ही एक-दूसरे के पूरक प्रमाणित हुए। अब निरन्तर भक्त तथा दर्शनार्थी आने लगे।

एक दिन एक भक्त ने प्रश्न किया—"महाराजजी, सुना है कि कल्कि अवतार हो गया है।"

परमानन्दजी ने कहा—"वास्तविक अवतार से मानव का कल्याण होता है, पर हमारे यहाँ प्रतिवर्ष कई-कई अवतार जन्म लेते हैं। अभी कुछ वर्ष पूर्व मानिकपुर (बाँदा) में एक नौ वर्ष की लड़की का पेट फूलने लगा तो लोगों ने प्रचारित किया कि इसके पेट से कल्कि अवतार होगा। लड़की को देखने के लिए भीड़ आने लगी। बढ़ती भीड़ को देख कर शासन का माथा ठनका। एक दिन पुलिस आयी। पुलिस को देख

कर जनता बिगड़ उठी। पुलिस ने लोगों को समझाया कि यह नौकरी का सवाल है। आप लोग चिन्ता न करें। सरकार के आदेश से हम इसे इलाहाबाद ले जा रहे हैं। इसे सही स्थिति में कल वापस लायेंगे।

पुलिस के घेरे में लड़की इलाहाबाद के अस्पताल में आयी। जाँच के बाद डॉक्टरों ने कहा कि मरीज को ठीक समय पर आप लोग अस्पताल ले आये हैं। कुछ दिन बाद लाते तो इसके पेट का ट्यूमर फट जाता। ऐसी हालत में लड़की की मौत निश्चित रूप से हो जाती। इसी प्रकार बाल योगेश्वर के बारे में अफवाह फैली कि वे अवतारी पुरुष हैं, पर जब उन्होंने विवाह कर लिया, तब उनकी माता ने घोषणा की कि यह अवतार नष्ट हो गया। अब मेरा दूसरा लड़का अवतार है। धन्य है अवतार-प्रसविनी माता। इसी प्रकार जिसमें जरा-सा चमत्कार मालूम हुआ कि वह अवतार हो गया। गीता में अर्जुन ने श्रीकृष्ण से इसी प्रश्न को पूछा था—"भगवान्, आपका जन्म तो अब हुआ है और सूर्य तो काफी प्राचीन है, फिर कैसे मान लूँ कि आपने इस योग को सूर्य से कहा है?" श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—'अर्जुन, तेरे-मेरे अनेक जन्म हो चुके हैं, जिसे तू नहीं जानता, पर मैं सब जानता हूँ। मैं अव्यक्त आत्मा, विनाशरहित, सम्पूर्ण भूत प्राणियों में, स्वर से प्रवाहित होने पर भी आत्म-माया के द्वारा, अपनी प्रकृति को अधीन करके प्रकट होता हूँ।' जब भगवान् अवतार के बारे में यह कहते हैं, तब मानव अपने को अवतार कहे तो वह क्या हो सकता है?"

परमानन्दजी के स्वभाव में कई विशेषताएँ थीं। अनसूया आश्रम में अगर कोई उनका दर्शन करने आ रहा होता तो पहले से ही भाँप लेते थे। कहते थे—"खड़कत हौ। कोई आ रहा है।" इसका अर्थ यह होता कि कोई गाड़ी से आ रहा है। इस प्रकार पैदल आने वाले के बारे में पूर्व सूचना दे देते थे—"कोई सार आवत हौ। अब ओनके खायेके दऽ, सूतैके जगह दऽ।"

महाराजजी के पास बैठे लोगों को आश्चर्य होता कि आसन पर बैठे-बैठे महाराज आने वाले के बारे में कैसे जान लेते हैं। कुछ देर बाद मोटर या पैदल आने वाला जब आश्रम में आ जाता, तब लोग सोचते कि महाराजजी आगमजानी हैं। महाराजजी में एक खूबी यह थी कि वे भक्तों के लिए साबुन, तेल, दन्त-मंजन, ब्रश, कंघी, आईना आदि की व्यवस्था रखते थे। इन सामग्रियों का उपयोग आश्रमवासी नहीं करते थे। भक्तों के भोजन के प्रति उनका ध्यान रहता था। जब लोग खाने बैठते तब स्वयं आकर कहते—"अरे, यह क्या? इनकी दाल में घी दो। आज जब खिचड़ी बनी है तो अचार देना चाहिए। खिचड़ी के चार यार, दही, पापड़, घी, अचार। ये लोग शहरी बाबू हैं।" इसके बाद स्वयं अपने हाथ से मिष्टान्न परोसते थे। लोगों के ना-ना करने पर भी पत्तल पर डाल देते थे। इस परम्परा का पालन आज भी स्वामी भगवानानन्द करते हैं।

दूसरी ओर शिष्यों के प्रति उनका व्यवहार कठोर होता था। अगर किसी को

भोजन पर टूटते देखते तो व्यंग्य करते हुए कहते—"आन का आटा, आन का घी, मजा उड़ावें बाबाजी। अरे मूर्खों, साधुओं को अल्पाहारी होना चाहिए। दो कौर कम खाना चाहिए। अगर साधना करनी है तो कायदे से करो वर्ना बिस्तर लेकर गोल हो जाओ।"

अनसूया आश्रम में एक परम्परा का पालन कड़ाई से होता है। कई मन्दिर, आश्रम के रहते हुए भी यहाँ एक भी भिखमंगा नहीं है। अगर कभी किसी को भीख माँगते देखा गया तो तुरन्त पकड़ कर पूछा जाता है—"भीख क्यों माँग रहे हो? पेट के लिए? भोजन के लिए? यही न? आओ, चलो। हम तुम्हें भोजन देंगे, वस्त्र देंगे। तुम्हें काम करना पड़ेगा और भजन भी।" नतीजा यह होता है कि कपटी भिखमंगे भाग जाते हैं। प्रतिवर्ष गुरूपूर्णिमा के दिन कई हजार व्यक्ति भोजन करते हैं। पता नहीं, सारी सामग्री कहाँ से आती है। कभी कोई भूखा नहीं जाता। प्रत्येक दर्शनार्थी को प्रसाद अवश्य दिया जाता है।

आश्रम में हर प्रकार के दर्शनार्थियों को देख कर एक बार एक भक्त ने प्रश्न किया—"महाराज, हिन्दू-धर्म में बड़ी रूढ़ियाँ हैं। क्या सनातन-धर्म का यही स्वरूप है?"

परमानन्दजी ने कहा—"प्रत्येक धर्म में समय-समय पर भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। जब वह विपरीत दिशा में जाने लगता है, तब राम, कृष्ण, बुद्ध, शंकराचार्य, कबीर, नानक आदि महापुरुषों का अवतरण होता है जो सन्तप्त मानव को नयी दिशा देते हैं। वास्तव में लोग यह नहीं जानते कि सनातन-धर्म क्या है? उदाहरण के लिए देखो, कोई पीपल की पूजा करता है, तो कोई भूत-प्रेत की। दोनों ही उसे सनातन-धर्म के अन्तर्गत समझते हैं। हमारे यहाँ तैंतीस करोड़ देवी-देवता हैं। पता नहीं और भी कितने हो गये होंगे। भूइयाँ रानी, सन्तोषी माता जैसी देवियाँ आ गयीं। चित्रकूट में लोमड़ी के बिल की पूजा कोल-भील करते हैं। इसी प्रकार नाग-पूजा, बैल-पूजा की परम्परा है। महाराष्ट्र में कुत्ते की पूजा होती है। लाखों रुपया लगाकर वहाँ एक मन्दिर बनवाया गया है। गुजरात में चुहिया देवी का एक मन्दिर है। दरअसल शिक्षा के अभाव के कारण यह दोष उत्पन्न होता है। इन्हीं कमजोरियों के कारण हम अरब वालों के दास हुए। धर्म-रक्षा के नाम पर न जाने कितने लोग मुसलमान बन गये। जो लोग मुसलमान बने, उन्होंने बदले की भावना से काफी जुल्म ढाया। क्या हमारा सनातन-धर्म इतना कमजोर है कि एक टुकड़ा रोटी, एक घूँट पानी से नष्ट हो जाता है। वास्तव में धर्म के नाम पर यह रूढ़ियाँ उत्पन्न हुई हैं। हमारी इस कमजोरी का लाभ मुसलमानों तथा ईसाइयों ने उठाया। यह मत सोचो कि ये रूढ़ियाँ वर्तमान काल की देन हैं। कृष्ण के युग में भी यह दोष था। अज्ञान ही इसका मूल कारण है।"

× × ×

महात्माओं के पास आर्त-पीड़ित व्यक्ति अपने कष्ट के निवारण के लिए आते रहते हैं। दयावश उनके कष्टों को वे दूर करते हैं। लेकिन ईश्वर-प्रदत्त कर्म में हस्तक्षेप करने के कारण उनके कष्टों को स्वयं झेलने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

एक बार परमहंसजी पीड़ित हो गये। अपने इष्ट से उन्होंने पूछा—"जब मेरी निवृत्ति हो गयी है, तब यह बुखार कैसे आ गया?"

तत्काल उत्तर मिला—"दूसरों को स्पर्श कर उनके कष्टों को दूर करते हो तो उनके दूषित संस्कारों को स्वयं ग्रहण करते हो। ऐसी हालत में उनके भोग को भोगना ही पड़ेगा।"

अक्सर जब कोई शिष्य इस बारे में प्रश्न करता तो उसे यही उत्तर देते—"तुम लोगों के पाप का भोग मुझे भोगना पड़ता है।"

सच्चिदानन्द ब्रह्मचारी को दीक्षा देने के बाद से अक्सर लोग महाराजजी के पास शिष्य बनने के लिए आते थे। श्मशान वैराग्य वालों को वे तुरन्त पहचान लेते थे। इसी प्रकार एक बार एक आदमी शिष्य बनने के लिए आया। वह आश्रम के चारों ओर झाड़ू लगा रहा था। आसन के नीचे बारजे पर बैठे कुछ लोग गाँजा पी रहे थे। इन्हें देख कर किसी ने कहा—"कहिये महाराजजी, गाँजे का दम लगाइएगा?"

इस आह्वान को सुनते ही आप झाड़ू को एक किनारे फेंक दौड़ पड़े। वे स्वयं भी गाँजे के शौकीन थे। महाराजजी ऊपर से यह दृश्य देख रहे थे। तुरन्त वहीं से बोले—"गँवार कहीं का, बड़ा आया है साधु बनने। खाने को भोजन और पीने को गाँजा मिले तो सारी दुनिया साधु बन जाय। आये हैं यहाँ त्याग सीखने और चिलम देखते ही झपट गये। जाओ, घर जाकर बाल-बच्चों की सेवा करो। अभी साधु बनने का समय नहीं आया है। जब आयेगा, तब भगवान् स्वतः तुम्हारी सहायता करेंगे।"

शिष्य बनाने के पहले महाराजजी बड़ी कड़ी परीक्षा लेते थे। अगर कोई अधिक तंग करता तो कहते—"संसार में अनेक सन्त-महात्मा भरे पड़े हैं। वहाँ जाकर शिष्य बनो।" वर्तमान पीठस्थविर स्वामी भगवानानन्द की भी कठोर परीक्षा ली गयी थी। समय-समय पर वे महाराजजी के बारे में कहते रहते हैं।

परमानन्दजी के एक शिष्य हैं—स्वामी अड़गड़ानन्द। उन्होंने अपने गुरुदेव के बारे में विस्तार से लिखा है। उनके गुरुदेव बराबर कहा करते थे—"घोड़े और आदमी के दिन हमेशा एक-से नहीं रहते। बदलते देर नहीं लगती।" इतना कहने के बाद वे विभूति देते और फिर छड़ी से मारते। यह छड़ी आशीर्वाद का प्रतीक होती थी। इसे इष्ट की आज्ञा से लगाते थे। एक बार मैंने उनसे पूछा कि आप छड़ी क्यों मारते हैं। उन्होंने कहा—"भगवान् जब निवृत्ति देते हैं, तब हथियार भी देते हैं। भगवान् ने निवृत्ति के साथ यह छड़ी देते हुए मुझे कहा कि यदि दाहिने हाथ से किसी को मारोगे तो उसकी

फाँसी की सजा कट जायेगी। भले ही कल ही सजा क्यों न सुनायी गयी हो। अगर बायें हाथ से मारोगे तो उसकी दुर्गति होगी।''

दो घटनाओं की याद आज भी ताजा है। एक आर्य-समाजी पण्डित महाराज के पास आये और देर तक धार्मिक विषयों पर बहस करते रहे। बहस ने क्रमश: विवाद का रूप ग्रहण कर लिया। एकाएक महाराजजी ने उन्हें पास बुलाया। उनके सिर पर बायाँ हाथ फेरते हुए कहा—''अब आगे की बात कहिये।'' तुरन्त उनकी बुद्धि गोल हो गयी। दो घण्टे तक वह जड़वत् बैठा रहा। बाद में सोने चला गया।

दूसरे दिन प्रात:क्रिया से निवृत्त होकर महाराजजी के पास आया। उन्होंने कहा—''महाराजजी, आप प्रत्यक्षदर्शी हैं। योगी हैं। हम लोगों के पास पुस्तकीय ज्ञान है। आपसे हमारी तुलना नहीं हो सकती। पता नहीं, कल क्या हो गया था कि आपसे विवाद करता रहा।''

एक बार मुझे दाहिने हाथ की छड़ी से दो बार उन्होंने मारा। इसका कारण पूछने पर उन्होंने जो कुछ कहा, उस पर विश्वास नहीं हुआ। कुछ दिनों बाद मैं बीमार हो गया। उन्हीं दिनों चार परिचित व्यक्ति मेरे पास आये और अपने साथ जंगल में ले गये। वहाँ एक कमरा था, जिसमें अनेक अस्त्र थे। उनसे प्रकाश निकल रहा था। कमरे के भीतर जाते ही दरवाजा अपने-आप बन्द हो गया। चारों व्यक्तियों ने झपट कर अस्त्र उठा लिये और कहा—'मार डालो इसे।' इस घटना के कारण मैं बुरी तरह डर गया। प्राणों का मोह किसे नहीं होता। मैं उनके निकट गिड़गिड़ाने लगा। प्राणों की भीख माँगने लगा, पर उन पर कोई असर नहीं हुआ। सहसा उसी समय न जाने कैसे महाराजजी की छड़ी की याद आ गयी। मुझमें साहस उत्पन्न हुआ। मैंने कहा कि तुम सब मेरा कुछ नहीं कर सकते। इतना कहते ही वे सब पीछे हटने लगे। शस्त्रागार भी लुप्त हो गया। यहाँ तक कि मेरी बीमारी भी दूर हो गयी।

इसी को कहते हैं—प्रारब्ध का तमाशा। प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्म का फल भोगना पड़ता है। कुछ इस जन्म में तो कुछ अगले जन्म में। उसका उदाहरण महाराज का एक शिष्य था।

सहसा एक दिन न जाने क्यों उसके मन में आया कि महाराजजी से कहा—''महाराजजी, मेरा मन गया जाने को करता है।''

महाराजजी ने कहा—''गया-वया में कुछ नहीं है। तुम भगवान् के चिन्तन में मन लगाओ। सब ठीक हो जायेगा।''

दो माह बाद पुन: उसने कहा—''महाराजजी, आज्ञा दें तो एक बार गया हो आऊँ। पता नहीं क्यों, भजन करने बैठता हूँ तो गया की याद आती है।''

महाराजजी ने सोचा—''आखिर यह बार-बार गया जाने को क्यों सोचता है?

चिन्तन करने से ज्ञात हुआ कि गया के किसी सेठ का कुछ चना इस पर बकाया है। चने के वही दाने इसे खींच रहे हैं। परमानन्दजी समर्थ योगी थे। गया के उस सेठ के मन में प्रेरणा उत्पन्न कर दी ताकि शिष्य को जाने न पड़े। उधर सेठ ने एक दिन सोचा—एक बार पवित्र चित्रकूट भूमि का दर्शन कर आऊँ। वह अनसूया आश्रम आया। महाराजजी को प्रणाम करने के बाद जेब से कुछ रकम निकाल कर उनके पैरों के पास रखी तभी उसकी जेब से चने के कुछ दाने गिर पड़े।

चने देखते ही महाराज चौंक पड़े। पूछा—"सेठ, कहाँ से आ रहे हो?"

सेठ ने कहा—"गया शहर से।"

महाराज ने कहा—"ठीक है। चने के सभी दाने मुझे उठा कर दे दो।"

सेठ ने कहा—"यह तो जमीन पर गिर गये हैं। दूसरा मँगवा देता हूँ।"

महाराज ने कहा—"नहीं, नहीं। मुझे इन्हीं चनों की जरूरत है।"

सेठ ने चने उठा कर दिये और अपने गन्तव्य स्थल की ओर चला गया। शिष्य के आने पर उसे उक्त चने के दाने देने के बाद महाराज ने कहा—"इसे अभी खा ले।"

चने खाने के बाद फिर कभी उसने गया जाने का नाम नहीं लिया। पाँच-छः माह बाद एक दिन महाराजजी ने उससे कहा—"बेटा, तू कई बार गया जाने को कह रहा था। इस बार चले जाओ। किराये के पैसे मुझसे ले लेना। मेरे कहने से एक बार हो आओ।"

शिष्य ने कहा—"गुरुदेव, पता नहीं, क्यों अब गया जाने का मन नहीं करता।"

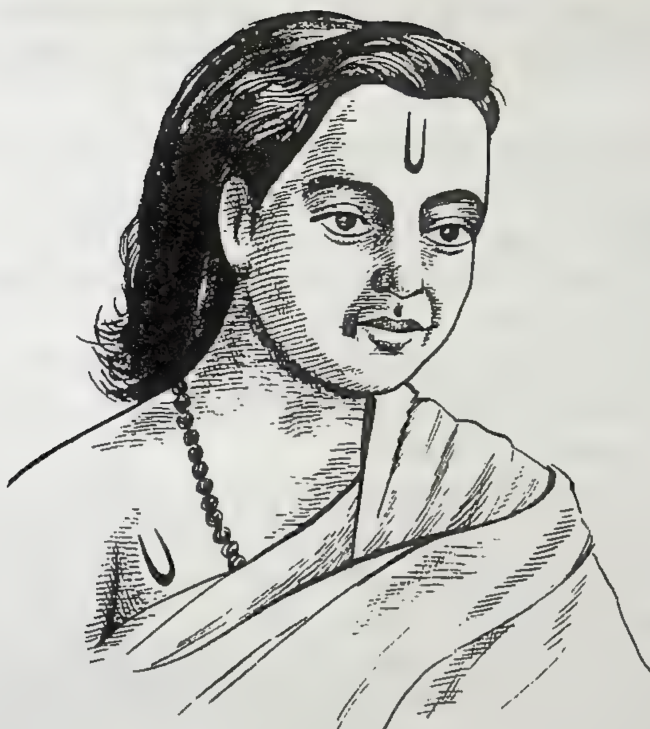
वास्तव में संस्कार बड़ी चीज है और योगी पुरुष चिन्तन के माध्यम से भूत-भविष्य की बातें जान लेते हैं। जो लोग निवृत्त हो जाते हैं, उनमें किसी बात की आकांक्षा नहीं रहती।

बातचीत के सिलसिले में एक बार उन्होंने अपने शिष्य से कहा था—"मेरी मौत नहीं होगी। मैंने काल को जय कर लिया है। मेरी मृत्यु तभी होगी, जब किसी शिष्य का शब्द-बाण मेरे हृदय को आघात पहुँचायेगा।"

महाराजजी का अनुमान सही था। आखिर एक दिन एक शिष्य की बातों से उन्हें गहरी चोट लगी। इसे उन्होंने शिष्य के सामने प्रकट कर दिया। इस घटना के दूसरे दिन सन् १९६९ ई० में उन्होंने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

परमहंस आश्रम में उनके गुरुदेव सत्संगी महाराज के ठीक सामने उनकी समाधि है, जहाँ सभी दर्शनार्थी जाते हैं।





६

सन्त ज्ञानेश्वर

पूना शहर से १५ मील दूर इन्द्रायणी नदी के किनारे आलन्दी नामक गाँव है, जहाँ सिद्धेश्वर मन्दिर है, जिसमें नित्य श्रद्धालु भक्त नदी में स्नान करने के पश्चात् दर्शन के लिये आते हैं।

श्रीमती रुक्मिणी बाई नित्य की तरह अपने पड़ोस में रहने वाली सहेली सुनन्दा नायक के साथ दर्शन करने आयी थी। परिक्रमा समाप्त करने के बाद उसकी नजर एक ओर बैठे एक सौम्य सन्त पर पड़ी जो ध्यान लगाये एकटक मन्दिर की ओर देख रहे थे।

एक अनजाने आकर्षण से रुक्मिणी बाई ने सन्त के समीप जाकर जमीन से माथा टेक कर प्रणाम किया। सन्त ने प्रसन्न मुद्रा में कहा—"सौभाग्यवती हो बेटी। दूधो नहाओ, पूतों फलो।"

सहसा रुक्मिणी बाई की आकृति पर विषाद की रेखाएँ प्रस्फुटित हो गयीं। सुनन्दा ने प्रणाम करते हुए कहा—"ऐसा आशीर्वाद किस काम का जो फलदायक न हो।"

सन्त ने विस्मय से पूछा—"क्यों बेटी, मेरा आशीर्वाद फलदायक क्यों नहीं होगा?"

सुनन्दा ने तेज स्वर में कहा—"जो नारी सुहागिन होती हुई विधवा-सा जीवन व्यतीत कर रही हो, वह भला दूधो नहाओ, पूतों फलो जैसा आशीर्वाद लेकर क्या करेगी। आप अपना आशीर्वाद लौटा लीजिये।"

अब सन्त तन कर बैठ गये। कुछ क्षण तक गौर से रुक्मिणी बाई की ओर देखने के बाद उन्होंने पूछा—"आखिर बात क्या है? मैं प्रत्यक्ष रूप से देख रहा हूँ कि यह देवी कई सुसन्तानों की जननी होगी।"

सुनन्दा ने कहा—"ऐसा कैसे हो सकता है महाराज? इनके पति लगभग ११-१२ वर्ष हुए तीर्थयात्रा करने काशी गये थे। बाद में पता चला कि वहीं श्रीपादस्वामी सन्त[१] से दीक्षा लेकर संन्यास ग्रहण कर लिया है। संन्यासी व्यक्ति कैसे पुन: गृहस्थ बन सकता है?"

सहसा संन्यासी महाशय की आकृति कठोर हो गयी। प्रश्नसूचक दृष्टि से देखते हुए उन्होंने पूछा—"उसके नाम और रंग-रूप के बारे में कुछ बता सकती हो? मैं यहाँ से काशी जाऊँगा। अगर वह काशी में कहीं होगा तो उसे यहाँ भेज दूँगा, क्योंकि युवा-पत्नी से छल करके संन्यास लेना अपराध है। इससे संन्यास-धर्म नष्ट हो जाता है। साधना निष्फल हो जाती है।"

---

१. हिन्दी, मराठी, गुजराती और बंगला भाषा की अधिकांश पुस्तकों में विट्ठल पन्त के गुरु का नाम श्री रामानन्द स्वामी लिखा गया है। यहाँ तक कि स्वयं रामानन्द सम्प्रदाय के लोग भी यही मानते हैं। लगता है कि किसी लेखक ने भ्रमवश रामानन्द स्वामी का उल्लेख कर दिया होगा, जिसकी नकल सभी करते चले गये।

अधिकांश विद्वानों ने रामानन्द स्वामी का जन्म १२९९ ई० माना है। उनके शिष्य विट्ठल पन्त की मृत्यु १२८३ ई० में हो गयी। विट्ठल पन्त के पुत्र सन्त ज्ञानेश्वर ने २५ अक्टूबर, सन् १२९६ ई० के दिन समाधि ली। ऐसी हालत में विट्ठल पन्त के गुरु रामानन्द स्वामी कैसे हुए?

श्री पुरुषोत्तम यशवन्त देशपाण्डे ने 'ज्ञानदेव' नामक जीवनी में विट्ठल पन्त के गुरु का नाम श्रीपादस्वामी लिखा है जो विश्वसनीय है।

श्री कृ० गो० वानखेड़े गुरुजी ने भी अपनी पुस्तक 'नामदेव' में विट्ठल के गुरु का नाम श्रीपादस्वामी लिखा है, परन्तु आगे पृ० ३३ पर वे लिखते हैं—काशी के स्वामी रामानन्द ने भी इन सन्तों का सत्कार किया। यह अपने-आपमें गलत है, क्योंकि नामदेवजी के साथ यात्रा में निवृत्तिनाथ और ज्ञानदेव दोनों ही गये थे। इनका निधन रामानन्दजी के जन्म के पूर्व हो गया था।

सुनन्दा ने उत्तर दिया—"रुक्मिणी बाई के पति का नाम विट्ठल पन्त है। दुबले-पतले, गोरा रंग है। दाहिने हाथ में एक बार फोड़ा हुआ था, उसका निशान है। बात करते समय नजर नीचे रखते हैं।"

सन्त ने कहा—"तुम चिन्ता मत करो बेटी। काशी जाकर मैं स्वयं तुम्हारे पति की खोज करूँगा। उसे तुम्हारे पास अवश्य भेजूँगा। मेरा आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होगा। तुम एक-दो नहीं, कई सन्तानों की जननी बनोगी और वे स्वनामधन्य होंगे।"

रुक्मिणी तथा सुनन्दा ने एक बार पुनः जमीन से सिर लगाकर प्रणाम किया और फिर वापस चली गयीं।

सन्त अन्य कोई नहीं, स्वयं श्रीपादस्वामी थे। विट्ठल पन्त की रूपरेखा को सुनते ही वे समझ गये कि यह चैतन्य आश्रम ही है, जिसने छल करके उनसे संन्यास लिया है। काशी आते ही एक दिन उन्होंने पुकारा—"विट्ठल, यहाँ आओ।"

इस सम्बोधन को सुनते ही चैतन्य आश्रम चौंक उठा। श्रीपादस्वामी ने अनुभव किया कि उनका सन्देह ठीक था।

चैतन्य आश्रम के पास आने पर उन्होंने कहा—"वत्स, छल करने से साधना क्षतिग्रस्त हो जाती है। भले ही सर्वसाधारण न समझे, पर सर्वशक्तिमान् ईश्वर इसे जान लेते हैं। तुमने मुझे, अपनी पत्नी को, गाँव के निवासियों को धोखा दिया है। संन्यास-ग्रहण करते समय तुमने मुझसे कहा था कि तुम पत्नी-पुत्रहीन हो। गुरु से कपट करते तुम्हें लज्जा नहीं आई?"

विट्ठल को स्वप्न में भी विश्वास नहीं था कि उनके गुरु तीर्थ-दर्शन के सिलसिले में उसके गाँव जायेंगे। वहाँ इनकी मुलाकात रुक्मिणी से हो जायेगी। वे हतप्रभ होकर गुरु के कटु वचन चुपचाप सुनते रहे।

विट्ठल को चुप रहते देख श्रीपादस्वामी का क्रोध शान्त हो गया। उन्होंने मृदु स्वर में कहा—"अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है। तुम्हारी पत्नी तुम्हारे लौटने की प्रतीक्षा कर रही है। मेरा आदेश है कि उस देवी को मनोकष्ट मत दो। घर वापस चले जाओ। गृहस्थ-जीवन में भी तुम साधना कर सकते हो। मेरी शुभकामनाएँ सर्वदा तुम्हारे साथ रहेंगी।"

विट्ठल पन्त गुरु की आज्ञा मान कर आलन्दी वापस आ गये। मध्ययुग में ब्राह्मणवाद अत्यन्त कठोर हो गया था। बार-बार मुसलमानों के आक्रमण और अत्याचारों के कारण कर्मकाण्डी पण्डित उदार होने के बदले रूढ़िवादी बनते गये। सारा हिन्दू-समाज इनके बन्धनों में जकड़ता गया। ऐसे माहौल में विट्ठल पन्त ने संन्यास-आश्रम त्याग कर पुनः गृहस्थ-आश्रम को अपनाया।

विट्ठल अपने यहाँ की समाज-व्यवस्था से अपरिचित नहीं थे। वे यह जानते थे

कि यह एक अक्षम्य अपराध है, इसे समाज कभी क्षमा नहीं करेगा। संन्यासी बनने का अर्थ है—समाज तथा परिवार के निकट मृत बन जाना। संन्यासी कभी अपनी जन्मभूमि में वापस नहीं आते।[१]

आलन्दी आते ही उन्हें सारा समाज घृणा की दृष्टि से देखने लगा। वे समाज से बहिष्कृत कर दिये गये। गाँव के अन्तिम छोर पर वे सपरिवार अछूतों-सा जीवन व्यतीत करने को बाध्य हुए।

विट्ठल का वंश असाधारण था। निष्ठावान्, कुलीन ब्राह्मण-परिवार में अध्ययन-चिन्तन बराबर होता है। विट्ठल के पितामह त्र्यंबक पन्त के गुरु नाथ-संप्रदाय के प्रतिष्ठाता गोरखनाथ थे। विट्ठल के पिता तथा माता को नाथ-संप्रदाय के दूसरे गुरु गहिनीनाथ से दीक्षा प्राप्त हुई थी। साधक-परिवार में जन्म लेने के कारण विट्ठल पन्त में बचपन से ही वैराग्य उत्पन्न हो गया था। वे विद्वानों के निकट वेद-शास्त्रों का अध्ययन और विचार-विमर्श करते थे। यहाँ तक कि योग्य गुरु की तलाश में निरन्तर तीर्थयात्रा पर चले जाते थे।

इसी यात्रा के दौरान वे अपनी जन्मभूमि आपेगाँव से आलन्दी आये। यहाँ सिद्धेश्वर मन्दिर में ठहरे। कस्तूरी की गन्ध शीघ्र फैल जाती है। इनके ज्ञान और निर्मल स्वभाव को देख कर सिद्धोपन्त कुलकर्णी आकर्षित हुए। वे इसी प्रकार के युवक की खोज में थे। उन्होंने कल्पना की कि ऐसे व्यक्ति के हाथ अगर अपनी बेटी सौंप दूँ तो गौरव की बात होगी।

एक दिन उन्होंने अपनी इच्छा विट्ठल के सामने प्रकट की। विट्ठल ने सिद्धोपन्त को कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। वास्तव में विट्ठल सर्वदा अपने आत्मचिन्तन में इस प्रकार लीन रहते थे कि उनका ध्यान इन बातों की ओर नहीं जाता था। सिद्धोपन्त ने अनुमान लगाया कि विट्ठल की इच्छा नहीं है।

कई दिनों बाद एक रात को विट्ठल ने स्वप्न में देखा कि स्वयं भगवान् विट्ठल उसे आदेश दे रहे हैं—"यह विवाह तुम कर लो। इससे तुम्हारे वंश का मुख उज्ज्वल होगा।"

दूसरे दिन विट्ठल स्वयं ही सिद्धोपन्त के यहाँ जाकर अपनी स्वीकृति दे आये।

---

१. मनु संहिता के अनुसार संन्यास-ग्रहण करते समय छह अनुष्ठान करने पड़ते हैं—देवार्चना, पितृलोक-अर्चना, ऋषि-अर्चना, अपना श्राद्ध, बीज होम और शिखा-सूत्र त्याग। यह सब करने के बाद गुरु से दण्ड-धारण करते हुए 'तत्त्वमसि'—'अहं ब्रह्मास्मि' या 'अयमात्मा ब्रह्म' कोई भी शब्द जपना पड़ता है।

अपना श्राद्ध करने वाला पुनः जीवित नहीं हो सकता। पति-पुत्र, पत्नी, रिश्तेदार सभी के लिए मृत हो जाना पड़ता है।

सिद्धोपन्त की बेटी रुक्मिणी से उनका विवाह हो गया। देखते ही देखते कई वर्ष बीत गये। इसी बीच विट्ठल के माता-पिता का देहान्त हो गया। आपेगाँव वापस आने के कुछ दिनों बाद विट्ठल की स्थिति चिन्ताजनक हो गयी। सर्वदा पठन-पाठन में लगा रहने वाला व्यक्ति निकम्मा हो गया। अपनी बेटी से यह समाचार पाकर सिद्धोपन्त तत्काल आपेगाँव आकर अपने साथ बेटी-दामाद को लेकर आलन्दी चले आये।

कुलकर्णी का विश्वास था कि यहाँ विट्ठल अपनी गृहस्थी की जिम्मेदारी को समझेगा, पर वे हमेशा पठन-पाठन में लगे रहे। गृहस्थी का मायाजाल उन्हें बाँध नहीं सका।

सहसा एक दिन विट्ठल ने अपनी पत्नी से कहा—"बहुत दिनों से काशी जाने की इच्छा हो रही है। तीर्थयात्रा हो जायेगी और शायद उधर ही कहीं अपनी व्यवस्था करूँगा।"

रुक्मिणी अत्यन्त पतिपरायण स्त्री थी। उसने न तो पति को जाने से रोका और न साथ ले चलने के लिये अनुरोध किया। सहर्ष अनुमति देती हुई बोली—"जल्द वापस आइयेगा।"

काशी आकर विट्ठल पन्त अध्ययन में जुट गये। सौभाग्य से एक दिन श्रीपादस्वामी से मुलाकात हो गई। इनके ज्ञान और साधना से प्रभावित होकर विट्ठल ने संन्यास ग्रहण कर लिया। अपना वास्तविक परिचय गुप्त रखा। संन्यास लेने के बाद विट्ठल का नया नाम चैतन्य आश्रम हुआ। श्रीपादस्वामी स्वयं जगद्गुरु शंकराचार्य की आश्रम-शाखा के संन्यासी थे।

बारह वर्ष के बाद एक दिन पुन: उन्हें अपने गुरु के आदेश से आलन्दी वापस आना पड़ा। विट्ठल पन्त अक्सर सोचते थे कि शायद आगे चल कर गाँव वालों का क्रोध शान्त हो जायेगा और उन्हें अपना खोया हुआ सम्मान फिर प्राप्त हो जायेगा। वे इसी आशा में लम्बी अवधि तक आलन्दी में निवास करते रहे। इस बीच में वे चार सन्तानों के पिता बने।

सन्तानों के नामकरण में उन्होंने अपने ज्ञान का परिचय दिया, जिसका उपयोग अपने परवर्ती जीवन में बच्चों ने किया। 'निवृत्ति' बड़े लड़के का नाम था, जिसका अर्थ है—समाप्ति, छुटकारा, मुक्ति, विश्राम। वे आगे सन्तान नहीं चाहते थे, पर इसके बाद ज्ञानदेव ने जन्म लिया। तीसरा सोपान यानी सीढ़ी और अन्त में आयी मुक्ता।

समाजपतियों की उपेक्षा के कारण विट्ठल का मन आलन्दी से उचट गया। उन्हें तीर्थयात्रा की सनक सवार हुई। रुक्मिणी से अनुरोध करते ही वह भी तैयार हो गयी। कई दिनों बाद विट्ठल सपरिवार नासिक आये। कुशावर्ती में नित्य स्नान करने के बाद त्र्यंबकेश्वर का दर्शन करते थे। इसके बाद ब्रह्मगिरि की फेरी करते थे। भिक्षा में जो कुछ

मिलता, उसी से सन्तोष कर लेते थे। शेष समय अध्यात्म और ब्रह्म-चिन्तन में व्यतीत होता रहा।

दैवयोग से एक दिन दुर्घटना हो गयी, जिसके कारण विट्ठल की जीवन-धारा में अद्भुत परिवर्तन हो गया। उस दिन मन्दिर-दर्शन करने के बाद जब सभी लोग घर वापस जा रहे थे तभी जंगल के भीतर से बाघ के गरजने की आवाज आई। भय से घबरा कर जिसे जिधर मार्ग मिला, उधर भाग निकला। किसी को इतना होश नहीं था कि कौन, कहाँ है, पता लगाता। जंगल से बाहर सुरक्षित स्थान पर आने के बाद विट्ठल को पता लगा कि केवल निवृत्ति को छोड़ कर सभी साथ आ गये हैं।

एक ऊँची चट्टान पर चढ़ कर विट्ठल निवृत्ति को पुकारने लगे। उनकी आवाज जंगल में गूँजती रही, पर दूसरी ओर से कोई आवाज नहीं आयी। यह देख कर अनजानी आशंका से रुक्मिणी रोने लगी। माँ को रोते देख बच्चे भी रोने लगे।

विट्ठल ने कहा—"रोने से वह वापस नहीं आयेगा। लगता है किसी पेड़ पर या किसी गुफा में छिप गया है वर्ना उसकी आवाज सुनाई देती। अब कल सवेरे जंगल में जाकर खोजना पड़ेगा।"

दूसरे दिन सभी लोग निवृत्ति की तलाश में जंगल के भीतर गये। इसी प्रकार तीसरे, चौथे दिन तक लोग खोजते रहे, पर निवृत्ति का कहीं पता नहीं चला। बाद में विट्ठल ने यह सोच कर सन्तोष कर लिया कि भगवान् ने उन्हें किसी पाप का दण्ड दिया है।

आठवें दिन अचानक निवृत्ति वापस आ गया। उसे देखते ही माँ ने कण्ठ से लगाया। पिता ने गोद में उठाया और भाईयों ने प्रणाम किया।

माँ के प्रश्न करने पर निवृत्ति ने बड़ी रोमांचकारी कहानी सुनाई। उसने कहा कि आप लोगों से बिछुड़ने के बाद मैं दायीं ओर अंजनी पर्वत की गुफा की ओर भागा। थोड़ी देर बाद वहाँ एक महात्मा आये और मुझे अपने साथ लेकर भीतर की ओर बढ़े। आगे एक स्थान पर काफी बड़ा घर था। दूसरे दिन मुझे उन्होंने अपने शिष्यों के साथ स्नान के लिए भेजा। स्नान करने के बाद जब मैं वापस आया, तब उक्त महात्मा ने कहा—"निवृत्ति, आज तुम्हारे जीवन का महत्वपूर्ण दिन है। गुरु गोरखनाथ की कृपा से कल तुम्हारा आगमन हुआ और उन्हीं की प्रेरणा से आज तुम्हें दीक्षा दे रहा हूँ। अब यहाँ कुछ दिनों तक आसन, मन्त्र आदि सीखना पड़ेगा। इसके बाद ही तुम घर जा सकोगे। श्रद्धेय गुरुवर गहिनीनाथ मुझे ध्यान, आसन और यौगिक क्रियाओं की शिक्षा देते रहे। आज दोपहर के बाद उनसे अनुमति प्राप्त होने पर मैं चला आया।

"निवृती गयनी कृपा केली पूर्ण।
कुल हे पावन कृष्ण नामे ॥"

गहिनीनाथ का नाम सुनते ही विट्ठल समझ गये कि मेरे माता-पिता के गुरु ने निवृत्ति को अपना मन्त्र-शिष्य बनाया है। उन्हें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि उनका बालक नाथ-संप्रदाय में दीक्षित होने पर भी कृष्ण-भक्त बनता जा रहा है।

बड़े भाई की साधना से प्रभावित होकर ज्ञानदेव ने उनसे दीक्षा ली। ज्ञानदेव से सोपान और मुक्ता ने दीक्षा ली। इस प्रकार विट्ठल की सभी सन्तानें नाथ-सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त हो गयीं।

"गहिनी ने दया केली निवृत्तिनाथा।
बालक असतां योगरूप।
तेथूनी ज्ञानेश पावले प्रसाद।
एकनिष्ठभाव तुकोबा चरणी॥
म्हणी बहिणी लाघलीसे।"

पिता से वेद-उपनिषद्, शास्त्रों का अध्ययन करते हुए लड़के बड़े होते गये। अब विट्ठल ने निश्चय किया कि वंश-परम्परा के अनुसार बच्चों का यज्ञोपवीत होना चाहिए और यह कार्य अपनी जन्मभूमि में जाकर सम्पन्न करना चाहिए। आपेगाँव आकर विट्ठल ने स्थानीय कर्मकाण्डियों से निवेदन किया कि कृपया अब मुझे अपनी जाति में सम्मिलित कर लीजिये। मुझे अपने बच्चों का यज्ञोपवीत-संस्कार करना है। बदले में प्रायश्चित्त के लिए आप लोग जो दण्ड देंगे, उसे मैं स्वीकार करूँगा।

ब्राह्मणों ने धर्म-ग्रन्थों की छानबीन करने के बाद निर्णय दिया—"संन्यास लेने के बाद तुम पुनः गृहस्थ-आश्रम में आये हो। इस प्रकार दोनों आश्रमों को तुमने कलंकित किया है। इसका एकमात्र प्रायश्चित्त है—मृत्यु। यह इसलिए कि भविष्य में तुम्हारी तरह अन्य कोई अपराध करे तो तुम्हारे उदाहरण से उसे शिक्षा प्राप्त हो। अगर हम तुम्हें क्षमा कर देंगे तो भविष्य में लोग तुम्हारी तरह पापाचार करते रहेंगे। इस प्रकार हमारा धर्म, हमारा समाज, नैतिकता आदि नष्ट हो जायेंगे।"

कर्मकाण्डियों के इस निर्णय को सुन कर विट्ठल सन्न रह गये। यह एक ऐसा निर्णय था, जिसे सहज ही स्वीकार कर लेना आसान नहीं था। कई दिनों तक मानसिक यन्त्रणा भोगने के बाद अपनी सन्तानों की मंगल कामना के लिये पण्डितों का निर्णय उन्होंने स्वीकार कर लिया। उन्हें इस बात पर सन्तोष हुआ कि उनके बलिदान के पश्चात् इन निष्पाप बच्चों को उचित सम्मान मिलेगा।

अपने चारों बच्चों को असहाय अवस्था में छोड़ कर एक दिन विट्ठल अपनी पत्नी के साथ चुपचाप चल दिये। कहा जाता है कि प्रयाग में जाकर इन दोनों ने जल-समाधि ले ली।

विट्ठल पन्त का बलिदान तत्कालीन समाज के लिए एक ऐतिहासिक घटना थी,

जिसका दूसरा उदाहरण देना सम्भव नहीं है। प्राचीन आदर्शों की दुहाई देने वाले लोग तत्कालीन समाजपतियों के इस बहशीपन को किस रूप में लेंगे, यह वही जानें।

माता-पिता के चले जाने के बाद चारों बच्चे इतने असहाय हो गये कि इन्हें भीख मिलना कठिन हो गया। न जाने कितने दिन जंगली फल खाते रहे। उपवास इनके जीवन का श्रृंगार बन गया। आखिर इस समस्या के समाधान के लिए ज्ञानदेव ने आगे बढ़ कर आलन्दी के समाजपतियों से प्रश्न पूछा। उन लोगों ने जवाब दिया—"इस बात का निर्णय पैठण के विद्वान् करेंगे। वहाँ के पण्डितों का निर्णय सर्वमान्य होगा।"

पैठण के ब्राह्मणों ने इन्हें दुत्कारते हुए कहा—"संन्यासी के पुत्र के लिए प्रायश्चित्त की आवश्यकता नहीं। अब तुम लोग अपनी शुद्धि के लिए लज्जा त्याग कर गाय, कुत्ते और चाण्डालों को साष्टांग प्रणाम करते रहना। इससे तुम्हारे पाप दूर हो जायेंगे।"

पण्डितों के इस निर्णय को सुन कर निवृत्ति ने कहा—"मैं तो निवृत्ति हूँ, प्रवृत्ति में मेरी तनिक भी आसक्ति नहीं। मैं राजयोगी हूँ।"

ज्ञानदेव ने कहा—"मैं सभी शास्त्रों का ज्ञाता हूँ।"

सोपान ने कहा—"लोगों को भगवत्-आराधना में लगाना मेरा मुख्य कार्य है।"

मुक्ताबाई ने कहा—"मैं तो मुक्ति हूँ।"

इन नन्हें बच्चों के मुख से इस प्रकार की बातें सुन कर पण्डितों का समूह हतप्रभ हो गया। तभी एक पण्डित ने प्रश्न किया—"यह ठीक है कि निर्णय के अनुसार तुम्हारे माता-पिता ने मृत्यु को स्वीकार किया, पर इस बात का तुम्हारे पास क्या प्रमाण है कि तुम लोग शुद्ध हो?"

ज्ञानदेव ने कहा—"हमारा विश्वास है कि हम सभी पूर्ण रूप से शुद्ध हैं। आप कैसा प्रमाण चाहते हैं, आज्ञा कीजिये।"

शुद्धता का प्रमाण क्या हो, इस दिशा में पण्डितों की बुद्धि कुंठित हो गयी। ब्राह्मणोचित सभी कार्यों से ये बालक परिचित थे। उनके मन में केवल इनके प्रति घृणा थी, जिसे वे भुला नहीं पा रहे थे। तभी एक कठबुद्धि वाले पण्डित ने कहा—"तुम्हारी शुद्धि का अर्थ है, भैंस को वेद पढ़ना। क्या सामने खड़ी भैंस के मुँह से वेदमन्त्र का उच्चारण करा सकते हो? यह कार्य तुमसे नहीं हो सकेगा। ठीक इसी प्रकार तुम कभी शुद्ध नहीं हो सकते।"

ज्ञानदेव चुपचाप भैंस के पास जाकर खड़े हो गये। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—"हे ज्ञान के देवता, आप समागत पण्डितों को अपने श्रीमुख से वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हुए यह प्रमाणित कर दें कि हम सब शुद्ध हैं।"

ज्ञानदेव की बातें सुनते ही पण्डितों का समूह अट्टहास कर उठा और दूसरे ही क्षण गम्भीर स्वर में भैंस वेदमन्त्रों का उच्चारण करने लगी। यह एक ऐसा चमत्कार था, जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी।

अन्त में पण्डितों ने भीत स्वर में कहा—"बेटा ज्ञानदेव, निःसन्देह तुम लोग शुद्ध हो। हम सब एक मत से इसे स्वीकार करते हुए तुम्हें शुद्धि-पत्र दे रहे हैं। हम सब अज्ञानी कर्मकाण्डी हैं। तुम लोगों के प्रति किये गये रूढ़ व्यवहार के लिये क्षमा चाहते हैं।"

ज्ञानदेव ने भैंस से वेदमन्त्र का पाठ कराया है, यह समाचार विद्युत्-गति से भारत के विभिन्न क्षेत्रों से होता हुआ तिब्बत तक पहुँच गया।[१]

क्षमा याचना करने के बाद भी पैठण के पण्डितों ने अपने कुटिल चरित्र का परिचय दिया। श्री पुरुषोत्तम यशवन्त देशपाण्डे ने लिखा है—"आशातीत पराजय और उपहास के पात्र बने महन्तों ने विट्ठल पन्त के चारों बच्चों को अपने पिता के कलंक से मुक्त कर दिया। किन्तु ऐसा करते वक्त वे अपनी नीचता और क्षुद्रता से बाज न आये। उन्होंने शुद्धि-पत्र में यह शर्त जोड़ दी कि इनमें से कोई भी बालक विवाह और सन्तानोत्पत्ति नहीं करेगा, क्योंकि इससे हिन्दू-समाज में अपवित्र रक्त-दूषण का भय है। सनातन हिन्दू-धर्म के पतन की यह चरम सीमा थी। इस कारण ज्ञानदेव को जो क्लेश हुआ होगा, वह अन्ततः मानवता के प्रति अपार करुणा में परिपक्व हुआ। पीड़ित मानवता के उद्धार का यही भावावेग धर्म की एक नयी सृष्टि तथा नयी दृष्टि और शाश्वत जीवन-धर्म में पल्लवित हुआ।"[२]

शुद्धि-पत्र पाने के बाद विट्ठल पन्त के बच्चों की मानसिक घुटन समाप्त हो गयी। ज्ञानदेव ने सोचा कि हम भले ही विवाह न करें, पर अब समाज में रह तो सकेंगे। हमारे साथ अछूतों जैसा व्यवहार नहीं होगा। तीन वर्ष तक सभी भाई पैठण में वैदिक शिक्षा ग्रहण करते रहे। इसके बाद नेवासा की ओर चल पड़े।

मार्ग में एक अद्भुत घटना हुई। नेवासा के समीप आने पर इन लोगों ने देखा कि श्मशान में एक महिला पति के शव के आगे विलाप कर रही है। ज्ञानदेव का हृदय करुणा से विगलित हो उठा। आगे बढ़ कर उन्होंने प्रश्न किया—"क्या बात है?"

शववाहकों में से एक व्यक्ति ने उत्तर दिया—"यह महिला मृत व्यक्ति सच्चिदानन्द की पत्नी है। अब इस बेचारी का कोई सहारा नहीं रहा।"

"सच्चिदानन्द? ज्ञानदेव अस्फुट स्वर में बुदबुदाये। इसके बाद निवृत्तिनाथ की

---

१. इस बात की चर्चा श्रीमती ब्लावट्स्की की पुस्तक 'द वायस आफ सायलेन्स' में है।

२. ज्ञानदेव, पृ० ६८

ओर देखते हुए उन्होंने कहा—"गुरुदेव, क्या सत्, चित्, आनन्द की मृत्यु हो सकती है?"

निवृत्तिनाथ ने कहा—"नहीं। सत्, चित्, आनन्द की मृत्यु नहीं हो सकती।"

गुरु की बातें सुनते ही ज्ञानदेव मृतक के पास बैठ कर उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—"उठो सच्चिदानन्द, तुम्हारी मृत्यु नहीं हुई है।"

वह व्यक्ति धीरे-धीरे उठ बैठा। यह दृश्य देख कर उसके सभी साथी हर्ष से नृत्य करने लगे। आगे चल कर यह व्यक्ति ज्ञानदेव का शिष्य बना।

नेवासा आने के बाद ज्ञानदेव अपने भीतर विशेष प्रकार की एक हलचल अनुभव करने लगे। उन्हें लगा जैसे वे मुक्त पुरुष, बन्धनहीन, अहंयुक्त हैं। निरन्तर उनकी आत्मा जनकल्याण के लिए उन्हें प्रेरित करने लगी। उन्होंने अपने गुरु से इस बात की चर्चा करते हुए अनुमति माँगी। गुरु से आज्ञा प्राप्त होते ही वे श्रीमद्भागवत पर टीका लिखने लगे। इसी टीका का नाम है—'ज्ञानेश्वरी'। ज्ञानेश्वरी के ९०० श्लोकों को उनके शिष्य सच्चिदानन्द ने लिपिबद्ध किया है। ग्रन्थ के अन्त में ज्ञानदेव ने लिखा है—"श्री निवृत्तिनाथ का शिष्य मैं ज्ञानदेव कहता हूँ कि उस गीता नामक संवाद का अठारहवाँ अध्याय पूर्ण कलश है। अब इस ग्रन्थ की पवित्र सम्पत्ति से प्राणी मात्र को उत्तरोत्तर सम्पूर्ण सुखों की प्राप्ति हो। शक संवत् बारह सौ बारह में ज्ञानेश्वर ने गीता की यह टीका की और सच्चिदानन्द बाबा ने बड़े प्रेम और ध्यान से इसे लिखा है।"[१]

उन दिनों गीता की एकमात्र श्रेष्ठ टीका शंकराचार्य ने की थी। शेष विद्वान् एक-दूसरे का खण्डन-मण्डन करते रहे। इससे जनसाधारण में भ्रम फैल गया था। ठीक इसी समय ज्ञानदेव की टीका ने अद्भुत प्रभाव डाला।

सच तो यह है कि ज्ञानेश्वर की टीका अन्य सभी टीकाकारों से भिन्न है। आज तक इतनी विद्वत्तापूर्ण टीका किसी भी विद्वान् ने नहीं की है। सन्त ज्ञानदेव के 'ज्ञानेश्वरी' तथा 'अमृतानुभव' नामक दोनों ग्रन्थों में जैसे विचार हैं, इतनी कम उम्र का बालक पृथ्वी के इतिहास में कभी प्रकट नहीं कर सका है। निश्चित है कि ज्ञानदेव के स्थूल शरीर में ईश्वरीय शक्ति कार्य करती रही।

सन्त ज्ञानेश्वर के समकालीन महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त नामदेव ने एक जगह लिखा है—"ज्ञानराज (ज्ञानदेव) मेरे लिये योगमाता जैसे हैं, उन्हीं की अनुकम्पा से मेरे जैसे अज्ञानी जीव को समस्त आत्मज्ञान सुलभ हो सका। उन्होंने अध्यात्म-विद्या के

१. निवृत्तिनाथ से दीक्षा लेने के बाद से इनमें भाई-भाई या भाई-बहन का नाता समाप्त हो गया। वे अपने गुरुओं को गुरु के रूप में मानते थे। ज्ञानदेव ने अपनी रचनाओं में सर्वत्र निवृत्तिनाथ को गुरु के रूप में स्मरण किया है। वे यह मानते रहे कि उन्होंने अपने जीवन में जो कुछ कार्य किया है, वह सभी गुरु-कृपा से हुआ है।

रहस्य समझ कर मेरे हित अमर-जीवन की ज्योति जगा दी है। उन्होंने मेरी अहं की सारी गुत्थियाँ बाँध कर मुझे यथार्थ का साक्षात्कार करा दिया। मराठी में गीता पर उनकी अद्‌भुत टीका ने सत्य या ईश्वर के अनुसन्धित्सु सभी लोगों के लिए मार्ग खोल दिया। विश्व के समस्त मनुष्यों के प्रति उनकी अपार करुणा का यह स्पष्ट प्रमाण है। उनकी ज्ञानेश्वरी सत् ज्ञान से इतनी परिपूर्ण है कि जो उसका एक अनुच्छेद भी प्रतिदिन समझ लेंगे, उन्हें शीघ्र ही जीवन के परम-रहस्य का बोध हो जायेगा।''

सन्त ज्ञानेश्वर अपनी गीता के बारे में एक स्थान पर कहते हैं—''गीता का तत्व निरूपित करने में मैंने अपना सर्वस्व लगा दिया ताकि लोग समझ सकें कि धर्म क्या है? वे जन्म से मृत्यु तक अपना जीवन जीते हुए स्वयं को और अपनी गतिविधियों को सही दृष्टि से देख सकें।''

अगर कोई भी पाठक ज्ञानेश्वरी का अध्ययन करे तो उसे यज्ञ, जप, ध्यान, साधना के बारे में जानकारी प्राप्त हो जायेगी। योगाभ्यास के बारे में सन्त ज्ञानेश्वर लिखते हैं—

''योगाभ्यास करने के लिए सबसे पहले एक उपयुक्त स्थान देखना चाहिए। वह स्थान ऐसा होना चाहिए कि यदि विश्राम करने की इच्छा से आदमी वहाँ जाकर बैठे तो फिर वहाँ से उसका उठने का जी ही न चाहे। वह स्थान ऐसा हो कि वहाँ के दृश्य से ही वैराग्य दूना हो जाय। वहाँ यदि सन्तजनों का निवास हो तो उससे सन्तोष की पुष्टि होती है और मन को धैर्य का सहारा मिलता है जहाँ योगाभ्यास आपसे आप होता हो, जहाँ की रमणीयता के कारण हृदय को आत्मानन्द का अनुभव हो, हे अर्जुन, जिस स्थान पर पहुँचते ही पाखण्डियों के मन में भी तपश्चर्या करने की बुद्धि उत्पन्न हो, जहाँ कोई रास्ता चलता आदमी अचानक पहुँच जाने पर यदि स-काम हो तो भी वह वहाँ से लौटने या हट कर जाने की बात बिल्कुल भूल जाय ऐसा स्थान न रहने वालों को भी रोक लेता है, भटकने वालों को भी स्थिर करता है और वैराग्य को थपकी लगाकर जाग्रत करता है। वह स्थान ऐसा होना चाहिए कि उसे देखते ही विषय-सुखों के लंपट को भी ऐसा जान पड़े कि मैं संसार का सुन्दर राज्य छोड़कर यहीं शान्तिपूर्वक पड़ा रहूँ। बस, वह स्थान ऐसा रमणीय होना चाहिए। इसके अतिरिक्त वह स्थान शुद्ध होना चाहिए कि वहां आँखों को साक्षात् ब्रह्मस्वरूप ही दिखाई पड़ता हो। उस स्थान में एक और विशेष गुण यह होना चाहिए कि वहाँ योगाभ्यास करने वाले साधकों की बस्ती हो और दूसरे लोगों का आना-जाना न हो। वहाँ ऐसे बड़े-बड़े वृक्ष भी होने चाहिए जो जड़ से ही अमृत के समान मीठे और सदा फल देने वाले हों और वे फल उनमें बारहों मास लगते हों। साथ ही उस स्थान पर वर्षाकाल के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं में भी पग-पग पर पानी मिलता हो और विशेषत: वहाँ पानी के बहते हुए झरने भी यथेष्ट होने चाहिए। वहाँ गरमी बहुत

ठिकाने की और साधारण पड़ती हो और शीतल तथा शान्त वायु मन्द-मन्द बहती हो। वह इतना शान्त होना चाहिए कि जल्दी किसी प्रकार का शब्द वहाँ न होता हो और पशुओं आदि की कौन कहे, तोते या भुनगे तक का भी वहाँ प्रवेश न होता हो। वह स्थान ऐसा होना चाहिए कि पानी के सहारे रहने वाले हंस और दो-चार सारस आदि पक्षी कहीं-कहीं दिखाई पड़ते हों और कभी-कभी कोई कोयल वहाँ आ बैठा करती हो। इस प्रकार सदा तो नहीं, पर हाँ, कभी-कभी कुछ देर मोर भी आया-जाया करते हों तो कोई हर्ज नहीं। ऐसे स्थान का चुनाव सावधानी से करना चाहिए।"[१]

योग साधना के लिए स्थान कैसा हो, इसकी रूपरेखा का वर्णन हमें यह बताता है कि ऐसे स्थानों पर ही साधना फलीभूत होती है अर्थात् इष्ट के दर्शन होते हैं। ज्ञानेश्वरी के छठे अध्याय में १२ से १६वें श्लोक तक योग-सम्बन्धी व्याख्या अद्‌भुत है।

अपनी सिद्धि के बारे में ज्ञानदेव ने स्पष्ट रूप से लिखा है—

"मैं अपने अमृत-अनुभव की बात करता हूँ जो मेरे सम्पूर्ण अनुभवों का निचोड़ है। सभी मनुष्यों के अनुभव उनके जो मुक्त हैं, उनके जो मुक्त नहीं हैं और उनके जो मुक्ति के आराधक हैं—मूलतः एक ही महत्ता रखते हैं। परिपक्वता के क्षण में अनुभूति-रहस्य का अमृत चखते ही उनके विभेद समाप्त हो जाते हैं। यही सभी मनुष्यों की स्वाभाविक नियति है। यह प्रत्येक युवती में छिपे यौवन-पुष्प की तरह है, वह तभी खिलता है जब वह अपने प्रियतम से जुड़ती है या यों कहें कि यह उन वृक्षों की भाँति हैं, जिनमें फूलने और फलने की क्षमता सदैव रहती है। परन्तु वसन्त के आगमन पर यह क्षमता हर शाखा-प्रशाखा में फूट निकलती है और फिर आकाश को चूमने लगती है। इस प्रकार सभी मनुष्य मेरे अनुभव के इस अमृत की मिठास चख सकते हैं। बशर्ते वे इन शब्दों को मर्म में बैठाने का प्रयत्न करें और उस सिंहासन का साक्षात्कार करें जो भीतर है।"[२]

ज्ञानदेव सन् १२९० ई० में ज्ञानेश्वरी पूर्ण कर चुके थे। उन दिनों उनकी उम्र १५ वर्ष थी। १५ वर्ष का एक बालक योग, ध्यान, अध्यात्म, दर्शन आदि के तथ्य बिना ईश्वर की अनुकम्पा के कैसे लिख सका? यहीं आकर आधुनिक विद्वानों को असामंजस्य का सामना करना पड़ता है और वे ज्ञानदेव की प्रतिभा पर अविश्वास करने लगते हैं।

इस सम्बन्ध में ज्ञानदेव ने स्वयं ही स्पष्ट किया है कि यह सब गुरु की कृपा से हुआ है। उनकी एषणा-शक्ति के प्रभाव के कारण वे इस ओर प्रवृत्त हुए हैं। इसमें

१. ज्ञानेश्वरी—अनु० बाबू रामचन्द्र वर्मा, अ० ६, श्लोक १२

२. अमृतानुभव।

सन्देह नहीं कि बिना गुरु-कृपा के इष्ट के दर्शन नहीं होते और न साधना में सफलता मिलती है।

गहिनी ने दया केली निवृत्तिनाथा।
बालक असतां योगरूप॥
तेथूनी ज्ञानेश पावले प्रसाद।
एकनिष्ठ भाव तुकोबा चरणी॥

ज्ञानदेव ने १२वें तथा १४वें अध्याय में विस्तार से गुरु-महिमा का वर्णन किया है। एक स्थान पर वे लिखते हैं—

"हे गुरु-कृपा-दृष्टि, तू वैभवशाली है और अपने सेवकों की कामना पूर्ण करने वाली कल्पलता है तो भी मुझे ग्रन्थ-निरूपण करने की आज्ञा दे। तू मेरे द्वारा इस निरूपण में नौ रसों का सागर भरवा दे, उत्तम रत्नों का आगार तैयार होने दे और भगवन्त के सच्चे अर्थ का पर्वत उठने दे। तू मुझमें ऐसी सामर्थ्य प्रदान कर जिसमें मैं श्रीकृष्ण के गुणों का ठीक-ठीक वर्णन कर सकूँ और श्रोताओं को भी श्रवण के आनन्द का साम्राज्य प्राप्त होने दे। दास की यह प्रार्थना सुन कर गुरु ने उसकी ओर प्रसन्न दृष्टि से देखा और कहा—'अब गीता के अर्थ का निरूपण प्रारम्भ करो। प्रस्तावना का अधिक विस्तार करने की आवश्यकता नहीं।' इससे शिष्य को स्वभावत: बहुत अधिक आनन्द प्राप्त हुआ।"

× × ×

ज्ञानदेव जिन दिनों पैठण में ज्ञानेश्वरी लिख रहे थे, उन्हीं दिनों एक घटना हो गयी। आपके ज्ञान से प्रभावित होकर एक ब्राह्मण ने उन्हें अपने यहाँ आमन्त्रित किया। ब्राह्मण के पिता का श्राद्ध-दिवस था। पितरों के लिए खाली आसन बिछाने का नियम है। माना जाता है कि पिण्ड-दान के समय पूर्वजों की आत्माएँ सूक्ष्म रूप में आकर उसे ग्रहण करती हैं। पिण्ड-दान के पूर्व ही ज्ञानदेव ने कहा—"आगन्तव्यम्"।

इतना कहना था कि ब्राह्मण के तीन पूर्व पुरुष आकर निर्धारित आसनों पर प्रत्यक्ष रूप से बैठ गये और पिण्ड ग्रहण किया।

पैठण से नेवासा और फिर वहाँ से सभी भाई-बहन आलन्दी चले आये। दीपावली के दिन निवृत्ति ने कहा—"मुक्ता, आज माण्ड (चिल्ला की तरह का एक पकवान) खाने की इच्छा हो रही है।"

मुक्ता ने कहा—"ज्ञान भैया भिक्षा लेने गये हैं। उनके आने पर बना दूँगी। लेकिन बनाऊँगी किसमें? बरतन तो सब चोर उठा ले गये हैं। कोई हर्ज नहीं। मैं कुम्हार के यहां से मिट्टी का तवा ले आती हूँ।"

मार्ग में सहसा विसोबा चाटी से मुलाकात हो गयी। उसके प्रश्न करने पर मुक्ताबाई ने सरल-भाव से अपना उद्देश्य बता दिया।

माँगेंगे भीख और खायेंगे माण्ड। देखता हूँ तुझे कौन कुम्हार बरतन देता है। इतना कहकर विसोबा उनके पीछे लग गया।

मुक्ता जिस कुम्हार के पास जाती, वहीं विसोबा पहुँच कर कुम्हार को धमकी देता—"अगर तुमने बरतन दिया तो जाति से निकाल दूँगा।"

यह धमकी काम कर जाती। रोती-कलपती मुक्ता घर वापस आ गयी। उसकी उदास शक्ल देख कर ज्ञानदेव ने कहा—"अरी पगली, रोती क्यों है। तुझे माण्ड बनानी है। चल तेरे लिए इन्तजाम कर देता हूँ।"

योगिराज ज्ञानदेव ने साधना के माध्यम से अपनी पीठ को अग्निमय बना लिया। पीठ गरम तवे की तरह लाल हो गयी। मुक्ताबाई उस पर माण्ड सेंकती रही।

माण्ड बन जाने के बाद मुक्ताबाई ने कहा—"भैया, माण्ड बना चुकी। अब पीठ को शीतल बना लो।"

माण्ड खाते समय निवृत्ति ने ज्ञानदेव से कहा—"योग का उपयोग साधारण कार्यों के लिये नहीं करना चाहिए।"

"जो आज्ञा गुरुदेव।" ज्ञान ने कहा—"भविष्य में इस बात का ध्यान रखूँगा।"

तीनों भाई भोजन कर चुके थे। ठीक इसी समय एक कुत्ता आया और मुक्ताबाई के हिस्से का माण्ड लेकर भाग गया। निवृत्ति ने कहा—"मुक्ता, तूने कुत्ते को मारा क्यों नहीं। अब तू क्या खायेगी?"

मुक्ताबाई ने कहा—"वह तो विट्ठल था भैया। कैसे मारती?"

ज्ञानदेव ने हँस कर पूछा—"माना कि कुत्ता विट्ठल था, पर विसोबा चाटी?"

"वह भी विट्ठल हैं भैया।"

विसोबा आड़ में खड़ा सारा दृश्य देख रहा था। जब से ज्ञानदेव आलन्दी में आये हैं तभी से वह इन लोगों को घृणा की दृष्टि से देखता आया। सर्वदा इन्हें नुकसान पहुंचाने का प्रयत्न करता है। इसी के प्रयत्न से ज्ञानदेव के यहाँ बरतनों की चोरी हुई। इस समय वह एक कुत्ते को पकड़ लाया था। इनकी सहनशीलता और उदारता देख कर उसका अन्तर्मन रो पड़ा। अपने को वह सम्हाल न सका। भीतर आकर मुक्ताबाई के चरणों पर गिर पड़ा।

इस घटना के कुछ दिनों बाद निवृत्तिनाथ की आज्ञा से मुक्ताबाई ने विसोबा चाटी को दीक्षा दी। अपने गुरु की कृपा पाकर विसोबा योग-साधना के द्वारा प्रसिद्ध सन्त बन गया। अब विसोबा चाटी सन्त बनने के बाद विसोबा खेचर बन गया। ज्ञातव्य है कि इन्हीं विसोबा खेचर से महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त नामदेव ने दीक्षा ली थी।

ज्ञानदेव की दो महत्त्वपूर्ण कृतियाँ 'ज्ञानेश्वरी' तथा 'अमृतानुभव' की ख्याति बढ़ती

गयी। अब ज्ञानदेव सन्त ज्ञानेश्वर के नाम से भारतीय जनता में प्रसिद्ध हो गये। इनके चमत्कारों का वर्णन सुन कर तत्कालीन योगिराज चाँगदेव को अपार विस्मय हुआ।

उन दिनों चाँगदेव को भारत का महान् योगी माना जाता था। कहा जाता है कि वे १४०० वर्ष से योग-साधना करते आ रहे थे। ब्रह्म-विद्या के एकमात्र संचालक थे। सम्पूर्ण भारत में उनके अगणित शिष्य थे। ऐसे महान् सन्त की साधना को पार कर एक किशोर बालक कैसे उन्नति के शिखर पर चढ़ गया?

चाँगदेव ने सोचा कि सत्यासत्य की जानकारी के लिए एक पत्र लिखूँ। कागज-कलम लेकर चाँगदेव सोचने लगे कि ज्ञानदेव के लिये कौन-सा सम्बोधन उचित होगा? "तीर्थ स्वरूप" (पिताजी) लिखूँ या 'चिरंजीव' (पुत्र)? यह ठीक है कि उम्र में मैं काफी बड़ा हूँ, पर साधना के क्षेत्र में कौन बड़ा है? इसी ऊहापोह में उन्होंने बिना कुछ लिखे सादा कागज भेज दिया।[१]

पत्रवाहक ने वह कागज ज्ञानदेव को दिया। वे उसे लेकर हँस पड़े। बाद में उस पत्र को उन्होंने अपने भाईयों को दिया। अन्त में जब मुक्ताबाई के हाथ में वह पत्र आया तो वह खिलखिलाकर हँस पड़ी—"हमारे योगीजी १४ सौ वर्ष तपस्या करने के बाद भी इस कागज की तरह कोरे रह गये।"

यह एक ऐसा व्यंग्य था, जिसे सुनकर योगिराज निवृत्तिनाथ चौंक उठे। कहीं योगिराज चाँगदेव इस बात को सुनकर नाराज न हो जायें। निवृत्तिनाथ ने पत्रवाहक से कहा—"आप इस वाचाल लड़की की बातों पर ध्यान न दें। हम सभी उन महान् योगी से मिलने के लिए आतुर हैं और उनके द्वारा पत्र में व्यक्त किये गये विचारों का सम्मान करते हैं। हमारा आग्रह है कि चाँगदेव महाराज अपनी चरण-रज से हमारी कुटिया पवित्र करें। आप हमारी ओर से हमारा प्रणाम निवेदित करें।"

पत्रवाहक अवाक् रह गया। सादे कागज में यह सब बातें कहाँ हैं? योगियों का रहस्य समझना कठिन है। सभी को प्रणाम करने के बाद पत्रवाहक चला गया।

निवृत्तिनाथ का सन्देश पाते ही चाँगदेव यात्रा के लिये निकले। अपने योग का प्रभाव दिखाने के लिए सिंह पर सवार हुए। हाथ में 'समिधा' की जगह सर्प का चाबुक लिया। उनके आगे-पीछे हजारों शिष्य जय-जयकार करते हुए चल पड़े।

आलन्दी के समीप आते ही गाँव में हलचल मच गयी। कुछ लोग चाँगदेव के आगमन का समाचार देने के लिये दौड़े। उस समय ज्ञानदेव अपनी बहन तथा भाईयों के साथ एक टूटी झोपड़ी की दीवार पर बैठे थे। चाँगदेव के आगमन का समाचार पाकर उन्होंने सोचा कि आगे बढ़ कर उनका स्वागत करना चाहिए। पास में कोई सवारी नहीं थी और चाँगदेव गाँव के सिरे पर थे। जिस दीवार पर सभी लोग बैठे थे,

---

१. नामदेव : श्री माधव गोपाल देशमुख, पृ० २४

उसे थपथपाते हुए ज्ञानदेव ने कहा—"हे प्रिय दीवार, जरा तू आज सक्रिय हो जा ताकि हम उस महान् सन्त का स्वागत कर सकें।"

आलन्दी के लोगों को यह देख कर आश्चर्य हुआ कि ज्ञानदेव अपने भाई-बहन के साथ चलती हुई दीवार पर बैठे आगे बढ़े जा रहे हैं। यह दृश्य देख कर स्वयं चाँगदेव हतप्रभ हो गये। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि भले ही उम्र में मैं बड़ा हूँ, पर साधना के क्षेत्र में ज्ञानदेव मुझसे श्रेष्ठ हैं।

तुरन्त सिंह से उतर कर उन्होंने ज्ञानदेव को साष्टांग प्रणाम किया। यही नहीं, उन्होंने ज्ञानदेव से शिक्षा ग्रहण की। कुछ दिनों बाद ज्ञानदेव ने अपने चाँगदेव के लिए 'चाँगदेव पासष्ठी' नामक ग्रन्थ लिखा—

"हे प्रिय चाँगदेव, मेरी कितनी इच्छा है कि तुम्हारे लिये मुझे न कुछ करना पड़े, किन्तु प्रेमावेग में मेरा 'मैं-पन' इस समय दुर्दम हो रहा है। ज्योंही मैं तुम्हारी आत्मा का दर्शन करता हूँ, त्योंही मेरा 'मैं-पन' शून्य में विलीन हो जाता है और उसी के साथ तुम्हारा 'तू-पन' भी। 'मैं' और 'तुम' अपनी आत्माओं के मिलन में खो गये हैं। मैं पात्रों की यह माला ऐसी अवस्था में गूँथ रहा हूँ जो कि प्राणियों की निद्रा से परे की नींद जैसी है और साथ ही चिरन्तन जागृति भी है, जिसने मानों जीवों की साधारण जागृति को अपने में निगल लिया है।"

महाराष्ट्र में बहुचर्चित वारकरी-पंथ के भक्ति-मार्ग के लिये 'ज्ञानेश्वरी' अपरिहार्य ग्रन्थ बन गया। वारकरी-पंथ के संस्थापक सन्त ज्ञानेश्वर थे, जिसे पुष्ट किया था—सन्त नामदेव ने।

ज्ञानदेव के सम्बन्ध में जिस तरह की शंकाएँ आज तक की जाती हैं, ठीक इसी प्रकार की शंकाएँ उनके जीवितकाल में की जाती थीं। सम्भवत: ज्ञानदेव को इस बात की जानकारी हो गयी थी। ऐसे शंकालु लोगों की शंका को दूर करने के लिए एक दिन ज्ञानेश्वरजी ने घोषणा की कि वे समाधि लेंगे। यह एक ऐसी घोषणा थी, जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके समकालीन अनेक सन्त-योगी थे, पर ऐसा साहस किसी ने नहीं किया।

आलन्दी के सिद्धेश्वर मन्दिर के पास एक गुफा खोदी गयी। सन्त ज्ञानदेव समाधि लेंगे, यह समाचार चारों ओर फैल गया। नासिक, पैठण, पंढरपुर आदि स्थानों से अनेक सन्त-महात्मा आये। दो दिनों तक कीर्तन होता रहा।

२५ अक्टूबर, सन् १२९६ ई० गुरुवार (वि०सं० १३५३, मार्गशीर्ष १३) को दोपहर के वक्त समाधि में जाने के लिए ज्ञानदेव उठे। कहा जाता है—स्वयं भगवान् पाण्डुरंग ने उन्हें तिलक लगाया, गले में माला पहनायी। नामदेव ने समाधिस्थल की सफाई की। इसके बाद ज्ञानदेव का एक हाथ साक्षात् पाण्डुरंग और

दूसरा निवृत्तिनाथ ने पकड़ा। ज्ञानदेव समाधिस्थल पर बैठ कर इष्ट की स्तुति करने लगे।

स्तुति समाप्त होते ही सन्त ज्ञानेश्वर ने अपनी आँखें बन्द कर लीं। निवृत्तिनाथ ने ऊपर से पत्थर की पटिया रख कर उसे ढँक दिया। यह दृश्य देख कर नामदेव पछाड़ खाकर गिर पड़े और बेहोश हो गये।

इस घटना के बारे में प्रत्यक्षदर्शी सन्त नामदेव ने लिखा—"मेरी पीड़ा को कौन जान सकता है? प्रेम विगलित होकर मेरी आँखों से अश्रुधारा बह निकली। शब्दों ने परम मौन में व्याघात पहुँचाने से इनकार कर दिया। मैंने स्वयं अपना जीवन उड़ कर जाते देखा। वे अनुभवों के आध्यात्मिक यथार्थ के सागर थे। वह अध्यात्म के गुह्य सत्य थे जो अपने श्रव्य शब्दों में आविर्भूत हुए थे। उन्होंने मानवता को कर्म-अकर्म की शिक्षा दी। उनकी यशोगाथा त्रैलोक्य में देदीप्यमान है। उन्होंने असंदिग्ध रूप से सिद्ध कर दिया कि अमरत्व वस्तुतः मनुष्य की चेतना में वास करने वाली सामान्य-सी वस्तु है। ज्ञानदेव समाधि में लीन हो गये और ब्रह्म से तदाकार हो गये।"

सन्त ज्ञानेश्वर की समाधि लेने के एक वर्ष बाद निवृत्तिनाथ,[१] सोपान और मुक्ताबाई ने भी समाधि ले ली। इस प्रकार समाजपतियों को दिये गये वचन के अनुसार इन लोगों ने न विवाह किया और न सन्तानोत्पत्ति। सन्त ज्ञानेश्वर की यशोगाथा सर्वदा के लिए अमर हो गई। आज भी आलन्दी में नित्य समाधि पर भक्तों की भीड़ आती है और शुद्ध मन से कामना करने वालों की कामनाएँ पूरी होती हैं।





७

सन्त नामदेव

दामाशेट जाति के दर्जी थे। नगर में घूम-घूम कर कपड़े बेचते थे। खाली समय में ग्राहकों के कपड़े सीते थे। एक दिन शाम को अपने लड़के को बुलाकर उन्होंने कहा—"नामा, कल सुबह जल्दी मुझे एक गाँव में कपड़े की फेरी के लिये जाना पड़ेगा। लौटने में रात हो जायेगी। पूजा करने में देर हो जायेगी। कल मेरे बदले तुम्हें पूजा करनी है। समझे?"

नामा ने कहा—"जी पिताजी, मैं मन्दिर में जाकर पूजा कर आऊँगा। माँ से भोग ले लूँगा।"

दामाशेट ने कहा—"सो तो ठीक है। नहाकर कपड़े बदल लेना। साफ-सुथरे कपड़े पहन कर पूजा करना वर्ना विट्ठल (पाण्डुरंग) नाराज हो जायेंगे।"

नामा ने सिर हिलाकर कहा—"ठीक है।"

दूसरे दिन चलते समय दामाशेट ने पुनः एक बार नामा को समझाने के बाद अपनी पत्नी गोणाई से कहा—"इसे भोग का सामान दे देना।"

नामा बड़े उत्साह के साथ चन्द्रभागा नदी में स्नान कर आया। आज उसे पहले-पहल विट्ठल भगवान् की पूजा करने का अवसर मिला था। भोग और फूल लेकर मन्दिर में गया। पूजा कैसे की जाती है, इसकी जानकारी नहीं थी। विट्ठल को माला पहनायी। उनके चरणों के निकट फूल रखे। इसके बाद भोग की थाली सामने रखते हुए कहा—"लो, भगवान्! खा लो।"

कुछ देर तक इन्तजार करने पर भी जब विट्ठल ने भोग में हाथ नहीं लगाया, तब नामा ने कहा—"देर हो रही है भगवान्! जल्द खा लो।"

पत्थर के देवता भला इन बातों का क्या जवाब देते। यह देख कर अभिमान भरे स्वर में नामदेव ने कहा—"पिताजी के हाथों तो रोज खाते हो। आज क्या हो गया? मैं नहा-धोकर साफ कपड़े पहन कर आया हूँ। खा लो, वर्ना माँ मुझे मारेगी। जब तक तुम नहीं खाओगे, तब तक मैं यहीं बैठा रहूँगा।"

इतना कहने पर भी विट्ठल भगवान् ने जब भोग नहीं लगाया, तब नामदेव ने रोते हुए कहा—"नहीं खाओगे तो मैं इस दीवार से टक्कर मार कर अपना सिर फोड़ लूँगा।"

इतना कह कर ज्योंही वह दीवार के पास पहुँचा, त्योंही विट्ठल भगवान् प्रकट हुए और सारा नैवेद्य भी उन्होंने प्रेम से खाया। नामदेव खुशी-खुशी घर लौटा। नामा को देखते ही माँ ने पूछा—"क्यों रे, प्रसाद क्या हुआ?"

नामा ने कहा—"आज विट्ठल को तेज भूख लगी थी। सब खा गये।"

गोणाई ने तेज स्वर में पूछा—विट्ठल खा गये या तू खा गया? झूठ बोलते शर्म नहीं आती? आज तेरा खाना बन्द। आने दे पिताजी को, तब सारा झूठ निकलेगा।"

नामा की सफाई देने पर भी गोणाई को विश्वास नहीं हुआ। शाम को दामाशेट सारी बातें सुनने के बाद बोले—"तू सच कह रहा है या झूठ, इसका पता कल चल जायेगा। कल भी तू ही भोग लगायेगा। मैं दूर से देखूँगा।"

दूसरे दिन दामाशेट ने अपनी आँखों से देखा कि प्रस्तर मूर्ति से विट्ठल भगवान् निकले और उन्होंने भोग ग्रहण किया। नामा ज्योंही मन्दिर से बाहर निकला, त्योंही उसे गोद में उठा कर बारंबार उसे चूमते हुए दामाशेट ने कहा—"नामा, आज तेरी वजह से मैंने भी पाण्डुरंग के दर्शन किये। मेरा अहोभाग्य है कि तूने मेरे यहाँ जन्म लिया।"

दामाशेट को याद आया। नामकरण के दिन इसकी जन्मकुण्डली बनाने वाले पण्डित ने कहा था कि आपका यह लड़का विट्ठल भगवान् का उपासक होगा। नामदेव के नाम से सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध होगा।

दामाशेट और उनकी पत्नी दोनों ही विट्ठल भगवान् के उपासक थे। महाराष्ट्र की एक सन्त महिला जनाबाई सेविका के रूप में इनके घर में रहती थी। जनाबाई के सामने नामदेव का जन्म हुआ था। नामदेव के बारे में जनाबाई के विवरण विश्वसनीय माने जाते हैं।

इस घटना के बाद से नामदेव पर विट्ठल भगवान् का रंग चढ़ गया। जब भी उसे मौका मिलता, तब मन्दिर में जाकर कीर्तन करने लगता। उसके इस भाव को देख कर दामाशेट चिन्तित हो उठे। उन्होंने सोचा कि अगर यही रवैया रहा तो घर की हालत खराब हो जायेगी।

आखिर जब उनसे नहीं रहा गया, तब एक दिन उन्होंने कहा—"नामा, घर-गृहस्थी की ओर भी मन लगा। अगर यही हालत रही तो आगे तू क्या करेगा?"

पिता के काफी समझाने पर एक दिन नामा कपड़े लेकर बाजार में बेचने के लिये गये। बाजार में कोई भी सामान बेचने के लिए ग्राहकों की ओर ध्यान देना पड़ता है। उनके हाव-भाव देखने पड़ते हैं। नामा कपड़ों का गट्ठर सामने रख कर विट्ठल के ध्यान में मग्न हो गये। शाम तक इनके साथ आये कई लोगों ने अच्छी कमाई की। लेकिन नामा के कपड़े नहीं बिके। वापसी के समय उन्होंने देखा कि खेत के पास गोल-गोल पत्थर ओस से भींगे पड़े हैं। सर्दी से बचने के लिये नामदेव ने इन पत्थरों को कपड़ों से ढँक दिया।

थोड़ी देर में यह ख्याल आया कि घर वापस जाने पर जब बापू पैसे माँगेंगे तब क्या जवाब दूँगा? एकाएक उसने एक बड़े पत्थर के पास जाकर कहा—"आठ दिन बाद पुनः बाजार आऊँगा, तब मेरे पैसे दे देना।"

घर वापस आते ही दामाशेट ने पूछा—"क्या कपड़े बिक गये?"

नामा ने कहा—"हाँ, सब बिक गये, पर पैसे आठ दिन के बाद जब पुनः बाजार जाऊँगा। तब मिलेंगे।"

आठवें दिन नामा बाजार गया और बड़े पत्थर के पास जाकर कहा—"अब कपड़ों के पैसे दे दो वर्ना बाबू मुझे बहुत मारेंगे।"

पत्थर पैसे कहाँ से देता? उसे चुप रहते देख नामदेव ने कहा—"तब तुझे ले चलता हूँ, वहीं चलकर बापू को जवाब देना।"

पंढरपुर वापस आकर नामदेव सीधे विट्ठल के मन्दिर में आये। मन्दिर की ओर इन्हें जाते देख दामाशेट तमतमाते आ धमके। तभी विट्ठल ने कहा—"तू घबरा मत। मेरे रहते तुझे कोई कष्ट नहीं होगा।"

दामाशेट बौखलाए—"पैसों के बदले तू पत्थर उठा लाया? क्या इसी तरह धंधा करेगा? ले जा अपना पत्थर और मेरी रकम ला।"

घर वापस आते ही लोगों ने देखा कि वह पत्थर सोना बन गया है। बिजली की तरह यह समाचार चारों ओर फैल गया। जब यह समाचार खेत के मालिक को ज्ञात हुआ, तब उसने आकर कहा—"मेरे खेत से पत्थर उठा लाये हो। मुझे मेरा पत्थर वापस करो।"

नामदेव ने कहा—"मुझे मेरे कपड़ों के पैसे दो अपना पत्थर ले जाओ।"

खेत का मालिक पूरा पैसा चुका कर सोने का वह पत्थर अपने घर ले गया। घर पर ले जाते ही वह सोने के बदले पुन: निरा पत्थर बन गया।

पुन: वह उस पत्थर को लाकर नामदेव के दरवाजे पर पटक गया। आज भी वह पत्थर नामदेव के मन्दिर में केशवराज की मूर्ति के पूर्व की ओर रखा है। आज तक उस पत्थर की पूजा स्थानीय लोग करते आ रहे हैं।

× × ×

नामा अर्थात् नामदेव के जन्म के बारे में कई कहानियाँ प्रचलित हैं। एक कहानी में कहा गया है कि नामदेव का जन्म माँ के पेट से नहीं हुआ है। गोणाई और दामाशेट को भागीरथी में स्नान करते समय एक सीप मिली थी, जिसमें से नामदेव प्रकट हुए थे। दूसरी कहानी में कहा गया है कि नदी में स्नान करते समय गोणाई के पेट से तुलसी की पत्ती आकर टकराई, उसके कारण गर्भ रह गया। लगता है, संसार के प्रसिद्ध सन्तों के चमत्कारपूर्ण जीवन की घटनाओं से प्रभावित होकर किसी भक्त ने इस कथा को जन्म दिया था।

नामदेव के जन्म के बारे में उनकी सेविका जनाबाई ने अपने एक अभंग में लिखा है—"दामा की पत्नी गोणाई ने पंढरपुर आकर देवता से मनौती मानी की मुझे एक पुत्र दो। इस मन्नत के कारण नामदेव का जन्म हुआ।" यही विश्वस्त कहानी है।

दामाशेट पहले परभणी जिले के एक गाँव में रहते थे। बाद में कामकाज की कमी के कारण वे पंढरपुर आकर बस गये। यहीं २६ अक्टूबर, सन् १२७० के दिन नामदेव का आविर्भाव हुआ। बचपन में उनका नाम नामा था जो आगे चलकर नामदेव हो गया।

दामाशेट जाति के दर्जी थे, जिन्हें समाज में अछूत समझा जाता था। इनके यहाँ ग्राहकों के कपड़े सिले जाते थे। स्वयं नामदेव ने अपने एक अभंग में इस बात की चर्चा की है। उन्होंने लिखा है—"शिंपी (दर्जी) कुल में मेरा जन्म हुआ था। मैं दिन-रात सीता रहता हूँ।"

आगे एक अभंग में अपनी मन:स्थिति की चर्चा करते हुए नामदेव लिखते हैं— "मेरा मन इस (दर्जी वाले) काम में नहीं लग रहा है। सूई, डोरा, कैंची आदि सभी चीजों में मुझे शिव के दर्शन होते हैं। वास्तव में शिव ही मेरे विठोबा हैं।"

लड़के की इस स्थिति को देख कर गोणाई भी चिन्तित हो उठी। पति तो पहले से ही असन्तुष्ट थे। एक दिन उसने दामाशेट से कहा—"मेरा विचार है कि नामा का विवाह कर दो। घर में जब बहू आयेगी तब यह सब बन्द हो जायेगा। जब तक घर-गृहस्थी की जिम्मेदारी नहीं समझेगा, तब तक ऐसा ही करता रहेगा।"

दामाशेट अपने पुत्र में तेजी से होने वाले परिवर्तन को देख कर परेशान थे। गोणाई के सुझाव पर उन्होंने कहा—"बात तो ठीक कह रही हो, पर कहीं विवाह के बाद भी यही स्थिति रही तब क्या होगा?"

गोणाई ने कहा—"बहू आकर सब ठीक कर लेगी। तुम अपने को क्यों नहीं देखते। पहले क्या थे और विवाह के बाद क्या से क्या बन गये। बैल के कन्धे पर जब तक जुआ नहीं रखा जाता, तब तक उसे अपने काम का भान नहीं होता।"

इस निश्चय के बाद गोविन्द शेट्टी की पुत्री राजाई से नामदेव का विवाह कर दिया गया। उन दिनों बाल-विवाह की प्रथा थी। वर-वधू अभी बालिग नहीं हुए थे। दामाशेट का ख्याल था कि बहू के आने पर नामा उसके प्रेम में बँध जायेगा। गृहस्थी के बन्धन में फँस जाने पर अपनी जिम्मेदारी अनुभव करेगा। लेकिन उनका यह विचार केवल स्वप्न बनकर रह गया।

नामदेव पहले की तरह मन्दिर में जाकर भजन-कीर्तन में समय व्यतीत करते रहे। भावविभोर हो वे अपने विठोबा की भक्ति में दिन दूना रात चौगुना डूबते गये। डाँट-फटकार का उन पर कोई असर नहीं हुआ। आखिर जब दामाशेट सभी ओर से हार गये तब एक दिन अपनी पत्नी से बोले—"तुम्हारे कहने पर लड़के की शादी कर दी। अब बहू और उसके बच्चे का भरण-पोषण मुझे करना पड़ रहा है। आखिर इस तरह पागलपन करता रहेगा तो गृहस्थी कैसे चलेगी?"

सामने राजाई बैठी थी। उसकी ओर देखते हुए दामाशेट ने कहा—"तुम भी उसे समझाओ बहू। यदि कल को मैं मर गया तो तुम लोग क्या खाओगे, क्या पहनोगे? अब मुझसे पहले जैसी मेहनत नहीं होती।"

गोणाई और राजाई मिल कर नामा को समझाने लगीं। जिस प्रकार चिकने घड़े पर पानी का कोई असर नहीं होता, उसी प्रकार नामदेव पर इनकी बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। दो-एक दिन काम करता और फिर विठोबा की सेवा में लग जाता।

अपने अभंग (१६८५) में कहते हैं—"जो घट फूट गया है, वह अब क्या टूटेगा। यह संसार भी ऐसा ही है। संसार को भी इसी रूप में लीजिये जो बेकार फैला हुआ है।"

धीरे-धीरे समय गुजरता गया। नामदेव, नारा, विठा, गोंदा, महादा, चार पुत्रों और लिम्बाई नामक पुत्री के पिता बने। इन पुत्रों के विवाह भी हो गये। परिवार बड़ा हो

गया, लेकिन नामदेव की विठोबा-भक्ति में कमी नहीं आयी। फिर माँ और परिवार के लोगों से तंग आकर वे मन्दिर में जाकर रहने लगे। इस प्रकार उनका घर से नाता टूट गया।

सम्पूर्ण महाराष्ट्र में पंढरपुर का महत्त्व सर्वाधिक है। उसे तीर्थराज की संज्ञा दी जाती है। आज भी यहाँ आषाढ़ शुक्ल तथा कार्तिक शुक्ल एकादशी को (यानी हरिशयन और उत्थान एकादशियों को) भक्तों की भीड़ एकत्रित होती है। दिन-रात भजन और कीर्तन होता है। पंढरपुर के बारे में यह माना जाता है कि यह क्षेत्र भगवान् विष्णु के चक्र पर स्थित है।

ठीक इन्हीं दिनों सन्त ज्ञानेश्वर की ख्याति सम्पूर्ण महाराष्ट्र में फैल रही थी। नामदेव ने सोचा—ऐसे सन्त का दर्शन करना चाहिए। शायद ज्ञानेश्वरजी के पास जाने से कोई मार्ग मिल जाय।

सन्त ज्ञानेश्वर को अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति के द्वारा भान हुआ कि विट्ठल भगवान् के अनन्य भक्त नामदेव मेरे दर्शन के लिये आ रहे हैं। ज्ञानेश्वर ने इस बात की सूचना अपने भाई निवृत्तिनाथ को दी।

निवृत्तिनाथ ने कहा—"पंढरपुर के इस भक्त का स्वागत-सम्मान करने के लिए हम तैयार हैं। विट्ठल के भक्त हमारे आराध्य हैं।"

नामदेव को आया देखकर निवृत्तिनाथ ने उन्हें प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा करने के बाद उनके चरणों की वन्दना करते हुए कहा—"आज पंढरपुर का प्रेम हमारे यहाँ आया है।"

निवृत्तिनाथ के विनयपूर्ण व्यवहार को देखकर नामदेव के मन में अपनी भक्ति का अभिमान जाग्रत हो उठा। उन्होंने सोचा—मेरी साधना, भक्ति, ज्ञान आदि इनसे श्रेष्ठ है। मैं इनसे महान् हूँ। इनका प्रणाम लेने का अधिकार मुझे है। मैं वयोज्येष्ठ हूँ। फलस्वरूप उन्होंने निवृत्तिनाथ को प्रणाम नहीं किया।

निवृत्तिनाथ के बाद ज्ञानदेव उठे और उन्होंने प्रणाम करने के बाद चरण-स्पर्श किया। इस समय भी नामदेव ने यही सोचा कि विट्ठल के भक्त को प्रणाम करना चाहिए। मैं तो सर्वदा विट्ठल के दरबार में रहता हूँ। मैं इनसे उच्च-कोटि का सन्त हूँ।

सन्त ज्ञानदेव के बाद सोपान आये। अपने भाईयों की तरह इन्हें प्रणाम करते हुए उन्होंने कहा—"आज हम अनाथों के माँ-बाप मिले।"

और अब मुक्ताबाई की पारी आयी। वह बड़ी मुँहफट और कड़वी बात कहने वाली लड़की थी। उसने प्रणाम करने के बदले कहा—"जो व्यक्ति दिन-रात भगवान् के पास भजन करता है, उसका अहंकार अभी तक क्यों नहीं गया? मैं ऐसे व्यक्ति को प्रणाम करने को कौन कहे, इनके पास भी नहीं जा सकती।"

मुक्ताबाई की बातें सुनकर सभी भाई चौंक उठे। उसे हर तरह से समझाने का प्रयत्न किया गया।

निवृत्तिनाथ ने कहा—"नामदेव ने भक्ति के माध्यम से भगवान् के दर्शन किये हैं। संसार में भक्ति से बढ़ कर दूसरा कुछ नहीं है।"

मुक्ताबाई ने कहा—"हो सकता है कि इनमें भक्ति हो, पर भीतर से ये कोरे हैं। जिस व्यक्ति को यह भी नहीं मालूम कि दूसरे सन्तों से मिलने पर किस तरह का व्यवहार करना चाहिए, वह अगर दिन-रात भगवान् के पास रहता है तो क्या हुआ? पारस के ऊपर अगर खपरैल का ढक्कन रहे तो इससे बावन तोले की माप में कमी नहीं होगी। जो व्यक्ति अमृत छोड़कर काँजी का पान करे तो उसे क्या कहा जाय? गधे को गंगा-स्नान कराने से कोई लाभ होगा? रंगीन गुड़िया देखने में अच्छी लगती है, पर उसके जेवर नकली होते हैं। इनका सन्तपन इसी प्रकार का है। भले ही ये ऊँचे दर्जे के सन्त हैं, पर इनमें ज्ञान का अभाव है।"

बीच में ही टोकते हुए निवृत्तिनाथ ने कहा—"तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए। इतने बड़े सन्त हमारे दरवाजे पर आये हैं, यह हमारा सौभाग्य है। हमें इनका सम्मान करना चाहिए। कम से कम इन्हें 'तू' मत कह।"

लेकिन मुक्ताबाई अपनी जिद पर अड़ी रही। बात बढ़ती गयी। भाईयों ने प्रेम से काफी समझाया, पर मुक्ताबाई टस से मस न हुई। अन्त में इस बात पर झगड़ा होने लगा कि क्या नामदेव की भक्ति हम लोगों से बढ़कर है? इस बात की जाँच करायी जाय।

अब प्रश्न उठा कि यहाँ ऐसा कौन व्यक्ति है जो इस समस्या का समाधान कर सके। भक्ति का मापदण्ड करना असाधारण बात है। उन दिनों वार्शी, पंढरपुर, मंगलवेढ़े और आवढया नागनाथ में अनेक सन्त रहते थे। इन सभी सन्तों में गोरोबा उच्च-कोटि के सन्त थे। सभी लोगों ने एक मत से यह निर्णय लिया कि सन्त गोरोबा को बुलाकर उनसे जाँच करायी जाय।

गोरोबा कुम्हार के पास अनुभव की एक लकड़ी थी। इसके जरिये वे इस बात का पता लगाते थे कि व्यक्ति के ज्ञान का मटका पक्का है या कच्चा? मुक्ताबाई उन्हें बुलाकर अपने साथ ले आई।

सन्त गोरोबा आये। सभी लोगों को एक पंक्ति में बैठने को कहा। इसके बाद हाथ की लकड़ी से सबसे पहले निवृत्तिनाथ के सिर पर आघात किया। कई बार धीरे से फिर एक बार जोर से। इसके बाद क्रमशः सन्त ज्ञानेश्वर, सोपान और मुक्ताबाई के सिर पर चोट की गयी। अन्त में नामदेव को मारते ही वे उस चोट को बर्दाश्त नहीं कर सके। चीखने के बाद अपना सिर सहलाने लगे।

यह देख कर सन्त गोरोबा ने कहा—"यह मटका कच्चा है (ज्ञान का अभाव है)।"

गोरोबा की बातें सुनकर मुक्ताबाई विजय की प्रसन्नता में हँस पड़ी। नामदेव इस अपमान से बड़े दुःखी हुए। आलन्दी में बिना किसी से मिले सीधे पंढरपुर चले आये और विठ्ठल के पास जाकर उनके गले से लिपट कर रोने लगे। उन्होंने निवृत्तिनाथ के भाईयों और बहन को खल, कुटिल आदि कहा। काफी देर तक वे अपने अभिमान भरे क्रोध में भला-बुरा कहते रहे।

कहा जाता है कि नामदेव की पीड़ा देख कर स्वयं पाण्डुरंग भगवान् ने प्रकट होकर कहा—"वत्स, तेरी भक्ति की तुलना नहीं है। तू मेरा प्रिय भक्त है। लेकिन साधना के लिए गुरु द्वारा बताये मार्ग से मोक्ष प्राप्त होता है। बिना गुरु के सफलता नहीं मिलती। तेरे गुरु दारुका वन में स्थित नागनाथ मन्दिर में तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनके पास चला जा। वे तुझे सही मार्ग दिखायेंगे।"

इस प्रवचन को सुनते ही नामदेव का चित्त शान्त हुआ। उन्होंने महसूस किया कि बिना सद्गुरु के साधना सफल नहीं होगी। लेकिन उन्हें यहाँ से जाने में कष्ट हो रहा था। वे अपने विठ्ठल को छोड़ कर कहीं नहीं जाना चाहते थे।

पाण्डुरंग ने इस मनोभाव को समझते ही कहा—"चिन्ता करने की जरूरत नहीं। तुम जहाँ कहीं रहोगे, वही पंढरपुर बन जायेगा और विठ्ठल सदा सहायक बने रहेंगे।"

दूसरे दिन नामदेव आवढया नागनाथ की ओर रवाना हो गये। कहीं कोई दिखाई नहीं दिया। मन्दिर के भीतर प्रवेश करने पर उन्होंने देखा कि एक आदमी शिवलिंग पर पैर रख कर आराम से सोया हुआ है। उसके इस आचरण को देख कर नामदेव क्रुद्ध हो उठे।

पास जाकर नामदेव ने कहा—"अन्धे हो क्या? शिवलिंग पर पैर रख कर सो रहे हो?"

उस व्यक्ति ने कहा—"अरे भाई, नाराज क्यों होते हो? जहाँ ईश्वर न हो, वहाँ मेरे पैर उठाकर रख दो। मुझसे हिला तक नहीं जा रहा है।"

इतना सुनते ही क्रोध में सोये हुए व्यक्ति के पैर पकड़ कर उन्होंने उठाये और एक ओर पटक दिये। नामदेव ने देखा कि एक अन्य शिवलिंग उस व्यक्ति के पैर तले आ गया। इस प्रकार नामदेव ने जितनी बार प्रयास किया, हर बार यही दृश्य उनकी नजरों में दिखाई देता रहा।

अब नामदेव समझ गये कि यही व्यक्ति मेरा वास्तविक गुरु है, जिसका निर्देश भगवान् पाण्डुरंग ने दिया था। आप अपनी शक्ति के द्वारा मेरे भ्रम को दूर कर रहे हैं। तुरन्त उनके चरणों पर अपना मस्तक रखते हुए नामदेव ने कहा—"गुरुदेव, अपराध

क्षमा करें। मैं आपको पहचान नहीं सका। भ्रमवश अपराध हो गया। मुझे ज्ञान दीजिये, परमार्थ दीजिये, शक्ति दीजिये।''

विसोबा खेचर ने आनन्दमयी मुस्कान बिखेरते हुए कहा—''मैं जानता हूँ। भगवत्-कृपा से तुम्हारा आगमन हुआ है।''

इतना कहकर विसोबा खेचर ने नामदेव के सिर पर हाथ रखा। नामदेव को लगा जैसे विद्युत्-गति से कोई शक्ति मस्तिष्क से सारे शरीर में दौड़ गयी। क्षणभर के लिए उनका रूप कुछ और हो गया। बाद में विसोबा ने कहा—''जाओ, स्नान कर आओ। उसके बाद दीक्षा दूँगा।''

अब तक नामदेव विठोबा के अन्धभक्त थे। दीक्षा के बाद उनके ज्ञान का अन्तरपट खुल गया। नामदेव के गुरु विसोबा खेचर सन्त ज्ञानेश्वर की बहन मुक्ताबाई के शिष्य थे।[१]

पंढरपुर वापस आकर नामदेव अपने विट्ठल के प्रति पूर्ण समर्पित हो गये। उन्हें अब यह प्रतीत होने लगा कि अब तक वे अन्धेरे में थे। स्वयं ज्ञानदेव ने नामदेव के बारे में कहा है—''पंढरी का तू प्रेम-भण्डारी है, भक्त भागवत बहुत से सुने। बहुत से हो गये, बहुत से आगे होंगे, पर नामदेव तो केवल प्रेम का पुतला है, अन्तरंग का भक्त है।''

अब नामदेव इतने विट्ठलमय हो गये थे कि उन्हें अपने घर की चिन्ता नहीं सताती थी। एक प्रकार से वे सांसारिक मोह-माया से दूर हो गये थे। इस बारे में एक जनश्रुति है कि राजाई की एक सहेली कमला थी। इसके पति का नाम परिसा भागवत था। इन्होंने रुक्मिणीजी की आराधना कर पारस पत्थर माँग लिया था। इस पत्थर के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता था।

कमला पारसमणि के माध्यम से अपनी गरीबी दूर कर ठाठ से रहती थी। इधर राजाई दाने-दाने को मोहताज थी। बच्चे भूख से रोते-तड़पते रहते थे। नामदेव का ध्यान इस ओर नहीं जाता था। सारी बातें सुनने के बाद कमला ने कहा—''तू इस पारस पत्थर को ले जा। थोड़े से लोहे का सोना बना ले और उसे बेचकर अपनी गृहस्थी ठीक कर ले।''

राजाई पारसमणि लेकर घर वापस आई और थोड़ा-सा सोना बनाया, बाजार में जाकर बेचा और खाने-पीने का सामान खरीद लायी। दोपहर को जब नामदेव आये तब सारी बातें सुनकर उन्होंने पारसमणि को माँग लिया और उसे ले जाकर नदी में फेंक दिया।

इधर पारसमणि को अपनी जगह न देख परिसा भागवत ने पूछताछ शुरू की। भय के कारण कमला ने सारी कहानी सुना दी। पति की आज्ञानुसार वह तुरन्त राजाई

१. विशेष जानकारी के लिये 'सन्त ज्ञानेश्वर' का विवरण देखें।

के घर गयी। राजाई उसे लेकर नदी किनारे उस जगह पहुँची जहाँ नामदेव बैठे करताल बजाते हुए विट्ठल का नाम गा रहे थे।

पारसमणि के बारे में प्रश्न करने पर उन्होंने कहा—"उसे तो मैंने नदी में फेंक दिया। कहो तो निकाल दूँ।"

इतना कहकर नामदेव ने नदी में गोता लगाया और अपनी अंजली में अनेक कंकड़ भर लाये। बोले—"सभी कंकड़ पारसमणि हैं।"

वहाँ खड़े लोग हँसने लगे। दो-एक ने उन कंकड़ों का प्रयोग किया। उससे स्पर्श कराते ही लोहा सोना हो गया। यह दृश्य देखकर परिसा भागवत उनके चरणों पर गिर पड़ा। आगे चलकर यही नामदेव का प्रमुख शिष्य बना।

घर की स्थिति सही नहीं चल रही थी। बच्चे परेशान रहने लगे। पति पर अपनी बातों का असर न होते देख एक दिन राजाई गुस्से से बाहर निकल पड़ी। रास्ते में उसे एक मरा हुआ साँप मिला। उसने सुन रखा था कि साँप में जहर होता है। उसे उठा कर घर ले आयी और हाँडी में उबालने लगी ताकि सभी लोग उस पानी को पीकर मर जायें। इस तरह गरीबी से मुक्ति मिल जाय।

थोड़ी देर बाद ढक्कन खोलने पर उसने देखा कि हाँडी में सोने का साँप था। इतने में नामदेवजी आये और उन्होंने सारा सोना गरीबों को बाँट दिया। बोले—"मेरे गुरु का यही आदेश है।"

नामदेव ने अपने दादा गुरु के बारे में लिखा है—"मेरे ज्ञानराज योगियों की माता हैं, जिन्होंने निगम-वल्ली प्रकट की है। अध्यात्म-विद्या तथा चैतन्य का दीप जलाया है। उन्होंने छप्पन भाषाओं का गौरव बढ़ाया है।"

गुरुमन्त्र लेने के बाद अपने आराध्य विट्ठल से विनयपूर्वक नामदेव कहते हैं—"वाल्मीकि ने आपको लेकर ग्रन्थ लिखा है। मुझे इस बात का दुःख है कि मेरा जीवन व्यर्थ गया। हे विठोबा, अगर मैं तुम्हारा सच्चा भक्त हूँ तो तुम्हारी प्रशंसा में सौ करोड़ 'अभंग' लिखूँगा। वाल्मीकि के युग में मनुष्य की आयु लम्बी होती थी। आजकल बहुत कम हो गयी है। अगर मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सका तो तेरे आगे अपना मस्तक चढ़ा दूँगा।"

नामदेव के अनेक अभंग हैं जो उनकी भक्ति, श्रद्धा, प्रेम तथा जीवन की घटनाओं से सम्बन्धित हैं। नामदेव की एक दासी जनाबाई थी। वह स्वयं भी नामदेव के साथ रहने के कारण विट्ठल-भक्त बन गयी थी। उसने अपने एक अभंग में लिखा है—"ज्ञानदेव के शब्द सच्चिदानन्द बाबा ने लिखे हैं, निवृत्तिनाथ के सोपानदेव ने, मुक्ताबाई के ज्ञानदेव ने, च्यांगदेव के कासार ने, चोखामेला के अनन्त भट ने लिखे हैं। लेकिन नामदेव के अभंग स्वयं भगवान् पाण्डुरंग ने लिखे हैं।"

वस्तुत: नामदेव के सभी अभंग स्वयं नामदेव ने लिखे हैं। जनाबाई के लिए नामदेव के अभंग इतने प्रिय थे कि वह इन्हें पाण्डुरंग के लिखे हुए ही समझती थीं।

नामदेव के गुरु विसोबा खेचर को ख्याल आया कि मेरा शिष्य अपनी साधना में कहाँ तक प्रगति कर सका है, इसकी जाँच करनी चाहिए। सहसा एक दिन नामदेव क्या देखते हैं कि उनके घर के एक हिस्से में आग लगी हुई है। यह देख कर नामदेव ने प्रसन्न-भाव से कहा—''वाह मेरे विट्ठल! आप आये तो पीछे से। लो, मेरा सर्वस्व ले लो, ताकि मैं इनकी माया से दूर हो जाऊँ। सब तेरा ही है।''

यह बातें कहते हुए वे घर की सामग्री एक-एक करके आग में फेंकने लगे। थोड़ी ही देर में आग बुझ गयी। वहाँ स्वयं विट्ठल प्रकट हो गये। अपने भक्त की चीजों को उठा कर एक ओर रखने लगे।

इसी प्रकार एक बार आप किसी जंगल में भोजन बना रहे थे। भोजन बनाने के बाद जब हाथ-मुँह धोकर जीवने बैंठे तो देखा—एक कुत्ता रोटी लेकर भाग रहा है। तुरन्त नामदेव उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़े।

—''ठहर जाओ मेरे विट्ठल, यह रोटी सूखी है। जरा घी लगा दूँ वर्ना खाने में कष्ट होगा।''

एकाएक वह कुत्ता गायब हो गया और वहाँ सन्त नामदेव के आराध्य प्रकट हो गये। उन्होंने कहा—''तुम मेरी सेवा में कितने पक्के हो गये हो, इसकी परीक्षा विसोबा ले रहा था। जाओ, अब कोई भय नहीं है।''

नामदेव भावविभोर होकर कहने लगे—''कमर पर हाथ रख कर खड़े हो, घर लेने वाले? मेरा हिसाब कर दो। हे केशव, मैंने चौरासी लाख योनियों में तेरी सेवा की है। अब मेरा कर्जा चुकाओ वर्ना मैं तेरे सेवकों को पकड़ूँगा। अगर आप मुझे तंग करोगे तो मैं आपके चरणों से लिपट जाऊँगा।''

ठीक इन्हीं दिनों सन्त ज्ञानेश्वर पंढरपुर आये। यहाँ उनके आने का उद्देश्य था—नामदेव को अपने साथ लेकर तीर्थयात्रा के लिये चलने को कहना। इनके साथ और भी सन्त आ रहे थे।

नामदेव ने कहा—''मैं अपने विट्ठल को छोड़कर कहीं नहीं जा सकता। मेरा तीर्थ, मेरे आराध्य सब कुछ यही हैं। इन सबको छोड़कर कैसे जाऊँ?''

नामदेव का भगवद्-प्रेम देखकर सन्त ज्ञानेश्वर को कहना पड़ा—''हरिदासों में तुम बिल्कुल निराले हो, प्रेम के पुतले हो। वास्तव में तुम विट्ठल के पुत्र हो। हे नामदेव, तुम हम सब पर कृपा करो।''

नामदेव विट्ठल की मूर्ति से जा लिपटे। सहसा उन्हें लगा जैसे उनसे विट्ठल कह

रहे हों—"योगिराज सन्त ज्ञानेश्वर के साथ तीर्थयात्रा कर आओ। यह अवसर मत छोड़ो। तुम मेरे प्रिय भक्त हो।"

अपने विट्ठल से यह आदेश पाते ही उन्होंने सन्त ज्ञानेश्वर से कहा—"हे प्रभो, मैं तैयार हूँ। पाण्डुरंग ने मुझे अनुमति दे दी है।"

योगिराज सन्त ज्ञानेश्वर के साथ नामदेव सबसे पहले कृष्ण की पुरी द्वारकाधाम गये। यहाँ से प्रभास तीर्थ, मारवाड़ होते हुए बीकानेर जिले के कोलादजी गाँव में आये।

यहाँ आने पर सन्त ज्ञानेश्वर को प्यास लगी। कुएँ में पानी कम था। सन्त ज्ञानेश्वर कुएँ के भीतर चले गये। वहाँ स्वयं पीने के बाद अन्य लोगों के लिए पानी लेते आये।

जब सन्त ज्ञानेश्वर ने नामदेव से पानी पीने का आग्रह किया, तब उन्होंने कहा—"मुझे प्यास लगी है और मेरे विठोबा को इसकी चिन्ता नहीं है। जब तक वे पानी नहीं देंगे, तब तक मैं पानी नहीं पिऊँगा। नीचे उतर कर पीने भी नहीं जाऊँगा।"

नामदेव के इस हठ को देख कर सभी सन्त अवाक् रह गये। एकाएक लोगों ने देखा कि कुआँ पानी से लबालब भर ही नहीं गया; बल्कि एक ओर से बह रहा है।

नामदेव की इस साधना को देख कर सन्त-मण्डली विस्मित हो उठी। ज्ञानदेव ने कहा—"आपकी भक्ति और साधना को देख कर हम चकित हैं। भक्तों का ख्याल भगवान् कितना रखते हैं, इसके ज्वलंत उदाहरण आप हैं। हम सब आपके सामने नतमस्तक हैं।"

जिस कुएँ में यह चमत्कार हुआ था, आज भी वहाँ है। स्थानीय लोग इस कुएँ की चर्चा करते रहते हैं।

यात्रा करते हुए नामदेव जहाँ भी जाते वहीं नाम-कीर्तन करते थे। योगिराज सन्त ज्ञानेश्वर के अलावा अन्य अनेक सन्त आपके साथ थे। कीर्तन करते-करते नामदेव को समाधि लग जाती थी।

यात्रा करते हुए ये लोग काशी आये। उन दिनों यहाँ पण्डित मुद्गलाचार्यजी यज्ञ कर रहे थे। ठीक इन्हीं दिनों यह सवाल उठा कि अग्रपूजा का सम्मान किसे दिया जाय। इस यज्ञ में भाग लेने के लिए अनेक वेदपाठी, याज्ञिक ब्राह्मण भारत के विभिन्न शहरों से आये हुए थे। सभी यह सम्मान स्वयं पाना चाहते थे। अन्त में यह निश्चय किया गया कि एक हस्तिनी की पूजा करके उसे माला दे दी जाय। वह जिस व्यक्ति के गले में माला डाल देगी, उसी को अग्रपूजा का सम्मान दिया जायेगा।

हथिनी की सूँड़ में माला पहनाकर मुद्गलाचार्य आदि उसके पीछे-पीछे चल पड़े। कई लोग हाथी के सामने आकर खड़े हुए ताकि वह उन्हें माला पहना दे, पर किसी को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। नगर के बाहर आते ही एक किशोर सन्त के गले में हथिनी ने माला डाल दी। वह सन्त थे—निवृत्तिनाथ।

लोगों ने मुद्गलाचार्यजी से कहा कि हथिनी आखिर जानवर है। एक अनजान व्यक्ति के गले में माला पहना देने से वह अग्रपूजा का अधिकारी नहीं हो सकता।

ब्राह्मणों के इस आक्रोश को देखकर नामदेव ने पूछा—"आप कैसा अधिकारी पुरुष चाहते हैं?"

एक ब्राह्मण ने कहा—"हम ऐसे अधिकारी पुरुष को चाहते हैं, जो यज्ञ का प्रसाद अपने हाथ लेकर स्वयं भगवान् विश्वनाथ को खिला सके।"

नामदेव ने कहा—"आपकी शुभकामना से ऐसा ही होगा।"

निवृत्तिनाथ ने यज्ञ का प्रसाद अपने हाथ में लिया और लोगों के साथ-साथ विश्वनाथ मन्दिर आये। मन्दिर में आकर निवृत्तिनाथ ने कहा—"प्रभो, मैं तो तीर्थयात्रा करने आया था। आपकी प्रेरणा से ही हथिनी ने मेरे गले में माला डाल दी। अब आप मेरी रक्षा करें।"

इतना कहना था कि अचानक भगवान् शंकर प्रकट हुए। उन्होंने निवृत्तिनाथ से प्रसाद ग्रहण किया। इस प्रकार यज्ञ-कार्य सम्पन्न हुआ।

तीर्थयात्रा समाप्त करने के बाद एक बार पुनः उस मन्दिर में आये जहाँ उन्हें अपने गुरु विसोबा खेचर से मन्त्र प्राप्त हुआ था। मुख्य दरवाजे के सामने वाले प्रांगण में सन्तों के साथ कीर्तन करने लगे।

नित्य प्रातःकाल स्थानीय ब्राह्मण भक्त-दर्शन करने आते हैं। सन्तों की भीड़ के कारण उन्हें मन्दिर के भीतर जाने में असुविधा होने लगी। यह देख कर पण्डों ने कहा—"यह क्या तमाशा है। रास्ता घेर कर आप लोग कीर्तन कर रहे हैं।"

पण्डों में किसी को यह मालूम था कि नामदेव दर्जी (अछूत) हैं। उसने जाति का भी ताना दिया। उसके इस आचरण से नामदेव मन ही मन खिन्न होकर कहने लगे—

"गन्दी जमीन पर तुलसी का पौधा जन्म लेता है, पर उसे अपवित्र नहीं माना जाता। कौए की विष्ठा से पीपल का वृक्ष जन्म लेता है, इसे भी अमंगल नहीं समझा जाता। अगर दासी-पुत्र को राजगद्दी मिलती है, तब उसे दासी-पुत्र नहीं कहा जाता। मैं दर्जी जाति का जरूर हूँ पर मुझे जाति का ताना न मारिये।"

जाति का दर्जी है जानकर अन्य सभी ब्राह्मणों ने इन्हें खदेड़कर पीछे भगा दिया। लाचारी में सभी लोग मन्दिर के पीछे आकर कीर्तन करने लगे। थोड़ी ही देर में भावविभोर नामदेव कहने लगे—"हे विट्ठल, क्यों तुमने मुझसे रूठ कर मुँह मोड़ लिया है? मेरे सामने आओ, मुझे दर्शन दो। मेरी ओर पीठ करके मत रहो। इन सन्तों पर कृपा करो जगत्-पिता।"

उपस्थित लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा कि मन्दिर का जो दरवाजा पूर्व की ओर

था, धीरे-धीरे घूम कर पश्चिम की ओर हो गया। आज भी आवढया नागनाथ का मन्दिर पश्चिमाभिमुख है।

नामदेव चमत्कार दिखाने के पक्षपाती नहीं थे। उनका कहना था कि इससे साधकों की शक्ति क्षय हो जाती है। विट्ठल की कृपा से जो अपने-आप हो जाता है, वही ठीक है।

महाराष्ट्र में 'भागवत-धर्म' को 'वारकरी-पंथ' कहा जाता है। इस पंथ की नींव सन्त ज्ञानेश्वर ने रखी। कुछ लोगों का विश्वास है कि इस धर्म के संस्थापक सन्त नामदेव थे। लेकिन अब यह धारणा गलत प्रमाणित हो चुकी है। सन्त तुकाराम की शिष्या वहिणी देवी ने अपने एक अभंग में लिखा है कि 'भागवत-धर्म' की नींव सन्त ज्ञानेश्वर ने रखी और इसे पल्लवित किया—सन्त नामदेव ने।

हरिशयन तथा देवोत्थान एकादशी के दिन इस धर्म के अनुयायी चारों ओर से आते हैं और पूजा-कीर्तन करते हैं।

तीर्थयात्रा समाप्त करने के बाद नामदेव पुनः पंढरपुर में अपने विट्ठल के पास आ गये। इस प्रकार वे अपने विट्ठल के सामने समर्पित जीवन व्यतीत करने लगे।

सहसा एक समाचार ने सम्पूर्ण महाराष्ट्र को उद्वेलित किया। सन्त ज्ञानेश्वर ने घोषणा की है कि अब वे समाधि लेंगे। बाल-योगी की समाधि देखने के लिए दूर-दूर से सन्त आने लगे। सन्त ज्ञानेश्वर द्वारा समाधि लेने की घोषणा ने नामदेव के हृदय को मथ डाला। विगत कई महीने नामदेव के सम्पर्क में रहने के कारण उन्हें परम योगी समझते रहे। उन्होंने अपने अभंग में इस घटना का अद्भुत वर्णन किया है।

श्री माधव गोपाल देशमुख ने लिखा है—"इस प्रसंग का नामदेव ने जो वर्णन किया है, वह 'समाधि के अभंग' के नाम से मराठी-साहित्य में अजर-अमर है। ज्ञानेश्वर की समाधि के समय का सूक्ष्म विवरण इन अभंगों में अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से वर्णित है। उनमें करुण-रस ओतप्रोत है। नामा कहता है—'अब दिनकर लुप्त हुआ। बाप ज्ञानेश्वर समाधिस्थ हुआ।' इस घटना का नामदेव पर कल्पनातीत प्रभाव पड़ा। चीटियों के बिल में आग लग जाने पर, नदी की मछलियों को मादक द्रव्य खिलाने पर उनकी जैसी तिलमिलाहट होती है, वैसा सारा जनमन उद्वेलित हुआ।"

इस घटना के कारण नामदेव अत्यन्त मर्माहत हो उठे। एक समय था जब वे अपने विट्ठल को छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहते थे। विट्ठल से आज्ञा मिलने पर ही वे तीर्थयात्रा करने गये और अब सन्त ज्ञानेश्वर से बिछुड़ने के कारण उनका मन इतना उचाट हो गया कि महाराष्ट्र को हमेशा के लिये त्यागकर उत्तर की ओर चल पड़े।

राजस्थान पार कर वे पंजाब चले आये। सबसे पहले अमृतसर जिले के 'भूतपिण्ड' गाँव में आये। यहाँ बहोरदास नामक एक व्यक्ति उनका शिष्य बना। बाद में

भट्टीवाल गये। यहाँ जिस तालाब के किनारे नामदेव ठहरे उसे आज भी 'नामियाना तालाब' कहते हैं। यहाँ भी इनके कई शिष्य बने। लोगों की भीड़भाड़ से तंग आकर यहाँ से जंगल के भीतर चले गये।

उन दिनों वहाँ कोई बस्ती नहीं थी। दिन-रात जंगली जानवर चलते-फिरते नजर आते थे। यहाँ एकांत में वे अभंग लिखते रहे। आश्चर्य की बात यह है कि नामदेव के अभंग केवल मराठी में ही नहीं, बल्कि पाँच भाषाओं में हैं। मराठी, कन्नड़ी, कोंकणी, मुसलमानी (उर्दू नहीं) और गुजरी भाषा में उन्होंने श्रीकृष्णलीला के चीरहरण-प्रसंग का वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में महीपति ने लिखा है—"जिस-जिस देश में तीर्थ करने गये, वहाँ वैसी करने लगे कविता।"

सतलज नदी के पार धरोचा नामक नगर था। यहाँ घुमान जाति के जाट रहते थे। बाद में नामदेव यहाँ आकर रहने लगे। आज जहाँ घुमान गाँव बसा हुआ है, पहले वहाँ भयानक जंगल था। यहाँ सन्त नामदेव के नाम पर स्मृति-मन्दिर बना हुआ है।

नामदेव की उम्र जब ८० वर्ष हो गयी तब उनकी आत्मा ने समाधि लेने की आज्ञा दी। वे पंजाब में समाधि नहीं लेना चाहते थे। फलत: वे पंढरपुर वापस आ गये और अपने विट्ठल से कहा—"प्रभो, अब मुझे अपने चरणों में स्थान देने की कृपा करें। मेरी आयु समाप्त हो रही है। वायदे के अनुसार अभंग लिखने का कार्य मैंने पूर्ण कर लिया है।"

१३५० ई० में उन्होंने पंढरपुर के देवालय के सामने प्राण तज दिये। कुछ लोग परभणी तथा घुमान स्थित समाधि को नामदेव की समाधि कहते हैं, पर अब यह धारणा निर्मूल सिद्ध हो चुकी है।





८

सन्त रविदास

नित्य की भाँति स्वामी रामानन्द ब्रह्म मुहूर्त में गंगा स्नान करने के बाद आश्रम में आये। उनकी कुटिया में पूजन-सामग्री पहले से ही शिष्यों ने ठीक करके रख दी थी। पूजन के बाद जब स्वामी रामानन्द ध्यानस्थ हुए तब न जाने क्यों उनका मन स्थिर न हो सका। उन्हें लगा जैसे कोई अज्ञात-शक्ति आसन छोड़ने के लिए बाध्य कर रही हो। ऐसा क्यों हो रहा है? इसे समझने के लिए इष्ट नाम-जप करते हुए पुनः ध्यानस्थ हो गये।

थोड़ी ही देर बाद उनकी अतीन्द्रिय-शक्ति ने उन्हें कारण बता दिया। जमीन से माथा टेक कर उन्होंने भगवान् को प्रणाम किया और अपनी कुटिया से बाहर निकल आये।

इतनी जल्दी गुरुजी को बाहर आते देख अधिकांश शिष्यों को आश्चर्य हुआ। सभी शिष्य यह जानते हैं कि गुरुजी सूर्योदय के बाद अपनी कुटिया से बाहर निकलते हैं।

पास खड़े एक शिष्य से उन्होंने कहा—"रामशरण, मैं एक आवश्यक कार्य से नगर के बाहर जा रहा हूँ। वहाँ से वापस आने के बाद पुनः पूजन करूँगा। जो सामग्री जहाँ है, उसी तरह रहने देना।"

स्वामी रामानन्द आश्रम से बाहर निकल गये। देर तक उनकी खड़ाऊँ की आवाज सन्नाटे को भंग करती रही।

नगर से बाहर आकर वे पश्चिम दिशा की ओर बढ़ते गये। काफी दूर आने के बाद हरिजनों की बस्ती मिली। उस बस्ती का नाम था—मडुआडीह। इस गाँव में अधिकतर चर्मकार रहते हैं और जूते बनाते हैं। अपने गाँव में प्रातःकाल नगर के स्वनामधन्य स्वामीजी को देखकर चमारों को विस्मय हुआ। जो लोग स्वामी रामानन्द को पहचानते थे, वे दूर से जमीन पर माथा टेक कर प्रणाम करने लगे। जिस व्यक्ति का दर्शन पाने के लिए राजा-महाराजा से लेकर सन्त लोग व्याकुल रहते हैं, आज वही व्यक्ति उनकी बस्ती में आया था।

स्वामीजी ने एक वृद्ध से पूछा—"क्यों भगत, किसके घर अभी हाल में बच्चा पैदा हुआ है?"

वृद्ध ने कुछ देर सोचने के बाद अपनी भाषा में कहा—"मुझे नहीं मालूम महाराज!"

तभी एक युवक ने कहा—"रग्घू दादा के यहाँ १५-२० दिन हुए एक बच्चा पैदा हुआ है।"

स्वामी रामानन्द ने कहा—"मुझे रग्घू के घर जाना है। आओ मेरे साथ।"

स्वामीजी अचानक रग्घू के घर क्यों जा रहे हैं, लोग समझ नहीं पाये। उत्सुकतावश कई व्यक्ति स्वामी रामानन्दजी के पीछे-पीछे चल पड़े। एक बालक रग्घू के यहाँ स्वामीजी के आने की सूचना देने के लिए दौड़ गया।

रग्घू अपने दरवाजे के पास कौतूहलभरी दृष्टि से अपलक देखता रहा। स्वामीजी के पास आते ही उसने जमीन पर माथा टेककर प्रणाम किया।

स्वामीजी ने कहा—"आयुष्मान् भव। कहो भगत, क्या हालचाल है? सुना है कि बाप बन गये हो।"

"सब आपके आशीर्वाद से कुशल है, महाराज! आपके आगमन से मेरी कुटिया आज पवित्र हो गयी।"

स्वामीजी ने कहा—"ठीक है, भगवान् सभी का कल्याण करते हैं। जरा अपने बच्चे को ले आओ।"

रग्घू गोद में उठाकर बच्चे को ले आया और कहा—"महाराज, जब से पैदा

हुआ है, तब से न माँ का दूध पीता है और न ऊपर का। भगवान् जाने बचेगा या नहीं।''

स्वामीजी बड़े गौर से बच्चे के शरीर में अंकित लक्षणों[१] को देख रहे थे। कुछ देर के बाद वे आनन्दित होते हुए बोले—''भगत, बड़ा भाग्यवान बालक है। क्या नाम रखा है, इसका?''

रग्घू ने कहा—''अभी तो पैदा हुआ है महाराज! अभी से क्या नाम रखें।''

''किस दिन पैदा हुआ है।''

''इतवार (रविवार) के दिन।''

स्वामीजी ने कहा—''मैं एक बात कहूँ, मानोगे? जब रविवार को पैदा हुआ है, तब इसका नाम रविदास रख दो।''

रग्घू ने हँसकर कहा—''अब भला महाराज हम आपकी बात कैसे टाल सकते हैं। आप अन्तर्यामी महात्मा ठहरे और हम सेवक हैं। मगर यह अभी तक माँ का दूध जब नहीं पी रहा है, तब बचेगा कैसे?''

स्वामी रामानन्द ने बच्चे के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—''बेटा रविदास, माँ का दूध अमृत होता है। जाओ, माँ का दूध पीयो।''

स्वामीजी के जाने के बाद रविदास अचानक रोने लगा। रग्घू की पत्नी घुरबनिया बच्चे को गोद में उठाकर चुप कराने लगी। अचानक उसे लगा जैसे बच्चा उसके स्तन को खोज रहा है। ज्योंही स्तन मुँह से लगाया, त्योंही वह दूध पीने लगा। यह दृश्य देखकर घुरबनिया चीखती हुई बोली—''सुनते हो, बच्चा दूध पीने लगा है।''

रग्घू ने कहा—''उसे पीना ही पड़ेगा। महाराजजी आशीर्वाद जो दे गये हैं।''

धीरे-धीरे बालक बड़ा होता गया। गाँव के लोग रविदास की जगह रैदास कहने लगे। काशी की एक परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है। विद्या की नगरी होने पर भी केवल वे ही लोग लिख-पढ़ पाते हैं, जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं या वंश-परम्परा से जिनके यहाँ अध्ययन होता आ रहा है। गरीब तथा पिछड़ी जाति के लोग यह मानकर चलते हैं कि शिक्षा से मेरे परिवार की कोई भलाई नहीं होगी। इसके बदले कहीं काम पर लग जाय तो जीवन में अपने भोजन की व्यवस्था स्वयं कर लेगा। रविदास के जीवन में यही घटना हुई। रग्घू ने अपने पुत्र को जूते सीने के कार्य में लगाया।

'चमरठा गाँठ न जनई, लोग गठावें पनही' पद से ज्ञात होता है कि रविदास जूते

१. महापुरुषों में जन्मजात कुल ३२ लक्षण होते हैं। पाँच सूक्ष्म, पाँच दीर्घ, सप्त स्थान रक्तिम होते हैं। छह स्थान उन्नत, तीन ह्रस्व, तीन वितृष्ण और तीन गम्भीर होते हैं। ईश्वर से प्राप्त इन लक्षणों के आधार पर व्यक्ति महापुरुष, योगी, सन्त और प्रतिभावान् बनते हैं।

नहीं बनाते थे, बल्कि मरम्मत का काम करते थे। लेकिन उनका मन इस कार्य में नहीं लगता था। वस्तुतः उनमें प्रकृति-प्रदत्त ब्रह्मविषयक ज्ञान का विकास बचपन से ही प्रारम्भ हो गया था।

दिनभर में जो कुछ उपार्जन करते, उस रकम को साधु-सन्तों को दान कर देते थे। रग्घू को यह ज्ञात था कि उनका पुत्र जिस चौराहे पर बैठ कर काम करता है, वहाँ काम की कमी नहीं रहती। रकम भी काफी मिलती है, पर न जाने उसका क्या कर डालता है। अपनी इस आदत के कारण रविदास को बराबर झिड़कियाँ सुननी पड़ती थीं।

एक दिन घुरबनिया ने कहा कि इसकी शादी कर दो तब कमाई की तरफ ध्यान देगा। अभी तो सोचता है कि बाप हैं, किस बात की फिक्र है। बहू आ जायेगी तो खुद ही कमाने की फिक्र करेगा। पत्नी की बात में गहराई है। यह सोचकर रग्घू ने रविदास का विवाह कर दिया।

एक अर्से तक रग्घू शान्त रहा। लेकिन जब उसने यह अनुभव किया कि रविदास के चरित्र में कोई अन्तर नहीं आया, तब वह बौखला उठा और एक दिन घर से सपत्नीक निकाल दिया।

रविदास ने इसे भाग्य का परिहास समझकर अपना लिया। वे अपने पिता के मकान के पीछे एक सामान्य झोपड़ी बनाकर रहने लगे। इस सम्बन्ध में रामानन्द के शिष्य चेतनदास ने लिखा है—

बड़ भयौ तब न्यारौ कीनौ, बाँटै आवै सो बाँटि न दीनौ।
राध्या बावरी के पछिवारे, कछु न कहयौ रैदास विचारे॥
सीधो चाम मोलि लै आवै, ताकि पनही अधिक बनावै।
टूटे-फाटे जरवा जोरे, मसकत कारि काहु न निहारै॥

रग्घू का ख्याल था कि परिवार से अलग कर देने पर उसे आटे-दाल का भाव मालूम हो जाएगा। भगत बनने का नशा हिरण हो जायेगा। लोना (रविदास की पत्नी) उसे इतना तंग करेगी कि उसे दिन-रात मेहनत करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। लेकिन उसकी यह धारणा निर्मूल सिद्ध हुई। लोना भी रविदास के रंग में रंग गयी।

सन्त रैदास की तरह लोना अपने समाज में आज भी प्रतिष्ठित है। उसे देवी के रूप में लोग पूजते हैं।[१]

---

१. आज भी छोटी जातियों में कोई बीमार पड़ता है, तब वे इलाज कराने के पहले या बीमारी के दौरान ओझा बुलाते हैं जो 'लोना' चमाइन का मन्त्र पढ़ता है। औरतें इस बात पर विश्वास करती हैं कि लोना बच्चों का सुखण्डी रोग दूर कर देती है। अगर किसी बच्चे को उनका आशीर्वाद मिल जाय तो वह दीर्घजीवी तथा स्वस्थ रहता है। वे अपुत्र को पुत्र देती हैं। एक प्रकार से लोना आज भी इस समाज में प्रतिष्ठित है।

धीरे-धीरे दिन गुजरते गये। एक दिन पिताजी की जबानी उसे यह ज्ञात हुआ कि बचपन में वह माँ का दूध नहीं पीता था। अचानक एक दिन स्वामी रामानन्द आये और उन्होंने उसे आशीर्वाद दिया, उसी दिन से वह माँ का दूध पीने लगा। उन्होंने उसका नाम रविदास रखा है।

स्वामी रामानन्द की कृपा से वह दूध पीने लगा—यह बात सुनकर एक दिन शहर आया और स्वामीजी के आश्रम में जाकर कहा—भगवन्, आपका सेवक आपसे आशीर्वाद लेने आया है। मुझे ज्ञान दीजिये—

सन्त तुझी तन संगति प्रान, सतगुरु ज्ञान जानै सन्त देवादेव।
सन्त ही संगत, सन्त कथारस, सन्त प्रेमि मोहि, दीजै देवादेव॥

रामानन्द ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा—"रविदास, मैं तुम्हें जन्म-जन्मान्तरों से जानता हूँ। यही तुम्हारा आखिरी जन्म है। तुम सर्वदा राम-राम जपते रहो। इस नाम की महिमा अपरम्पार है। इसके जप से ही अजामिल और वाल्मीकि मुनि का उद्धार हुआ। भगवान् तुम्हारा कल्याण करेगा।"

अपने गुरु रामानन्द से आशीर्वाद पाकर रविदास कृतकृत्य हो गये—

रामानन्द मोहि गुरु मिल्यो, पाये ब्रह्मविसास।
रामनाम अमीरस पिऔ, रैदास भयौ पलास॥

स्वामी रामानन्द से आशीर्वाद पाने के बाद रैदास प्रभु-भक्ति में लीन हो गये। मध्यकालीन सन्तों में अधिकतर सन्त कवि पिछड़ी जातियों के थे, जो अपने जीवन की पाठशाला में अध्ययन करने के पश्चात् तत्कालीन रूढ़िवादी समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाए। नामदेव दर्जी, कबीर जुलाहा, सैन नाई, सदन कसाई थे। इनके अलावा अनेक मुसलमान कवियों ने अपना योगदान दिया।

ब्रह्मन बैस सूद अरु ख्यत्री डोम चण्डार मलेछ मन सोई।
होई पुनीत भगवन्त भजत ते आपु तारि तारे कुल दोई॥
पण्डित सूर छत्रपति राजा भगत बराबरी अउरु न कोई।
जैसे पुरैन पात रहै जल समीप भनि रविदास जनमे जगि ओइ॥

घर के पास ही भगवान् की मूर्ति बनाकर वे सपत्नीक भजन किया करते थे। उनकी भक्ति इतने ऊँचे दर्जे की थी कि स्वयं कबीरदास ने एक जगह कहा है—'सन्तन में रैदास सन्त हैं।' सन्त रैदास की प्रभु-भक्ति और विश्वास देखकर एक बोधकथा की याद आती है। एक भक्त थे जो नित्य राम की पूजा करते थे। काफी दिनों तक पूजा करने के बाद भी उनकी मनोकामना पूरी नहीं हुई तब राम के बदले शिव की मूर्ति रखकर पूजा करने लगे।

एक दिन पूजा करने के बाद धूपबत्ती घुमाते समय उनके मन में यह विचार

आया कि मैं धूपबत्ती तो शिव को सुँघा रहा हूँ, पर इसे राम की मूर्ति भी सूँघती होगी। झट राम की नाक में रुई घुसेड़ दी।

तुरन्त राम प्रकट हो गये। यह देखकर भक्त ने कहा—"प्रभो, इतने दिनों से पूजा करता रहा, पर इस दास को आपने कभी दर्शन नहीं दिये। आज नाक में रुई डालते ही प्रकट हो गये। अगर आपको रुई पसन्द थी तो मुझे इशारा करते।"

राम ने कहा—"ऐसी बात नहीं है। अब तक तुम मुझे केवल मूर्ति समझते रहे। आज तुम्हें इस बात का ज्ञान हुआ कि मैं ही इस मूर्ति में स्थित हूँ, तभी प्रकट हुआ।"

जिन सन्तों को ईश्वरीय शक्ति प्राप्त हो जाती है, वे दुःख में न तो घबराते हैं और न सुख में प्रसन्न होते हैं। प्रत्येक स्थिति में उनकी यही धारणा बनी रहती है कि जो कुछ हो रहा है, वह सब प्रभु की लीला है। भगवान् अपने भक्तों की परीक्षा बराबर लेते रहते हैं।

एक बार सन्त रविदास के यहाँ एक अपरिचित सन्त आये। इनकी भक्ति तथा कथा कहने के ढंग से वे प्रभावित हुए। दूसरी ओर इनकी गरीबी देखकर मर्माहत हुए। उन्होंने कहा—"रैदासजी, मैं आपको एक पत्थर देना चाहता हूँ। इससे आपका कल्याण होगा। आपकी आर्थिक स्थिति सुधर जायेगी।"

रैदासजी उस वक्त जूते बना रहे थे। उन्होंने निःस्पृह-भाव से पूछा—"वह कैसे महाराज?"

सन्त ने कहा—"यह पारस पत्थर है। लोहे को छूने पर सोना बना देगा। उसे बेचकर तुम अपनी गृहस्थी सुधार लोगे।"

रैदास ने सन्त की ओर देखते हुए कहा—"अच्छी बात महाराज! आपने बड़ी कृपा की। कृपया आप मेरी झोपड़ी में ऊपर कहीं खोंस दीजिये। इस वक्त हाथ गन्दे हैं। बाद में काम ले लूँगा।"

काफी दिनों बाद जब वह सन्त पुनः काशी आए तो रैदास को अपनी पुरानी स्थिति में ही देखा। उन्होंने आश्चर्य से पूछा—"यह क्या हालत है तुम्हारी? मैं तुम्हें पारस पत्थर दे गया था, क्या उसका उपयोग नहीं किया या खो गया।"

रैदास ने कुछ सोचते हुए कहा—"महाराज, मैंने उसका उपयोग नहीं किया। मेरे प्रभु जो कुछ मुझे देते हैं, उसी से सन्तुष्ट हूँ। आप जहाँ रख गये थे, शायद अभी तक वहीं है। कृपया इसे आप ले जाइये। मेरे जैसे व्यक्ति के लिये किसी काम का नहीं।"

सन्त रैदास के जीवन पर बनारसी अक्खड़ता का प्रभाव रहा। आज भी आर्थिक दृष्टि से कमजोर व्यक्ति भी नैतिकता की दृष्टि से प्रखर बने रहते हैं। रैदास सर्वदा अपने प्रभु के निकट नतमस्तक होते थे। उन्हें अपनी गरीबी प्रिय रही। उन्होंने कभी किसी

बात पर गर्व नहीं किया, यहाँ तक कि अपनी जाति और कर्म का परिचय अपनी रचनाओं में बराबर देते रहे।

मेरी जाति कमीनी पाँति कमीनी ओछा जनमु हमारा।
तुम सरनागति राजा रामचंद कहि रविदास चमारा॥
जाति भी ओछी करम भी ओछा, ओछा किसब हमारा।
नीचे से प्रभु ऊँच कियो है, कह रैदास चमारा॥

डंके की चोट पर रैदास ने अपनी जाति की घोषणा करते हुए अपने कार्य को 'ओछा' भी कहा है। वे इस बात से अच्छी तरह परिचित थे कि सारा भेदभाव यहीं है, प्रभु के दरबार में नहीं। प्राचीनकाल से ही काशी में कुछ रूढ़िवादी लोग यह पसन्द नहीं करते थे कि कोई भी व्यक्ति प्रतिभा, ज्ञान, धर्म आदि के क्षेत्र में उनसे आगे निकल जाय।

एक मोची की बढ़ती हुई ख्याति से उन्हें चिढ़ हो गयी। रैदास को शास्त्रार्थ में ललकारा नहीं जा सकता था। सामाजिक विरोध से उसे जाति से निकाला भी नहीं जा सकता था। एक मोची को मारना, अपना हाथ गन्दा करना था। फलतः उसकी शिकायत काशी-नरेश से की गयी।

काशी के पण्डितों का उग्र विरोध देखकर नरेश ने निर्णय दिया—नागरिकों में धर्म-प्रचार का अधिकार क्या केवल ब्राह्मणों को ही प्राप्य है? इस बात का निर्णय करने के लिए उन्होंने घोषणा की कि काशी के विद्वत्जनों की एक सभा होगी, जिसमें नगर के प्रतिष्ठित नागरिक उपस्थित रहेंगे।

पण्डितों ने सोचा—राजा और विद्वत्जनों के बीच किसी भी व्यक्ति से शास्त्रार्थ किया जा सकता है। एक अपढ़ मोची क्या शास्त्रार्थ करेगा। उसे धर्मशास्त्र के बारे में कितनी जानकारी है? एक प्रकार से वे रैदास से निश्चिन्त हो गये।

निश्चित दिन महल के बाहर बाग में विद्वत्जन, नागरिक, राजा और रैदासजी आये। शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। पूर्वपक्ष पण्डितों ने किया जिसका उत्तर रैदासजी ने दिया।

विद्वत्जनों ने सन्तोषजनक निर्णय देकर रैदास से प्रश्न करने को कहा। रैदास द्वारा पूछे एक भी प्रश्न का उत्तर पण्डित-समाज नहीं दे सका। उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ।

साधारण नागरिकों को इसमें आनन्द मिला। उन्होंने अनुरोध किया कि सिंहासनारूढ़ भगवान् की मूर्ति सभा में लायी जाय। दोनों पक्ष आह्वान करें। जिसके आह्वान पर मूर्ति गोद में आकर बैठ जायेगी, उसे विजयी माना जायेगा। पराजित पक्ष विजयी व्यक्ति को सिंहासन पर बैठाकर नगर में घुमायेगा।

जनता के इस अनुरोध पर पण्डितों ने अनमने ढंग से स्वीकार किया, क्योंकि वे यह जानते थे कि ऐसा होना सम्भव नहीं है। पर राजा के सामने विरोध करना उचित नहीं।

पहले पण्डितों ने आह्वान किया, पर मूर्ति निश्चल रही। बाद में रैदास ने भावविभोर होकर गाना शुरू किया—

ऐसो लाल तुझ बिन कौन करे।
दीनदयाल गुसाइयाँ, मेरे आये छत्र धरे॥

सिंहासन से वह मूर्ति उछल कर रैदास की गोद में आकर गिरी। पण्डितों का चेहरा उतर गया। उपस्थित नागरिक उत्तेजनावश जय-जयकार करने लगे। पण्डितों को विवश होकर रैदास को सिंहासन पर बैठा कर घुमाना पड़ा।

काशी में हुई इस घटना का समाचार दूर-दूर तक फैल गया। दलितों में प्रसन्नता की लहर फैल गयी। गली-गली में रैदास के गीत गूँजने लगे।

कहा जाता है कि इसी तरह की एक घटना प्रयाग में भी हुई थी। उन दिनों प्रयाग में कुम्भ मेला लगा हुआ था। उस समय तक रैदास की ख्याति चारों ओर फैल गयी थी। जगह-जगह लोग रैदास के श्रीमुख से कथा और भजन सुनते थे। प्रयाग में भी उनका व्यापक सम्मान होने लगा। यह दृश्य देख कर वहाँ के पण्डित कुढ़ गये।

उन लोगों ने घोषणा की कि प्रयाग के पण्डित तथा रैदासजी शालिग्राम की एक-एक मूर्ति गंगा में प्रवाहित करेंगे। जिसकी मूर्ति नहीं डूबेगी, वही भगवान् का असली भक्त होगा।

जनश्रुति है कि पण्डितों की मूर्ति पानी में गिरते ही डूब गयी, पर रैदासजी की ऊपर तैरती रही। इस अवसर पर रैदासजी कहते रहे—

मूरति मांहि बसे परमेश्वर
तो पानी मांहि तिरै रे।

× × ×

धीरे-धीरे रैदास ख्याति के शिखर पर चढ़ते गये, पर जीवन में हुई चमत्कारपूर्ण घटनाओं के कारण उन्हें कोई गर्व नहीं हुआ और न उन्होंने अपने पैतृक व्यवसाय का त्याग किया।

शाम होने के बाद वे अपने पड़ोसियों को लेकर भजन गाते-गाते विभोर हो जाते थे। उनकी ख्याति सुनकर एक बार एक बनिया उनके यहाँ आया। कीर्तन समाप्त होने पर रैदास सभी को भगवान् का चरणामृत देने लगे।

बनिये को जब चरणामृत मिला तो चमार के हाथ का चरणामृत पीने के बदले उसने लोगों की नजर बचाकर अपने वस्त्रों पर गिरा दिया। केवल पीने का नाटक भर किया। घर आते-आते उसके मन में इतनी घृणा हुई कि सारे कपड़े उतारकर फेंक दिये और स्नान करने चला गया।

दूसरे दिन उन कपड़ों को सफाई के लिए नित्य आने वाले भंगी को दान कर

दिया। वही भंगी जब तीसरे दिन उनके दिये कपड़े पहनकर सफाई के लिये आया तो उसकी शक्ल देखकर बनिया चौंक उठा। परसों तक काले रंग वाले व्यक्ति का अंग-प्रत्यंग अपूर्व कान्ति से चमक रहा था। उसे देखते ही बनिया अस्वस्थ हो गया।

वैद्य की दवा होने लगी। रोग अच्छा होने के बदले बढ़ता गया। अन्तर्यामी की कृपा से उसे बोध हुआ। उसने सोचा—शायद रैदास द्वारा दिये गये चरणामृत के अपमान का दण्ड भोग रहा हूँ। मन में इस प्रकार की शंका उत्पन्न होते ही वह एक दिन रैदासजी के घर आकर अपने अपराध के लिए क्षमा माँगने लगा।

सदाशय प्रभु भक्त रैदास ने कहा—"मेरे क्षमा-दान से क्या होगा? मैं आपकी ओर से अपने प्रभु से क्षमा चाहता हूँ। मेरी हार्दिक इच्छा है कि भगवान् आपको स्वस्थ कर दें।"

कहा जाता है कि वह बनिया उसी दिन से स्वस्थ होने लगा और दो दिन में पूर्ण स्वस्थ हो गया।

रैदास वास्तव में उच्च-कोटि के सन्त थे। वे कबीर की तरह तीखी बात नहीं कहते—

ब्राह्मन तो गुरु जगत भगतन का गुरु नांहि।
उरझ उरझ के पच मुआ चारों वेदन मांहि॥

सिर्फ यही नहीं, तुलसीदास जैसे सन्त भी खिजलाकर कह गये हैं—'तुलसी अलखहिं का लखहिं, राम नाम जप नीच।'

लेकिन सन्त रैदास कितने शान्त और सरल हैं। उन्हें अपने प्रभु की पूजा के लिए शुद्ध सामग्री तक नहीं मिल रही है—

राम मैं पूजा कहाँ चढ़ाऊँ
फल अरु फूल अनूप न पाऊँ
थन तर दूध जो बछरू जुठारी
पुहुप भँवर जल मीन बिगारी
मलयागिरि बेधियो भुअंगा
विष अमृत दोउ एकै संगा
मन ही पूजा मन ही धूप
मन ही सेऊँ सहज सरूप
पूजा-अरचा न जानूँ तोरी
कह रैदास कवन गति मोरी।

आत्मसमर्पण का इतना सुन्दर भाव कम सन्तों ने प्रकट किया है। अपनी इसी भक्ति के कारण सन्त रैदास मध्यकालीन सभी सन्त कवियों से अलग दिखाई देते हैं। न

उन्हें अपनी भक्ति पर गर्व है और न वे किसी को हीन दृष्टि से देखते हैं। सड़क के किनारे बैठे अपने प्रभु के गुण गाते हैं—'भाई रे राम कहाँ हैं मोहि बताओ।'

कहा जाता है कि अन्तर्यामी प्रभु एक दिन कृपावश रैदास के स्वप्न में आकर बोले—"रविदास, अब कल से तुम्हें नित्य पाँच मोहरें प्राप्त होंगी। प्रात:काल बिछौने के नीचे देखना।"

रविदास ने कहा—"प्रभो, मैं इसे लेकर क्या करूँगा। आप मेरी कुटिया में आये और मैं धन्य हो गया।"

आज दिवस लेऊँ बलिहारा। मेरे घर आया राम का प्यारा।
आँगन बँगला भवन भयो पावन। हरिजन बैठे हरिगुन गावन।
करूँ डण्डवत चरन पखारूँ। तनमन धन उन पर वारूँ।
कह रैदास मिलै निजदासा। जनम जनम कै काटै पासा।

भगवान् ने कहा—"तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो उस रकम से एक मन्दिर बनवा लेना।"

रैदास कितने उच्च-कोटि के सन्त थे, इसका उदाहरण उस ब्राह्मण को भी प्राप्त हो गया जो अन्त्यजों को हेय दृष्टि से देखता था। कहा जाता है कि एक ब्राह्मण महाशय किसी रघुवंशी ठाकुर की ओर से नित्य गंगा-पूजन करने जाते थे।

एक दिन मार्ग में उनकी पनही टूट गयी। कुछ दूर आने पर उन्होंने देखा—रैदास सड़क के किनारे बैठे जूते सी रहे हैं। उसे पनही देकर बोले—"जरा इसे ठीक कर दो।"

रविदास ने कहा—"गंगा-स्नान के लिए जा रहे हैं, महाराज?"

ब्राह्मण ने सिर हिलाकर स्वीकार किया। चलते समय रविदास ने कहा—"जब आप गंगा माता की पूजा करें तब मेरी ओर से यह सुपारी उन्हें चढ़ा दीजियेगा।"

ब्राह्मण ने सोचा—क्या हर्ज है। जूते की मरम्मत के पैसे नहीं ले रहा है। बदले में छोटा-सा कार्य करना है। स्नान आदि करने के बाद ब्राह्मण ने पूजा की। चलते समय अचानक रैदास की दी हुई सुपारी पर नजर पड़ी। एक अछूत की सुपारी को कैसे वे नैवेद्य में चढ़ाते। उसे उठा कर तुरन्त गंगा की ओर फेंक दिया। दूसरे ही क्षण कंगनयुक्त दो हाथ बाहर निकले और उस सुपारी को हवा से लेकर पुन: जल के भीतर घुस गये।

इस दृश्य को देख कर ब्राह्मण महोदय चकित रह गये। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि स्वयं माता गंगा ने रैदास के नैवेद्य को स्वीकार किया है।

कई बार तीर्थयात्रा करने के बाद भी रैदास का मन अतृप्त रहा। इस बार उनकी इच्छा राजस्थान की ओर जाने की हुई। कई वर्ष पूर्व चित्तौड़ की झाली रानी जब काशी आई थीं तब उन्होंने अपने यहाँ बुलाया था।

काशी के महान् सन्त आये हैं सुनकर झाली रानी ने उनके सम्मान में भण्डारे का प्रबन्ध किया। विद्वत्जन, नागरिक और सन्तों का समागम हुआ। एक अछूत का इतना सम्मान अधिकांश लोगों को खल गया।

पण्डितों ने सोचा कि विरोध करने पर राजरोष के भागी होंगे। इससे अच्छा है कि हम स्वतन्त्र रूप से भोजन बनायें। महल की ओर से ब्राह्मणों को आवश्यक खाद्य-सामग्री दे दी गयी।

भोजन बनाने के बाद जब ब्राह्मणों का समूह खाने बैठा तो देखा कि प्रत्येक की बगल में रैदास बैठे हैं। रैदास के इस चमत्कार को देख कर वे भोजन करना भूल गये। उन्हें ज्ञान हुआ कि हम जिसे अछूत समझ रहे हैं, वे असाधारण व्यक्ति हैं। आवश्यकता पड़ने पर स्वयं भगवान् को सूकर से लेकर नरसिंह रूप धारण करना पड़ा था। अपने अपराध के लिए उन लोगों ने रैदास से क्षमा माँगी।

कहा जाता है कि उस अवसर पर रैदास ने अपनी त्वचा को चीर कर दिखाया और कहा—"मैं पूर्व जन्म में ब्राह्मण था। अपने पापकर्म के कारण मुझे पुनर्जन्म लेना पड़ा।"

रैदास के इस चमत्कार से झाली रानी अत्यन्त प्रभावित हुई। उनकी स्मृति में एक नहीं, कई स्मारक बनवाये—रैदास की छतरी और श्यामजी का मन्दिर।

चित्तौड़ से रैदास माण्डोगढ़ आये। यहाँ गंगा माता के सम्मान में एक भण्डारा किया। गंगा एक सुन्दरी के वेश में आयीं और रैदास का प्रसाद ग्रहण किया। गंगा के सौन्दर्य को देख कर वहाँ का राजा आसक्त हो गया। उन्होंने रैदास से कहा कि मैं इस युवती से विवाह करना चाहता हूँ।

सन्त रैदास ने दृढ़तापूर्वक इसे अस्वीकार कर दिया। सिर्फ यही नहीं, जो लोग सन्त रैदास की ख्याति और प्रतिभा से परिचित थे, उन्होंने भी विरोध किया।

इतना विरोध होते देख राजहठ तीव्र हो गया। राजा ने आज्ञा दी कि मैं इस युवती से विवाह करूँगा। अगर रैदास इसे स्वीकार नहीं करेंगे तो उन्हें मृत्यु-दण्ड दिया जायेगा।

इस पर भी रैदास राजी नहीं हुए, पर भक्त की रक्षा के लिए स्वयं गंगा माता राजी हो गयीं। शर्त यह रखी गयी कि बारात जल्द से जल्द आनी चाहिए।

राजा शर्त के अनुसार बारात लेकर आया। रैदास के आश्रम के समीप कुण्ड के पास बारात ठहरी। थोड़ी देर बाद गंगा पूर्ण श्रृंगार करके आयीं और कुण्ड में कूद गयीं। गंगा के कुण्ड में गिरते ही उसमें से एक तेज धारा तीव्र गति से निकलने लगी।

कहा जाता है कि उस धारा में राजा सहित सभी बाराती डूब गये। केवल वे ही लोग बच गये जो इस विवाह का विरोध करते रहे या रैदासजी के भक्त थे।

× × ×

रैदास के जन्म और मृत्यु के बारे में अनेक विद्वानों में मतभेद हैं। खासकर महारानी मीरा के प्रसंग को लेकर। डॉ० धर्मपाल मैनी ने विभिन्न ग्रन्थों के अध्ययन के बाद लिखा है—"यदि उनका जन्म संवत् १४५६ के आसपास मान लिया जाय तो रामानन्द के शिष्य होने में, कबीर से कुछ छोटे और समकालीन होने में तथा लगभग १२८ वर्ष की आयु पाने में विशेष आपत्ति का स्थान नहीं है।"

रैदास-साहित्य के अधिकारी विद्वान् डॉ० वेणीप्रसाद शर्मा ने भी रामानन्द के शिष्य चेतन द्वारा संवत् १५०५ में रचित 'प्रसंग पारिजात' के आधार पर उनका जन्मकाल यही स्वीकार किया है, जबकि कुछ लोग १५०० कहते हैं।

सन्त रैदास की निधन तिथि संवत् १५८४ थी, जैसा कि अनन्तदास ने लिखा है—

पन्द्रह सौ चउ असी, भई चितौर महं भीर।
जर-जर देह कंचन भई, रवि रवि मिल्यौ शरीर॥

इससे स्पष्ट है कि रैदासजी का निधन संवत् १५८४ को चित्तौड़ में हुआ था। जबकि रानी मीरा का जन्म संवत् १५७३ को हुआ था (कुछ लोग संवत् १५६० भी मानते हैं)। इस सम्बन्ध में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है—"सन्त रविदास के अनुयायियों को बहुधा रविदास या रैदास कहते हुए आज तक सुना जाता है। इस कारण अनुमान किया जा सकता है कि मीराबाई के गुरु सम्भवत: रैदासी सम्प्रदाय के कोई ऐसे आचार्य रहे होंगे जो उस समय जीवित रहे होंगे।"

गुजरात और राजस्थान के कुछ लोग आज भी यह मानते हैं कि वे यहाँ के निवासी थे, क्योंकि उनकी रचनाओं में यहाँ के अनेक शब्द हैं। इतिहासकारों ने इस तर्क को स्वीकार नहीं किया है।





९

स्वामी विवेकानन्द

परमहंस रामकृष्ण देव, जिन्हें उनके भक्त 'ठाकुर' कहते थे, अपने एक भक्त सुरेन्द्रनाथ के विशेष अनुरोध पर उनके घर आये। अत्यन्त श्रद्धा के साथ सुरेन्द्रनाथ ने उन्हें प्रणाम किया और घर के भीतर ले आये। सुरेन्द्रनाथ के घर ठाकुर आये हैं, यह समाचार सुनकर आसपास से भी अनेक लोग उनका दर्शन करने चले आये।

ठाकुर कुछ देर तक धर्म-चर्चा करने के बाद बोले—"तुम लोगों में से कोई भजन सुना सकता है? इस वक्त भजन सुनने की इच्छा हो रही है।"

सुरेन्द्रनाथ कुछ देर आगत लोगों को देखते रहे। फिर अचानक अपने नौकर से कहा—"भजा, देख तो नरेन्द्र घर पर है या नहीं। अगर वह घर पर हो तो उसे अपने साथ लेते आना। कहना मैंने बुलाया है।"

ज्योंही नरेन्द्रनाथ ने अपने पड़ोसी सुरेन्द्रनाथ के घर में प्रवेश किया, त्योंही

रामकृष्णदेव चौंक उठे। उनकी अतीन्द्रिय-शक्ति ने सूचना दी—यह युवक ब्रह्मलोक का ऋषि है।

अपने अतीन्द्रिय की आवाज सुनते ही रामकृष्ण चौकन्ने हो उठे। एकटक नरेन्द्रनाथ को देखने लगे। अब तक वे इसी युवक की तलाश में थे जो उनके आदर्शों तथा विचारों का उपयोग कर सके। नरेन्द्रनाथ का भजन सुनते-सुनते रामकृष्णदेव को भाव-समाधि हो गयी। भजन समाप्त होने पर रामकृष्ण पास आकर नरेन्द्र के अंग-प्रत्यंग का स्पर्श कर देखने लगे।

उनका यह व्यवहार नरेन्द्र को नागवार-सा लगा। नाम-धाम पूछने के बाद ठाकुर ने कहा—"एक बार दक्षिणेश्वर आओ। हम सब तुम्हारा गायन सुनेंगे। बड़ा अच्छा कण्ठ है तुम्हारा। बोलो, आओगे?"

शिष्टाचारवश नरेन्द्र को कहना पड़ा—"कभी समय मिला तो आ जाऊँगा?"

इस घटना के कई सप्ताह बाद उनके रिश्तेदार रामचन्द्र ने एक दिन बातचीत के सिलसिले में कहा—"बेकार तुम ब्राह्म-समाज के पीछे अपना समय बरबाद कर रहे हो। अगर तुम्हें धर्म-ज्ञान की जिज्ञासा है तो रामकृष्ण ठाकुर के यहाँ चले जाओ। वहाँ जाने से तुम अनुभव करोगे कि वे कितने बड़े साधक हैं।"

एकाएक नरेन्द्रनाथ को स्मरण हो आया कि मैंने दक्षिणेश्वर जाकर भजन सुनाने का वादा किया था। संयोग की बात थी कि एक दिन पड़ोसी सुरेन्द्रनाथ ने उनसे कहा—"हम लोग गाड़ी से दक्षिणेश्वर जा रहे हैं। तुम भी चलो।"

अन्धे को क्या चाहिए? दो आँखें। नरेन्द्र तुरन्त तैयार हो गया। यह सन् १८८१ ई० के दिसम्बर माह की घटना है। रामकृष्णजी के वहाँ जाते ही लोगों ने भजन के लिए अनुरोध किया।

नरेन्द्रनाथ ने कहा—"मैं केवल दो-चार भजन जानता हूँ।"

ठाकुर ने कहा—"जो याद है, वही सुनाओ।"

गाना समाप्त होते ही परमहंस ठाकुर नरेन्द्र का हाथ पकड़ कर बरामदे की ओर ले गये। भावातुर होकर रूँधे कण्ठ से उन्होंने कहा—"इतने दिनों बाद आये हो? मैं कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। तुम्हारे लिये मैं परेशान था।"

इतना कहते-कहते परमहंसजी रो पड़े। पुनः हाथ जोड़ते हुए बोले—"मैं जानता हूँ प्रभु, तुम वही सनातन ऋषि हो। नर के रूप में नारायण हो। संसार का कष्ट दूर करने के लिए अवतरित हुए हो।"

रामकृष्ण के इस व्यवहार का प्रभाव उन पर कैसा पड़ा, उन्हीं के शब्दों में सुनिये—"मैं तो वैसे व्यवहार से निर्वाक् (अवाक्) और स्तम्भित रह गया। सोचने

लगा कि किसे देखने आया हूँ। यह तो पूरा पागल है। अपने बारे में मुझे मालूम है कि मैं विश्वनाथ दत्त का पुत्र हूँ। इधर मुझे कुछ और बताया जा रहा है। मैं चुपचाप खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद वे घर के भीतर से मक्खन-मिश्री और सन्देश लाकर अपने हाथ से खिलाने लगे। मैं बार-बार कहता रहा कि यह मिठाई मुझे दीजिये। मैं अपने मित्रों में बाँटकर खाऊँगा। उन्होंने मेरे आग्रह को अस्वीकार कर दिया। बोले—'वे लोग बाद में खायेंगे, तुम मेरे हाथ से खा लो।' इतना कहकर वे फिर मिठाई खिलाने लगे। इसके बाद उन्होंने मेरे हाथों को पकड़ कर कहा—'वादा करो, तुम शीघ्र किसी दिन अकेले यहाँ आओगे।' उन्होंने जिस तरह अनुरोध किया, उसे देखते हुए मैंने कहा कि शीघ्र ही आऊँगा। इसके बाद मैं फिर वहीं आकर बैठ गया जहाँ मेरे अन्य साथी बैठे थे।

"मैंने आश्चर्य के साथ देखा कि कुछ देर बाद श्री ठाकुर जब इस कमरे में आये तब वे स्वाभाविक रूप में थे। उनकी बातचीत या व्यवहार में कोई असामान्यता नहीं थी। कुछ देर तक वे ईश्वरीय-लीला की चर्चा करते रहे। तभी उन्हें भाव-समाधि हो गयी। मैं उनकी ओर विस्मय से देखता रहा। उनकी बातों से ऐसा लगा कि वे पुस्तकों से रटी हुई बातें नहीं कर रहे हैं।"

उपस्थित लोगों में से किसी ने प्रश्न किया—"क्या भगवान् को देखा जा सकता है?"

परमहंस ने कहा—"हाँ, उन्हें देखा जा सकता है। जैसे मैं तुम्हें देख रहा हूँ, तुम मुझे देख रहे हो। ठीक इसी प्रकार, बल्कि और निकट से देखा जा सकता है, उनसे बातें की जा सकती हैं, पर वैसा करना कौन चाहता है? लोग पति-पुत्र, पिता के शोक में अश्रुपात करते हैं, सम्पत्ति तथा धन के लिए रोते हैं, पर भगवान् के लिए क्या कोई रोता है? कोई कहता है कि हाय, अब तक मुझे भगवान् नहीं मिले। क्या एक भी ऐसा उदाहरण दे सकते हो? मुझे उनका दर्शन नहीं मिला, ऐसा समझकर कोई रो पड़े तो उसे अवश्य दर्शन मिलेगा।"

परमहंस के कथन का व्यापक प्रभाव नरेन्द्र के मन पर पड़ा। यह आदमी सनकी भले ही हो, पर ईश्वर के लिए ऐसा त्याग कोई बिरला ही कर पाता है। सनकी होते हुए महान् तपस्वी और योगी पुरुष हैं। इन्होंने जरूर ईश्वर के दर्शन किये हैं।

इन्हीं बातों का चिन्तन करता हुआ नरेन्द्र उस दिन घर वापस आ गया। लेकिन परमहंसजी की बातों को वे भुला नहीं सके। परमहंसजी के बारे में वे जितना अधिक सोचते, उतनी ही अधिक गहराई में डूब जाते थे। इधर नरेन्द्रनाथ के चले जाने के बाद से परमहंसजी का हृदय व्याकुल हो उठा। दोनों ओर आकर्षण की लौ लगी थी। परमहंसजी को लगा जैसे उनके हृदय को भींगे गमछे की तरह किसी ने कस कर निचोड़ डाला है। जब चाह अधिक बढ़ गयी तब अपने-आप कह उठे—"अरे, अब तो आ जा। तुझे देखे बिना रहा नहीं जाता।"

परमहंसजी की व्याकुलता का प्रभाव नरेन्द्र पर पड़ा। खाने-सोने, पढ़ने-लिखने में अरुचि हो गयी। ठाकुर का आकर्षण तीव्र से तीव्रतर हो गया। उन्हें लगा कि अगर शीघ्र उनसे मुलाकात न करूँगा तो मैं पागल हो जाऊँगा। आखिर एक दिन ठाकुर के आकर्षण ने उन्हें बुला लिया।

इधर परमहंसजी समझ गये कि उनका नरेन्द्र आज आ रहा है। वे उसके आने की प्रतीक्षा बड़ी बेसब्री से करने लगे। ज्योंही नरेन्द्र ने कमरे में प्रवेश किया, त्योंही आगे बढ़कर परमहंसजी ने कहा—"तू आ गया?"

यह कहते हुए उसका हाथ पकड़ कर उन्होंने चौकी पर बैठाया। सहसा परमहंसजी में अद्भुत परिवर्तन हुआ। वे अस्पष्ट स्वर में कुछ बोलते हुए नरेन्द्र के पास सरक आये।

इस दिन की अनुभूति के बारे में नरेन्द्रनाथ ने लिखा है—"ठाकुर को हरकत करते देख मैं सावधान हो गया। पता नहीं, सनक में आकर कुछ कर बैठें तो क्या होगा? एकाएक मेरे पास आकर उन्होंने अपने दाहिने पैर से मुझे छू दिया। इस स्पर्श से ही मेरे अन्तर में एक अपूर्व अनुभूति हुई। मेरी आँखें काम कर रही थीं, पर ऐसा लग रहा था जैसे दीवार, दरवाजे आदि घूमते हुए गायब होते जा रहे हैं। मेरा अहंभाव भी सर्वग्राही महाशून्य में विलीन होता जा रहा है। अनजाने भय से मैं काँप उठा। मुझे लगा कि अगर मेरा अहंभाव इस प्रकार नष्ट हो गया तो मेरा भी नाश हो जायेगा। अब मेरी मृत्यु सन्निकट है। अपने को सम्हाल न सकने के कारण मैं चीख उठा—'आपने यह क्या किया? मेरी ऐसी दशा क्यों हो गयी? मेरी माँ हैं, बाप हैं, भाई-बहन हैं।"

मेरी बातें सुनकर वह पागल आदमी खिलखिलाकर हँस पड़ा। इसके बाद मेरे वक्षःस्थल पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—'आज यहीं तक। लगता है, एक बार में नहीं होगा। कल फिर होगा।'

आश्चर्य की बात यह हुई कि ज्योंही परमहंसजी ने मेरा स्पर्श किया, त्योंही वे अलौकिक अनुभूतियाँ गायब हो गयीं और मैं पूर्वस्थिति में आ गया।"

नरेन्द्रनाथ यह नहीं समझ सके कि वह कौन-सा जादू था, जिसने उन्हें कुछ देर के लिए अभिभूत कर डाला था। नरेन्द्रनाथ ने सोचा कि अब भविष्य में इस व्यक्ति से और अधिक सावधान रहना पड़ेगा। निश्चय ही यह व्यक्ति असाधारण शक्तिशाली है। मेरे जैसे दृढ़ इच्छा-शक्ति वाले व्यक्ति को जब यह तोड़ सकता है, तब साधारण लोगों की स्थिति और बदतर हो सकती है।

नरेन्द्र को ठीक करने के बाद परमहंसजी सामान्य व्यक्ति बन गये। उन्हें प्रसाद खिलाने के बाद परमहंसजी ने पूछा—"अब कब आओगे।"

"मौका मिलते ही आ जाऊँगा।"

"वादा करो, शीघ्र आओगे।"

उनके मासूम चेहरे की ओर देखते हुए नरेन्द्र ने कहा—"जल्द ही आऊँगा।"

घर आने पर नरेन्द्र यही सोचने लगा कि आखिर वह कौन-सी शक्ति थी, जिसके कारण मेरी चेतना लुप्त हो गयी। मैं एक अलौकिक संसार में विचरण करने लगा। इस प्रकार ऊहापोह करते एक सप्ताह बीत गया। चित्त जब काफी शान्त हो गया, तब एक दिन पुनः नरेन्द्र दक्षिणेश्वर चला आया।

नरेन्द्र को देखते ही परमहंसजी उसे अपनी बैठक में ले आये। नरेन्द्र उस दिन की घटना को भूला नहीं था। आज वह अपनी ओर से चौकन्ना था ताकि उस दिन की तरह पुनः किसी चक्कर में न फँस जाऊँ।

परमहंसजी से यह रहस्य छिपा नहीं रहा। देखते ही देखते वे समाधिस्थ हो गये और इस बीच धीरे से उन्होंने पैर से नरेन्द्र का स्पर्श किया। नरेन्द्र भरसक प्रयत्न करता रहा कि वह सजग रहे, पर उसकी शक्ति जवाब दे गयी। धीरे-धीरे उसका बाह्य ज्ञान लुप्त हो गया।

होश आने पर नरेन्द्र ने देखा कि परमहंसजी उसका वक्षःस्थल सहला रहे हैं। उनके चेहरे पर मुस्कान थी। नरेन्द्र पुनः सोचने लगा—"यह कैसे हुआ?"

एक बार की क्रिया में परमहंसजी को नरेन्द्र के बारे में सारी बातें मालूम नहीं हो सकीं थीं, इसलिए पुनः उन्हें क्रिया करने की आवश्यकता हुई। नरेन्द्रनाथ को देखते ही वे पहचान गये थे कि यह देवपुरुष है। एक दिन अपने ज्ञान तथा विवेक से समस्त संसार को चमत्कृत कर देगा। अपने अनुमान की पुष्टि के लिए उन्हें परखना आवश्यक हो गया था।

स्वयं परमहंस ठाकुर ने एक बार नरेन्द्र के साथ की गयी इस क्रिया के बारे में कहा था—"बाहरी चेतना लुप्त हो जाने पर मैंने उस दिन नरेन्द्र से अनेक प्रश्न किये। वह कौन है, कहाँ से आया है, क्यों आया है, कब तक संसार में रहेगा? यह सब पूछने पर उसने जवाब दिया था। उसके बारे में जो कुछ देखा या सोचा था, सारी बातें सही रहीं। मुझे सन्तोष है कि मेरा अनुमान ठीक था। वह सब गुप्त बातें हैं। जिस दिन नरेन्द्र इस बात को जान लेगा कि वह कौन है? क्यों आया है? उस दिन वह इस लोक में नहीं रहेगा। दृढ़ संकल्प की सहायता से योगबल के द्वारा उसी क्षण शरीर छोड़ देगा। वास्तव में नरेन्द्रनाथ ध्यानसिद्ध महात्मा हैं।"

इस घटना के बाद से नरेन्द्र बराबर परमहंसजी के यहाँ आता-जाता रहा। दोनों एक-दूसरे को अच्छी तरह समझते रहे। परमहंस द्वारा शक्ति हस्तांतरित होने के पूर्व तक नरेन्द्र उनकी बातों को आँख मूँद कर नहीं मानता था। यह ठीक है कि रामकृष्णजी पर उसकी असीम श्रद्धा थी, पर उनकी बातों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करता रहा।

रामकृष्ण देव के पास जाकर घण्टों बैठे रहते, पर काली मन्दिर नहीं जाते थे। मूर्ति-पूजा पर वे विश्वास नहीं करते थे। जब कभी रामकृष्ण देव अपने अलौकिक दर्शन के बारे में कोई घटना कहते तब नरेन्द्र कहता—"यह सब आपके दिमाग का फितूर है। ईश्वरीय रूप नहीं।"

रामकृष्ण देव इन बातों को सुनकर नाराज नहीं होते थे। सहानुभूति के साथ उसे समझाते रहते। अध्यात्म और दर्शन की बातें समझाते हुए उसका निर्माण करते रहते।

ध्यान का शौक लगने के बाद एक बार नरेन्द्र को अद्‌भुत-दर्शन हुआ। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा था—"स्कूल में पढ़ते समय एक रात को मैं द्वार बन्द कर ध्यान करते-करते अन्तर्लीन हो गया। कितनी देर ऐसी तन्मयता से ध्यान करता रहा, कह नहीं सकता। एकाएक जब ध्यान भंग हुआ, तब देखा कि दक्षिण दीवाल को भेदकर एक ज्योतिर्मय मूर्ति निकल आयी है जो मेरे सामने खड़ी है। उसके मुख पर अद्‌भुत ज्योति थी, पर कोई भाव न था, प्रशान्त संन्यासी मूर्ति। मुण्डित मस्तक, हाथ में कमण्डल और दण्ड। कुछ देर तक वह मूर्ति मेरी ओर एकटक देखती रही, जैसे कुछ कहना चाहती हो। मैं अवाक् होकर उसकी ओर देखता रहा। न जाने क्यों इस स्थिति को देखकर मैं भयभीत हो उठा और दरवाजा खोलकर बाहर भाग गया। सम्भव था कि वह मूर्ति मुझसे कुछ कहती, परन्तु प्रयत्न करने पर भी फिर कभी उस मूर्ति के दर्शन मुझे नहीं हुए। कितने दिन मनन और ध्यान किया और संकल्प किया कि यदि फिर उसके दर्शन मिले तो मैं उससे डरूँगा नहीं, बल्कि बातचीत करूँगा। लेकिन यह सौभाग्य फिर प्राप्त नहीं हुआ।"

इसी समय एक शिष्य के प्रशन पर उन्होंने कहा—"हाँ, मैंने काफी सोचा था, पर उस समय कोई ओर-छोर नहीं मिला। अब ऐसा अनुभव होता है कि साक्षात् भगवान् बुद्धदेव ने ही मुझे दर्शन दिये थे।"

इस घटना के कुछ दिनों बाद पिताजी का निधन हो गया। स्थिति भयानक हो गयी। यहाँ तक कि चारों ओर से असफल होने के कारण नरेन्द्र ने आत्महत्या करने का निश्चय किया। ठीक इसी समय दैव प्रेरणा से उन्हें भगवान् रामकृष्ण की याद आयी। उन्होंने सोचा—"अगर वे चाहें तो कुछ कर सकते हैं। वे तो काली माता से बातें करते हैं। ईश्वर को देख चुके हैं। ईश्वर अगर कृपालु हो जाय तो सारा कष्ट दूर हो सकता है।"

इस निश्चय के बाद नरेन्द्र सीधे दक्षिणेश्वर आये। अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए उन्होंने रामकृष्ण देव से कहा—"आप अपनी माँ से मेरे लिए प्रार्थना कीजिये जिससे मेरा कष्ट दूर हो जाय"

—"मैं माँ से कुछ नहीं माँगता और न माँग पाऊँगा। तू स्वयं जाकर माँग ले। लेकिन तू तो माँ को मानता नहीं, शायद इसीलिये तुझे कष्ट है।"

"जब तक आप मेरे लिये कोई व्यवस्था नहीं करेंगे तब तक मैं यहाँ से आगे पैर भी नहीं रखूँगा।"

रामकृष्ण देव कुछ देर स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखते हुए बोले—"मैंने माँ से कहा था कि नरेन्द्र का कष्ट दूर कर दो। उसका पोषण करो। लगता है, माँ मेरी बात सुनती नहीं। शायद माँ चाहती हैं कि तू स्वयं उनसे ये सारी बातें कह। तुझ पर उनका वात्सल्य कम नहीं है।" अपने आँसुओं को पोंछते हुए रामकृष्ण देव ने पुन: कहा—"आज मंगलवार है। आज रात को माँ के निकट जाकर जो माँगेगा, वही मिलेगा। जी भर कर उन्हें प्रणाम करना और जी भर कर उनसे माँग लेना।"

रामकृष्ण देव की बातों का प्रभाव नरेन्द्र पर पड़ा। वह बड़ी बेसब्री के साथ रात्रि की प्रतीक्षा करने लगा। रात्रि के प्रथम पहर में रामकृष्ण देव ने कहा—"जा, समय हो गया। जो कुछ माँगना है, माँग ले। माँ का अक्षय-भण्डार लूट ले।"

मन्दिर के भीतर कोई नहीं था। सामने निखिल धात्री, वात्सल्यमयी माँ के चेहरे से मोहिनी मुस्कान प्रकट हो रही थी। महामाया माँ अभया मुद्रा में समारूढ़ हैं। इस क्षेममयी, त्रिभुवनतारिणी माँ के सामने जाकर नरेन्द्र खड़ा हो गया। उसे लगा, जैसे सारा कष्ट, सारी चिन्ताएँ नि:शेष हो गयी हैं। उसका हृदय अवर्णनीय आनन्द से परिपूर्ण हो उठा। गद्‌गद् स्वर में नरेन्द्र ने कहा—"माँ, मुझे वैराग्य दो, ज्ञान दो, भक्ति दो और अपने दर्शन दो।"

काफी देर तक मन्दिर में काली मूर्ति के सामने भावाविष्ट होकर वे खड़े रहे। बाहर आते ही बड़ी उत्सुकता के साथ परमहंस ने पूछा—"क्यों रे, माँग लिया न?"

यह बात सुनते ही नरेन्द्र चौंक उठा। अबोध शिशु की तरह सिर हिलाते हुए कहा—"नहीं, माँ के सामने जाकर मैं सब कुछ भूल गया।"

परमहंसजी ने कहा—"जा, जा। फिर जा। माँ से सब कुछ माँग ले। आज वे जरूर देंगी।"

रामकृष्ण ने बड़े आग्रह के साथ पुन: भेजा। इस बार भी वे ही बातें हुईं। तीन-तीन बार असफल होने पर नरेन्द्र झुँझला उठा। मन्दिर के भीतर पहुँच जाने पर उसका मस्तिष्क काम नहीं करता। बाहर आते ही वह ठीक हो जाता है। जरूर यह जादूगर मन को घुमा देता है।

इस बार बाहर आने पर नरेन्द्र ने कहा—"मैं भीतर जाकर माँ के सामने अपने कष्टों को क्यों नहीं कह पाता, समझ में नहीं आ रहा है। निश्चित रूप से आप कुछ करते हैं। अब मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। मेरी माँ और भाई-बहनों के लिए आपको कुछ प्रबन्ध करना ही पड़ेगा।"

नरेन्द्र के भवितव्य को देखकर रामकृष्ण की आँखें सजल हो उठीं। वे स्नेह के

साथ उसे देखते रहे। तभी नरेन्द्र ने पुनः कहा—"जब तक आप इस भार को स्वीकार नहीं करेंगे तब तक मैं आपको छोड़ूँगा नहीं।"

परमहंसजी स्निग्ध मुस्कान बिखेरते हुए बोले—"अच्छी बात है। अब तू जा। मैं माँ से कहूँगा कि तुझे तथा तेरे आश्रितों को आजीवन भोजन-वस्त्र की कमी न हो।"

उस दिन से नरेन्द्रनाथ के नास्तिक हृदय में परिवर्तन होने लगा। उन्होंने जगज्जननी के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया। इससे परमहंसजी को अपार प्रसन्नता हुई। वे जानते थे कि ऐसा होगा और इसी दिन की वे प्रतीक्षा करते रहे। नरेन्द्र ने स्वीकार किया कि हिन्दू-जाति प्रतिमा के माध्यम से उपासना करती है और ऐसी शिक्षा देती है कि नास्तिक भी आस्तिक बन जाते हैं।

× × ×

अनाहार, अनाश्रय और असफलता के कारण नरेन्द्र बुरी तरह टूट गया था। चचेरे भाईयों तथा पिताजी के चाचा ने सम्पत्ति के लोभ में पड़ कर नरेन्द्र की माँ तथा उसके छोटे भाईयों को घर से निकाल दिया था। अपमान के इस घूँट को सभी लोग चुपचाप पी गये। नरेन्द्र की माँ आजीवन अपमान सहती रही। नरेन्द्र के पिता विश्वनाथ दत्त की आमदनी कम नहीं थी। कलकत्ता में बड़े शान-शौकत से रहते थे। केवल नरेन्द्र की देखरेख के लिए दो-दो आया थीं। विश्वनाथ के वैभव को देख कर एक धनी व्यक्ति ने उनसे कहा था—"अगर आप मेरी लड़की को नरेन्द्र की बहू बना लें तो मैं दस हजार रुपये दहेज में दूँगा।"

नरेन्द्र इस विवाह के लिये राजी नहीं हुआ। उपार्जन विश्वनाथ दत्त करते थे, पर गृहस्वामी थे—विश्वनाथ दत्त के सगे चाचा कालीप्रसाद दत्त। वे इतने जालिम थे कि नरेन्द्र की माँ को पहनने के लिए वस्त्र और भरपेट भोजन देने में भी कंजूसी करते थे। जब एक दिन यह बात विश्वनाथ दत्त के कान में आयी तब वे नाराज होकर बोले—"मैं इतना कमाता हूँ और मेरी पत्नी को भरपेट भोजन नहीं मिलता? आश्चर्य है।"

इसके आगे कुछ करने या कहने का साहस उनमें नहीं था। अपने पति की इस कमजोरी को भुवनेश्वरी अच्छी तरह जानती थी। उन्हें विश्वनाथ दत्त ने अपनी अर्जित सम्पत्ति से कभी कुछ नहीं दिया था। सारी आय कालीप्रसाद पहले ही हड़प लिया करते थे। फिर वह दिन भी आया जब विश्वनाथ दत्त इस दुनिया से चल बसे।

यह घटना उस समय हुई थी, जब नरेन्द्रनाथ बी०ए० पास करके बी०एल० में भर्ती हुए थे।

नरेन्द्रनाथ की इच्छा थी कि बी०एल० पास करने के बाद वे इंग्लैण्ड जाकर कानून की शिक्षा ग्रहण करेंगे। विश्वनाथ अपने पुत्र की इस इच्छा का समर्थन करते रहे। लेकिन पिता-पुत्र का यह स्वप्न अधूरा रह गया। १३ फरवरी, १८८४ ई० को उनका निधन हो गया।

विश्वनाथ कलकत्ता हाईकोर्ट के एटर्नी थे। काफी आमदनी थी। लोगों का विश्वास था कि विश्वनाथ दत्त काफी रकम छोड़ गये होंगे। बाद में पता चला कि वे कर्ज की लम्बी रकम छोड़ गये हैं। उनकी समस्त आमदनी कालीप्रसाद ले लेते थे। उनके इस जुल्म के प्रति मुँह खोलकर विरोध करने का साहस विश्वनाथ में नहीं था। न केवल विश्वनाथ दत्त की पत्नी आजीवन भोजन-वस्त्र के लिये तरसती रही, बल्कि विश्वनाथ दत्त की माँ भी अपनी ननद से अपमानित होती रहीं। विश्वनाथ के पिता दुर्गाप्रसाद ने जब एक बार अपनी आँखों से विधवा बहन को पत्नी का अपमान करते हुए देखा, तब वे अपने दुःख को नहीं रोक सके। उसी दिन वे घर से हमेशा के लिए विदा हो गये। पति के गायब हो जाने के बाद नरेन्द्रनाथ की दादी (श्यामा सुन्दरी) हैजे से पीड़ित होकर चल बसी। फलतः शिशु विश्वनाथ का लालन-पालन कालीप्रसाद करते रहे। इसी अहसान के कारण विश्वनाथ आजीवन अपने चाचा से दबते रहे।

विश्वनाथ के निधन होते ही कालीप्रसाद ने उनके परिवार को घर से निकाल दिया। अब घर में कोई कामधेनु गाय नहीं थी। मुफ्त में इन सात प्राणियों का पालन-पोषण वे क्यों करते? नरेन्द्र बचपन से ही क्रोधी था। जब अधिक तोड़फोड़ करने लगता, तब माँ उसके सिर पर पानी छिड़क कर 'जय बाबा वीरेश्वर' कहती। इससे वह शान्त हो जाता था। काशी के वीरेश्वर महादेव की आराधना करने पर ही नरेन्द्रनाथ का जन्म हुआ था। अब वही बालक नौकरी की तलाश में दर-दर की ठोकरें खा रहा था। सुबह उठने ही कहता—"आज मेरा अमुक जगह निमन्त्रण है। मेरी प्रतीक्षा मत करना। मेरे लिए भोजन मत बनाना।" फिर नरेन्द्र नौकरी की तलाश में निकल जाता। शाम को भूखा-प्यासा वापस आकर सो जाता। कभी-कभी यह भी सुनता कि आज घर में किसी ने खाना नहीं खाया। न रहने को अपना मकान और न खाने को भोजन। उसके सामने छोटे भाई-बहन भूख से तड़पते रहते। यह दृश्य देखकर उसका हृदय आत्मग्लानि से भर जाता। फिर भी परम पिता परमेश्वर को याद करता रहता।

सबसे अधिक दुःख उस दिन हुआ जिस दिन भगवान् का नाम लेते ही माँ ने बड़े तिक्त मन से कहा—"चुप रह छोकरे। जब देखो तब भगवान् का नाम लेता रहता है। भगवान् ने ही हमें स्वर्ग से खींच कर नरक में ढकेल दिया है।"

आजीवन कष्ट सहते-सहते माँ बुरी तरह टूट चुकी है। अब उसे भगवान् पर भी आस्था नहीं रही। ये सारी बातें नरेन्द्र समझता था, पर आज माँ की फटकार तीर-सी चुभ गयी। दुःख सहते-सहते उसका हृदय पहले ही क्षत-विक्षत हो चुका था। वह सोचने लगा—क्या वास्तव में ईश्वर है? अगर है तो यह अन्याय क्यों?

पिताजी के निधन के पूर्व ही नरेन्द्र ब्राह्म-समाज के सम्पर्क में आया था और संस्था का कर्मठ कार्यकर्ता भी बन चुका था। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशव सेन,

नवगोपाल मिश्र, पण्डित शिवनाथ शास्त्री जैसे महारथी उसे जानते थे। यहाँ तक कि जब वह परमहंस रामकृष्ण का शिष्य बन कर कार्य करने लगा, तब इन्हीं लोगों ने कहा था—"अगर नरेन्द्र रामकृष्ण के चक्कर में न फँसता तो भारत का सर्वश्रेष्ठ ब्राह्म-प्रचारक होता।"

स्वयं नरेन्द्र की ब्राह्म-समाज के प्रति गहरी आस्था थी। तूफानी गति से वह ब्राह्म-समाज का कार्य करता था। एक बार रामकृष्ण के यहाँ सर्वश्री केशवचन्द्र सेन, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी आदि ब्राह्म-समाजी बैठे थे। जब वे लोग चले गये तब रामकृष्ण ने शेष बैठे हुए लोगों से कहा—"केशव जिस शक्ति के माध्यम से ऊपर उठ रहा है, मेरे नरेन्द्र के भीतर वैसी १८ शक्तियाँ हैं। मैंने यह भी देखा कि केशव और विजय का हृदय दीप शिखा की तरह ज्ञानलोक से उज्ज्वल हो रहा है और नरेन्द्र के भीतर का ज्ञानसूर्य उदित होकर मोह-माया को दूर कर रहा है।"

अपनी प्रशंसा सुनकर नरेन्द्र ने झल्ला कर कहा—"आप यह सब क्या कह रहे हैं? ऐसी बातें सुनकर लोग आपको पागल समझेंगे। कहाँ जगत् विख्यात केशव सेन, महामना विजयकृष्ण गोस्वामी और कहाँ मैं कालेज का सामान्य छोकरा। आप इन लोगों के साथ मेरी तुलना कर रहे हैं?"

दरअसल ब्राह्म-समाज के इन दिग्गजों के आगे नरेन्द्र अपने को तुच्छ समझता रहा, जबकि रामकृष्ण देव अपनी योगदृष्टि से यह जान चुके थे कि नरेन्द्र कौन है और मानव-रूप में क्यों आया है? इस संसार में वह क्या-क्या करेगा?

इसी बीच एटर्नी कार्यालय में नरेन्द्र को लिपिक का कार्य मिल गया था। कुछ पुस्तकों के अनुवाद का कार्य भी मिला। एक दिन नरेन्द्र को पता चला कि साधारण ब्राह्म-समाज द्वारा संचालित सिटी कालेजिएट स्कूल में एक अध्यापक का पद रिक्त है। नरेन्द्रनाथ ने तुरन्त पण्डित शिवनाथ शास्त्री के पास जाकर निवेदन किया। उसे विश्वास था कि ब्राह्म-समाज के कार्यकर्ता होने के नाते यह नौकरी उसे अवश्य प्राप्त हो जायेगी।

शास्त्रीजी ने उसके प्रश्न का उत्तर न देकर स्वयं ही प्रश्न किया—"अभी तक तुम अपने लिए नौकरी नहीं खोज सके? बड़े आश्चर्य की बात है?"

यह उत्तर सुनकर नरेन्द्र हक्का-बक्का रह गया। उसे दृढ़ विश्वास था कि उसकी सेवाओं को देखते हुए शास्त्रीजी उसे रख लेंगे।

नरेन्द्र के भीतर छिपी हुई जो विराट्-शक्ति थी, वह स्कूल मास्टरी जैसी नगण्य नौकरी के लिए नहीं थी। उसे अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं था। रामकृष्ण देव उसे पहचान गये थे, पर उसे जाग्रत करने का समय नहीं आया था।

दरअसल नरेन्द्र को अध्यापक की नौकरी इसलिए नहीं दी गयी कि ब्राह्म-समाज

का कार्यकर्ता होते हुए भी वह मूर्ति-पूजक रामकृष्ण देव के यहाँ आता-जाता रहा। नरेन्द्र का यह आचरण शास्त्रीजी को पसन्द नहीं था, इसलिए वे उसकी उपेक्षा कर गये। यह दैव संयोग था, वर्ना नरेन्द्र विश्व में कभी विवेकानन्द के रूप में गौरवान्वित न होते।

परमहंसजी ने कहा था—"मेरा नरेन्द्र सामान्य मानव नहीं है। वह ब्रह्मलोक का ऋषि है। उसमें वाल्मीकि, व्यास, बुद्ध, शंकर तथा नेपोलियन की आत्माएँ प्रवेश कर गयी हैं।"

रामकृष्ण के सम्पर्क में आने का कारण उनकी ज्ञान-पिपासा थी। जिस प्रकार संसार की समस्त नदियाँ समुद्र से जा मिलती हैं, ठीक उसी प्रकार उन्हें अपने इष्ट से मिलना था। यही उनका भवितव्य रहा। उन्होंने उन दिनों की मन:स्थिति के बारे में लिखा है—"यौवन में पदार्पण करने के बाद प्रत्येक रात सोते समय दो प्रकार की कल्पनाएँ मेरे मन में उठती थीं। एक में मैं यह देखता था जैसे मुझे अपार संपत्ति प्राप्त हुई है। सारी दुनिया मुझे धनकुबेर कह रही है। मैं समाज का सबसे बड़ा आदमी हूँ। उस समय यही अनुभव होता था कि ऐसी शक्ति मुझमें है। दूसरे क्षण मैं देखता कि मानों धरती का सब कुछ त्यागकर अपने को ईश्वर पर निर्भर कर मैंने कौपीन धारण कर लिया है। स्वेच्छा से भोजन कर रहा हूँ, पेड़ के नीचे सो रहा हूँ। उस वक्त भी वही शक्ति मुझे प्रेरणा दे रही थी कि अगर मैं चाहूँ तो ऋषि-मुनियों की तरह जीवन व्यतीत कर सकता हूँ। इस प्रकार मेरे मन में दो प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न होती रहीं, पर मेरा हृदय दूसरा जीवन पसन्द करने लगा था। मैं सोचता था कि परमानन्द की प्राप्ति के लिए इस मार्ग को अपनाना होगा। उस समय भूमानन्द का विषय सोचते हुए मन ईश्वर-चिन्ता में मग्न हो ज़ाता था। आश्चर्य की बात यह है कि ऐसी घटनाएँ काफी दिनों तक नित्य होती रहीं।"

ब्राह्म-समाज में काम करते हुए एक बार नरेन्द्र ने महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर से पूछा था—"महाशय, क्या आपने ईश्वर को देखा है?"

महर्षि इस प्रश्न् के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने कहा—"तुम्हारे नेत्र योगियों की तरह हैं।"

अपने प्रश्न का यह उत्तर पाकर उन्हें बड़ी निराशा हुई। वे ऐसे महापुरुष की तलाश करने लगे जो यह कह सके कि मैंने ईश्वर को देखा है। ब्राह्म-समाज के आडम्बर से उनका मन तृप्त नहीं हुआ था। यह संस्था तो केवल समाज-सुधार के लिए सक्रिय रहती है। सत्य-वस्तु की प्राप्ति के लिए कुछ नहीं करती।

उन दिनों नरेन्द्र सिमुलिया मुहल्ले में रहता था। उनके मुहल्ले में श्री सुरेन्द्रनाथ मित्र के यहाँ सन् १८८१ ई० के नवम्बर माह में परमहंस रामकृष्ण देव शिष्यों के

साथ आमन्त्रित थे। इस आयोजन में भजन गाने की फरमाइश होने पर मित्र महाशय ने नरेन्द्र को अपने यहाँ बुलवाया। नरेन्द्र बचपन से ही प्रतिभाशाली था। अच्छा तैराक, कुशल अश्वारोही, मँजा हुआ पहलवान था। गुल्ली-डण्डा, दौड़धूप, मुक्केबाजी, लाठी-तलवार आदि कार्यों में सिद्धहस्त था। अखाड़े में नित्य कुश्ती लड़ने जाता था। भारतीय अखाड़ों के देवता हनुमान् हैं। वे महावीर (हनुमान्) से इतने प्रभावित थे कि अपने एक भाषण में उन्होंने कहा है—''सारे भारत में महावीर की पूजा चालू करा दो। दुर्बल जाति के सामने इस महावीर्य का आदर्श उपस्थित कर दो। शरीर में बल नहीं, हृदय में साहस नहीं, क्या होगा इन जड़पिण्डों से? मेरी इच्छा है कि घर-घर महावीर की पूजा हो।''

यह उनके चरित्र का एक पहलू था तो दूसरी ओर वे संगीत के अच्छे जानकार थे। सुगायक के अलावा यंत्र-संगीत के कुशल कलाकार थे। तत्कालीन ध्रुपद गायकों से गायन की शिक्षा ली थी। ब्राह्म-समाज के रविवासरीय उपासना में बराबर भजन गाते थे।

× × ×

नरेन्द्रनाथ की सारी चिन्ताएँ दूर हो गयी थीं। अब वे काली मूर्ति को प्रस्तरमयी नहीं, चिन्मयी, ब्रह्माण्ड भाण्डोदरी, भक्ति-मुक्तिदायिनी, भय-विनाशिनी जगन्माता के रूप में मानने लगे थे।

नरेन्द्रनाथ की बेकारी और अभाव दूर हो गया। अब उन्हें निरन्तर कार्य मिलने लगा। रामकृष्ण देव अपनी भावधारा के माध्यम से नरेन्द्रनाथ को साधना की एक-एक सीढ़ी चढ़ाते गये। अनेक प्रकार की अतीन्द्रिय अनुभूतियों के माध्यम से उन्होंने सत्य को पहचाना।

अपने गुरु से प्राप्त आध्यात्मिक साधना के माध्यम से उन्होंने धर्म-जगत् के एक नवीन द्वार का उद्घाटन किया। उन्होंने लोगों को बताया कि इस संसार में सबसे ऊपर मनुष्य है। उन्होंने मुक्ति-साधना का एक नया पथ पराधीन भारतवासियों को दिया। विश्वबन्धुत्व, मानव-सेवा का सर्वप्रथम बीज बोने वाले नरेन्द्रनाथ ही थे, जिन्होंने प्रत्येक मानव को शिव के रूप में देखा।

अधिकांश विद्वानों का कहना है कि भारत ने भगवान् तथागत के उपदेशों और विचारों की उपेक्षा की है, इसीलिए आज हम नारकीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अगर हम बुद्ध के आदर्शों को अपनाये रहते तो यह दिन न देखना पड़ता। बुद्ध ने सोये हुए भारतवासियों को जगाया था। शायद यह बात सही हो। परन्तु बुद्ध के बाद जो कार्य स्वामी विवेकानन्द ने किया, अगर हम उस पर ध्यान देते, उनके विचारों को पहचान कर उस मार्ग पर चलते तो न केवल समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन होता, बल्कि विदेशी दासता से मुक्ति मिल जाती और संसार के उन्नत राष्ट्रों में हमारी गणना होती।

नरेन्द्रनाथ ने कहा—"संसार के इतिहास का पर्यालोचन करो तो जहाँ कहीं भी किसी महान् आदर्श का संधान मिले तो समझ लो कि उसका जन्म भारतवर्ष में हुआ था। अतीतकाल से भारत-भूमि मानव-समाज के लिए अमूल्य भावों की खान बनी हुई है।"

नरेन्द्रनाथ ने परमहंस के उस सिद्धान्त को सर्वत्र प्रचारित किया है, जिसमें कहा गया है—"सर्वधर्म समन्वय वेद का प्रथम सूत्र है—नर-नारायण की सेवा।" राष्ट्र तथा समाज की उन्नति और कल्याण के लिये सबसे अधिक आवश्यक है कि देशवासी 'मनुष्य' बनें। वे बराबर भगवान् से यही प्रार्थना करते थे—"भगवान्, मेरे देश के निवासियों को मनुष्य बनाओ।"

स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे—"शरीर और आत्मा मिलकर मनुष्य बनते हैं। शरीर तुच्छ नहीं है, शरीर आत्मा का मन्दिर है। सुन्दर मन्दिर में सुन्दर विग्रह के रहने पर सोने में सोहागा होता है। इसलिए शरीर-मन्दिर को स्वस्थ बनाओ। हमारे पूर्वज कह गये हैं—"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्। देह मन्दिर और विग्रह आत्मा है। आत्मा ही ईश्वर है। आत्मा के प्रति अविश्वास का अर्थ है नास्तिकता।"

सन् १८८५ ई० में रामकृष्ण देव कण्ठ-रोग से पीड़ित हुए। नरेन्द्रनाथ दिन-रात गुरु की सेवा में लग गये। गुरु-सेवा से खाली होते ही अपने गुरुभाईयों के साथ तीव्र साधना में निमग्न हो जाते। ज्यों-ज्यों उनकी साधना उग्र होती गयी त्यों-त्यों उनके हृदय की व्याकुलता बढ़ती गयी। अभी तक नरेन्द्र को चरम वस्तु प्राप्त नहीं हुई थी, इसीलिए वे आहार-निद्रा त्याग कर साधना में डूब गये थे।

बातचीत के सिलसिले में एक दिन नरेन्द्र ने गुरुदेव से कहा—"मैं शुकदेव मुनि की भाँति समाधि में डूब जाना चाहता हूँ। केवल देह-रक्षा के लिए कुछ नीचे उतर कर समाधिस्थ होना चाहता हूँ।"

नरेन्द्र की इच्छा को सुनते ही रामकृष्ण देव ने नाराज होकर कहा—"तू ऐसा सोच रहा है? छी: छी:। मेरा ख्याल था कि तू एक विशाल वटवृक्ष बनेगा, जिसकी छाया में अगणित नर-नारी आश्रय ग्रहण करेंगे। पर तू केवल अपने स्वार्थ की बात सोच रहा है?"

गुरुदेव की इच्छा को सुनकर नरेन्द्र को होश आया कि वे मुझे क्या बनाना चाहते हैं। मुझसे क्या कराना चाहते हैं? अपने स्वार्थी मन के प्रति उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ। चुपचाप आँसू बहाने लगे। इस घटना के कुछ दिनों बाद वे काशीपुर स्थित बाग में ध्यान लगा कर बैठ गये। धीरे-धीरे समाधि में लीन हो गये। बाहर से देखने पर लगता था जैसे मृत हो गये हों।

यह दृश्य देखकर नरेन्द्र का एक गुरुभाई भयभीत होकर गुरुदेव के पास दौड़ता हुआ गया और उनसे निवेदन किया—"गुरुदेव, नरेन्द्र तो मर गया।"

परमहंसजी स्थिति को समझ गये। उन्होंने कहा—"अच्छा हुआ। अब कुछ देर उसी स्थिति में पड़ा रहे। यह लड़का मुझे बहुत तंग करता है।"

रात को जब नरेन्द्र सहज अवस्था में हुआ, तब गुरुदेव के पास आया। गुरुदेव ने गम्भीर होकर पूछा—"क्यों रे, इस बार माँ ने सब कुछ दिखा दिया या नहीं? यह याद रखना, आगे से चाभी मेरे पास रहेगी। माँ का काम तुझे करना है। जब माँ का काम समाप्त हो जायेगा, तब यह अवस्था तुझे मिलेगी।"

कहने का मतलब यह कि गुरुदेव ने नरेन्द्र की समाधि का मार्ग बन्द कर दिया। इसी कारण आगे चलकर नरेन्द्र की सारी शक्ति, समस्त प्रतिभा संसार के दुःखी और आर्तजनों की सेवा में लग गयी। यह चमत्कार भगवान् रामकृष्ण की कृपा से ही हुआ।

परमहंसजी को यह ज्ञात हो गया कि अब मेरे जाने का समय हो गया है—केवल चंद रोज का मेहमान हूँ। इसलिए वे नरेन्द्रनाथ को बराबर यह समझाने लगे कि आगे उसे क्या-क्या करना है। काम का बोझ देखकर नरेन्द्र झुँझलाकर कह उठा—"इतना काम मुझसे नहीं होगा। मैं नहीं करूँगा।"

रामकृष्ण देव ने कहा—"तुझे करना पड़ेगा।"

× × ×

काफी दिनों से नरेन्द्रनाथ गुरु की सेवा में लगे थे। इस बीच घर भी नहीं जा सके, आखिर एक दिन माँ ममता के कारण काशीपुर आयीं। माँ के साथ छोटा भाई भी था। रामकृष्ण देव बिस्तर पर लेटे हुए थे।

नरेन्द्र की माँ को देखते ही ठाकुर ने कहा—"डॉक्टरों ने मुझे बातचीत करने के लिए मना किया है, पर आपसे बात करनी आवश्यक है। आप आयीं, यह अच्छा हुआ। आप इस वक्त नरेन्द्र को अपने साथ ले जाइये।"

नरेन्द्र पास ही खड़ा था। उसकी ओर एक बार देखने के बाद ठाकुर ने पुनः कहा—"गिरीश आदि मित्रों ने जबरन इसे गेरुआ वस्त्र पहनाया है। मैंने विरोध किया था—अभी तुम्हें संन्यासी नहीं बनना है। तुम्हारी माँ, छोटे भाई-बहने हैं।"

सारी बातें सुनने के बाद माँ ने जमीन से माथा टेक कर ठाकुर को प्रणाम किया। इसके बाद नरेन्द्र को साथ लेकर वापस चली आयीं।

शरीर त्यागने के तीन-चार दिन पूर्व एक दिन शाम को ठाकुर ने नरेन्द्र को बुलवाया। उस समय कमरे में ठाकुर और नरेन्द्रनाथ के अलावा अन्य कोई नहीं था। ठाकुर ने दरवाजा बन्द करने की आज्ञा दी। इसके बाद ज्योंही नरेन्द्र उनके पास आकर बैठा, त्योंही वे समाधिस्थ हो गये।

एकाएक नरेन्द्रनाथ ने अनुभव किया कि ठाकुर के शरीर से बिजली की तरह ज्योति निकली और स्वयं उनके शरीर में समा गयी। इसके साथ ही स्वयं नरेन्द्र भी

समाधि में लीन हो गये। काफी देर तक यह स्थिति बनी रही। जब नरेन्द्र प्रकृतिस्थ हुए तब उन्होंने देखा—रामकृष्ण देव का आनन आँसुओं से भींगा हुआ है।

नरेन्द्र ने व्याकुल होकर पूछा—"क्या हुआ गुरुदेव?"

रामकृष्ण देव ने गद्‌गद होकर कहा—"आज तुझे सर्वस्व देकर मैं फकीर हो गया बेटा। बिल्कुल खाली हो गया। इस शक्ति के जरिये तू संसार में अनेक कार्य करेगा। जिस दिन तेरा काम समाप्त हो जायेगा उस दिन तू यहाँ से चला जायेगा।"

नरेन्द्र को अपनी समस्त आध्यात्मिक शक्ति सौंप कर भगवान् रामकृष्ण परम शान्ति अनुभव करने लगे। कण्ठ-रोग बढ़ने लगा। नरेन्द्र उनकी सेवा करता रहा। अचानक उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि यदि गुरुदेव इस समय यह कहें कि मैं भगवान् हूँ तभी विश्वास करूँगा।

ज्योंही नरेन्द्र के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ, त्योंही भगवान् रामकृष्ण को अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति से सूचना मिल गयी। उन्होंने कहा—"अभी तक तू अन्धविश्वास के झूले में झूल रहा है? मैं सच कह रहा हूँ, जो राम और कृष्ण थे, वही इस समय मेरे शरीर में रामकृष्ण के रूप में हैं।"

गुरुदेव की बातें सुनकर नरेन्द्र चौंक उठा। अपने सन्देह पर उन्हें पश्चात्ताप होने लगा। गुरु के चरणों पर सिर रखकर वह रोने लगा। रामकृष्ण देव नरेन्द्र के सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—"अच्छा हुआ जो शंका-निवारण हो गया।"

१६ अगस्त, सन् १८६६ ई० को १ बजकर ६ मिनट पर रामकृष्ण देव समाधि लगाकर बैठे और दूसरे दिन दोपहर को ब्रह्मलीन हो गये।

रामकृष्ण देव के निधन के पश्चात् उनके १६ शिष्यों ने 'त्यागी संघ' बनाया था। सहसा वह बिखर गया। अर्थ और स्थानाभाव के कारण। नरेन्द्र इस घटना से बड़े दुःखी हुए। अगर गुरुदेव रहते तो यह स्थिति उत्पन्न न होती।

ठीक इन्हीं दिनों रामकृष्ण देव के एक परम भक्त श्री सुरेन्द्रनाथ ने नरेन्द्र के पास जाकर कहा—"तुम अपने गुरुभाईयों को लेकर कार्य प्रारम्भ करो। तुम लोगों के लिए मैं अर्थ की व्यवस्था कर दूँगा।"

नरेन्द्र की सवालिया सूरत देखकर सुरेन्द्रनाथ ने कहा—"आज शाम को मैं जब आफिस से लौटा, तब एकाएक मेरे कमरे में एक अपूर्व ज्योति प्रकट हुई। उसमें गुरुदेव दिखाई दिये। उन्होंने कहा—"सुरेन्द्र, तुम क्या कर रहे हो? मेरे बच्चे निराश्रय भटक रहे हैं। उनके रहने के लिए स्थान का प्रबन्ध करो।" इस आदेश को सुनते ही मैं तुम्हारी तलाश में चला आया। तुम्हें यह मालूम ही है कि मैं काशीपुर वाले आश्रम की सेवा में लगा रहा। उसे बन्द नहीं करूँगा। मेरा अनुरोध है कि तुम लोग अपना काम बन्द मत करो। कम से कम हम लोग कभी-कभी वहाँ जाकर शान्ति प्राप्त करेंगे।"

सुरेन्द्रनाथजी के सहयोग से नरेन्द्रनाथ अपने कुछ गुरुभाईयों को लेकर बराह नगर स्थित मकान में जाकर रहने लगे। सन् १८८७ ई० में इन लोगों ने संन्यास ग्रहण किया। अब यह बताना कठिन है कि उस दिन संन्यास लेने के बाद नरेन्द्रनाथ ने कौन-सा नाम ग्रहण किया था। सम्भवत: विविदिषानन्द या सच्चिदानन्द था, क्योंकि अमेरिका जाने के पूर्व उन्होंने खेतड़ी-नरेश के अनुरोध पर अपना नाम विवेकानन्द रखा था।[1]

बराह नगर के मठ में सभी गुरुभाई पूजा-पाठ, जप, ध्यान, शास्त्र-चर्चा और कीर्तन करने लगे। रामकृष्ण देव ने जिन कार्यों को करने का आदेश दिया था, वे सभी कार्य होने लगे। उन दिनों श्रद्धावश दान बहुत कम लोग देते थे। फलत: सभी शिष्य माड़-भात खाते थे। तरकारी के नाम पर कुंदरू की पत्तियाँ उबालकर खाते थे। कभी-कभी उपवास भी करना पड़ता था। आश्चर्य की बात यह है कि इस कष्ट से घबराकर कोई भागा नहीं।

कुछ दिनों बाद विवेकानन्द ने घोषणा की कि अब मैं भारत-भ्रमण करूँगा। बराह नगर से वाराणसी होते हुए वे ऋषिकेश गये। इस यात्रा में उन्होंने अपने देशवासियों का वास्तविक रूप देखा। दर्द से उनकी आत्मा कराह उठी। लाखों-करोड़ों नारायण नर के रूप में नारकीय जीवन बिता रहे थे। उन्होंने निश्चय किया कि इन पददलितों का उद्धार करना होगा। कूपमण्डूकों को बताना होगा कि तुम सामान्य व्यक्ति नहीं हो, ईश्वर के रूप हो। रामकृष्ण देव की प्रेरणा से वे जन-सेवा करने लगे।

भ्रमण के साथ-साथ उनकी साधना और अध्ययन भी चलता रहा। अपने प्यारे भारतवासियों में चेतना उत्पन्न करने में भी वे लगे रहे। इनकी वाक्-शक्ति देखकर बड़े-बड़े विद्वान् चकित रह जाते। यहाँ तक कि इनके सभी गुरुभाई इनकी महाशक्ति को देखकर विस्मित हो उठे। विवेकानन्द की इस महाशक्ति के पीछे रामकृष्ण देव कार्य कर रहे थे। स्वयं स्वामी विवेकानन्द को पल-प्रतिपल इसका अनुभव हो रहा था।

एक दिन आपने अपने गुरुभाईयों से कहा कि अब मैं अकेला यात्रा पर जाऊँगा। विवेकानन्द हमें छोड़कर जा रहा है यह जानकर सभी गुरुभाई व्याकुल हो उठे। लेकिन विवेकानन्द ने किसी के अनुरोध को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने निश्चय किया कि परिव्राजक के रूप में नर-नारायण की सेवा करूँगा।

इस यात्रा के दौरान वे खेतड़ी राज्य में गये। वहाँ राजस्थान के अद्वितीय

---

१. भारत के प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय पण्डित झाबरमल शर्मा ने अपनी पुस्तक खेतड़ी-नरेश और विवेकानन्द में लिखा है—"प्रत्यक्षदर्शी मुंशी जगमोहनलाल ने लेखक को बताया कि खेतड़ी-नरेश ने उनसे कहा था—'मेरी समझ से आपके योग्य नाम है—विवेकानन्द।' राजा साहब की इच्छानुसार उसी दिन से स्वामीजी ने अपना नाम विवेकानन्द रख लिया।"

व्याकरणाचार्य नारायणदास के यहाँ पतंजलि का भाष्य पढ़ने लगे। आपके दो दिनों के अध्ययन को देखकर पण्डित नारायणदास ने कहा—"स्वामीजी, आप जैसा विद्यार्थी मैंने कभी नहीं देखा। आप असाधारण हैं।"

खेतड़ी के राजा श्री अजीतसिंह आपकी प्रतिभा से प्रभावित हुए। वे पुत्रहीन थे। स्वामीजी से राजा ने आशीर्वाद की कामना की। राजा की स्थिति को देखकर उन्होंने कहा—"तुम्हें पुत्र अवश्य होगा। यह मेरा आशीर्वाद है।"

वहाँ से स्वामीजी पोरबन्दर गये। वहाँ गुजरात के प्रसिद्ध विद्वान् श्री शंकर पाण्डुरंग उन दिनों वेदों का अनुवाद कर रहे थे। पाण्डुरंगजी की सहायता में स्वामीजी लग गये। स्वामीजी के कार्य को देखकर एक दिन पाण्डुरंग ने कहा—"स्वामीजी, आप विश्व के महान् तपस्वियों में अन्यतम हैं। सच तो यह है कि आप इस भारत-भूमि के योग्य नहीं हैं। अगर आप पाश्चात्य देशों में जाकर भारतीय संस्कृति की शंखध्वनि करें तो उत्तम होगा। आज इसकी आवश्यकता भी है।"

स्वामीजी ने कहा—"एक बार मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ था। पर यह सम्भव कैसे होगा, समझ में नहीं आ रहा है।"

पाण्डुरंगजी के यहाँ से चलकर दक्षिण भारत की कई जगहें घूमते हुए स्वामीजी मैसूर राज्य जा पहुँचे। यहाँ के दीवान सर के० शेषाद्रि अय्यर आपके प्रति आकृष्ट हुए। मैसूर के राजा ने आपको अपने महल में बुलवाया और पण्डित सभा के बीच आपने भाषण दिया। आपके भाषण का पण्डितों के अलावा महाराजा पर व्यापक प्रभाव पड़ा। महाराजा ने आपके चरणों पर बहुमूल्य भेंट रखते हुए कहा—"इसे स्वीकार करने की कृपा करें।"

स्वामीजी ने कहा—"राजन्, मैंने प्रतिज्ञा की है कि परिव्राजक अवस्था में धन स्पर्श नहीं करूँगा। आप यह सब धन मेरे नररूपी नारायणों को बाँट दीजिये। जो निर्धन हैं और जिन्हें इसकी आवश्यकता है।"

मैसूर से मद्रास आदि शहरों में भाषण देते हुए स्वामीजी कन्याकुमारी गये। देवी का दर्शन करने के बाद उन्होंने कहा—"जननी, मैं मुक्ति नहीं चाहता। आपकी सेवा करना चाहता हूँ।"

मन्दिर के सामने स्थित एक विशाल शिलाखण्ड पर बैठ कर वे ध्यानमग्न हो गये। ध्यानावस्था में गुरुदेव परमहंस ने आशीर्वाद दिया—"दरिद्र भारतवासियों का प्रतिनिधि बनकर तुम्हें पाश्चात्य देशों का भ्रमण करना है। विश्व-मानवता, विश्व-बन्धुत्व की भावना की अलख जगाना है। इस पुण्य-कार्य में तुम्हें सफलता मिलेगी।"

इस आदेश को सुनते ही उनका ध्यान भंग हो गया। सामने हिन्द महासागर, दाहिने अरब और बायें बंगाल सागर लहरा रहा था। पीछे कन्याकुमारी का मन्दिर उन्हें

प्रेरणा देने लगा। वे समझ नहीं पा रहे थे कि कैसे सम्बलहीन स्थिति में इतनी दूर की यात्रा कर सकूँगा।

वे कन्याकुमारी से कई जगह भाषण देते हुए मद्रास गए। वहाँ एक दिन स्वप्न में उन्होंने देखा—रामकृष्ण देव का ज्योतिर्मय शरीर समुद्र जल के ऊपर आया और वे अपने पीछे आने का संकेत कर रहे हैं। पूर्व की ओर इशारा करते हुए उन्होंने कहा—"जाओ, देर मत करो।"

दूसरे दिन खेतड़ी के महाराजा का एक आदमी स्वामीजी को खोजता हुआ आया। उसने निवेदन किया कि आपके आशीर्वाद से महाराज को पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई है। महाराज का अनुरोध है कि आप खेतड़ी पदार्पण कर नवजात को आशीर्वाद दें। इससे हम सब कृतार्थ होंगे।

बातचीत के सिलसिले में जब खेतड़ी-नरेश को यह मालूम हुआ कि वे विदेश जाना चाहते हैं, तब उन्होंने सारा प्रबन्ध कर दिया।

स्वामीजी लंका, सिंगापुर, हाँगकाँग, नागासाकी, ओसाका, टोकियो होते हुए कनाडा गये और वहां से वे शिकागो पहुँचे। यात्रा में बराबर गुरुदेव का आशीर्वाद मिलता रहा। मार्ग में एक महिला बातचीत से इतनी प्रभावित हुई कि वह आपको अपने घर ले गयी। आपके लिये पादरियों जैसी पोशाक बनवा दी। ब्रिजी मेडोज नामक इस महिला के प्रयत्न से आपने कई जगह भाषण दिये। हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जे०एच० राइट आपके भाषणों से इतने प्रभावित हुए कि तुरन्त आगामी सितम्बर माह में होने वाली धर्म-सभा में भाषण देने के लिए आपको अवसर दिलाया।

११ सितम्बर, १८९३ ई० का दिन एक ऐतिहासिक दिन था। उस दिन भारत के इस महान् सन्त ने संसार के सभी धर्म-प्रतिनिधियों को हिलाकर रख दिया। सभी देशों के प्रतिनिधि अपना-अपना भाषण लिख कर लाये थे। केवल स्वामी विवेकानन्द ने अलिखित भाषण दिया था।

उन्होंने पाश्चात्य परम्परा के विरुद्ध "मेरे अमेरिका-निवासी भाईयों तथा बहनों" कहकर ज्योंही सम्बोधन किया, त्योंही हाल के अधिकांश लोग खड़े होकर इस महान् सन्त के सम्मान में कई मिनट तक तालियाँ बजाते रहे। अमेरिका के इतिहास में इस प्रकार की यह पहली घटना थी। भगवान् रामकृष्ण के शिष्य ने उन्हें नयी भाषा में नये रस का आस्वादन कराया। सभी लोगों के अन्तर के तार झंकृत हो उठे। विवेकानन्द की वाणी ने कमाल कर दिखाया।

इस दिन की घटना के बारे में महर्षि रोमा रोलाँ ने लिखा है—"यह रामकृष्ण का ही निःश्वास था जो समस्त विघ्न-बाधाओं का अतिक्रमण कर उनके शिष्य के मुँह से निःसृत हुआ था।"

भगिनी निवेदिता ने लिखा—"स्वामीजी ने जब शिकागो-महासभा में भाषण देना आरम्भ किया था। तब हिन्दुओं की प्राचीन भाव-राशि के सम्बन्ध में ही कहा था। किन्तु जब उनका भाषण समाप्त हुआ, तब उन्होंने आधुनिक हिन्दू-धर्म की व्याख्या की।"

दैनिक पत्रों ने लिखा—"उनकी वक्तृता सुनने के बाद भारत की तरह ज्ञानवृद्ध देश में धर्म-प्रचारक भेजना कैसी मूर्खता का काम है, इसे हम विशेष रूप में अनुभव कर रहे हैं।"

प्राचीनकाल के अश्वमेध यज्ञ करने वाले दिग्विजयी सम्राटों की भाँति सुदूर अमेरिका में भारतीय दर्शन-अध्यात्म का झण्डा गाड़ कर स्वामीजी ने प्राच्य-सभ्यता का दिग्दर्शन कराया। जो लोग इस देश के निवासियों को असभ्य तथा साँपों और संन्यासियों का मुल्क समझते आ रहे थे, उन्होंने इस भारतीय सन्त के आगे अपना सिर झुका दिया। स्वामीजी तूफानी गति से अमेरिका के विभिन्न शहरों में भाषण देते रहे।

अमेरिका के बारे में स्वामीजी ने कहा है—"जब मैं अमेरिका में था, तब भी मुझमें अद्भुत शक्तियों का स्फुरण हुआ करता था। क्षणमात्र में मैं मनुष्य की आँखों से उसके मन के सब भावों को जान लेता था। किसी के मन में कैसी भी बात क्यों न हो, वह सब मेरे सामने प्रत्यक्ष हो जाती थी। कभी किसी-किसी से अनायास ही उसके मन की गोप्य बातें भी कह दिया करता था। जिन-जिन लोगों को मैं ऐसा कहता, उनमें से अनेक मेरे चेले बन जाते थे और यदि कोई किसी बुरे अभिप्राय से मुझसे मिलने आता था तो वह शक्ति का परिचय पाकर फिर कभी मेरे पास नहीं आता था।"

वास्तव में यह शक्ति जिसे असाधारण अतीन्द्रिय-शक्ति कहा जाता है, उन्हें स्वयं भगवान् रामकृष्ण ने सौंपी थी। बाद में उसे अपनी साधना के माध्यम से स्वामी विवेकानन्द ने उपार्जित किया था। इसके अतिरिक्त भी भगवान् रामकृष्ण उनकी आजीवन सहायता करते रहे।

अपनी भाषण-शक्ति की चर्चा करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक शिष्य से कहा था—"अमेरिका के विभिन्न शहरों में जब मैंने भाषण देना प्रारम्भ किया, तब सप्ताह में बारह-बारह, तेरह-तेरह और कभी इससे भी अधिक भाषण देता था। मानसिक और शारीरिक परिश्रम से इतना थक जाता था कि कल किस विषय पर बोलूँगा, यह समझ नहीं पाता था। एक दिन इसी चिन्ता में परेशान हो उठा और नींद आ गयी। उस स्थिति में मैंने अनुभव किया कि कोई मेरे पास खड़ा होकर भाषण दे रहा है। उसमें कितने नये भावों तथा नयी कथाओं का उल्लेख है। मेरे लिये सभी बातें नयी थीं। जब मैं सोकर उठता, तब उन्हीं बातों को स्मरण करता। कई बार ऐसी घटनाएँ हुईं। मेरी बगल के कमरे में रहने वाले लोग अक्सर पूछते—'स्वामीजी, कल रात

इतनी जोर-जोर से किससे बातें करते रहे?' मैं उनके प्रश्नों को टाल जाता था। इस रहस्यमयी घटना के बारे में उन्हें क्या बताता?''

× × ×

उन दिनों मैडम एमा कालवे विश्व की सर्वश्रेष्ठ ओपेरा गायिका थी। सन् १८९४ में जिन दिनों स्वामीजी वहाँ थे, शिकागो के एक हाल में उसका एक कार्यक्रम था। प्रथम दृश्य में गाने के बाद उसका दम घुटने लगा। काफी अनुरोध करने पर दूसरी बार स्टेज पर आयी। लेकिन तीसरी बार आने का उसे साहस नहीं हुआ। उसे लगा जैसे उसके प्राण निकल जायेंगे। ऐसा क्यों हो रहा है, यह वह समझ नहीं पा रही थी। पर मैनेजर के विशेष अनुरोध पर पुनः स्टेज पर आई। कार्यक्रम समाप्त कर जब वह ग्रीन रूम में गयी तब किसी ने उसे बताया कि उसकी एकमात्र पुत्री जलकर मर गयी है।

यह समाचार सुनते ही वह बेहोश हो गयी। होश में आने पर उसका मस्तिष्क विकृत हो गया। बचपन से जिद्दी, पति-परित्यक्ता, वह अपनी एकमात्र पुत्री को सम्बल बना कर अपने गम को भुला रही थी। अब ऐसे जीने से क्या लाभ?

घर के पास बड़ी-सी झील थी। वह एक बार वहाँ डूबने गयी तो लगा जैसे किसी ने पीछे से पकड़ लिया हो। तभी उसे याद आया कि पड़ोस की एक सहेली ने कहा था—''मेरे यहाँ एक भारतीय सन्त ठहरे हैं। इनके पास जाओ। तुम्हें शान्ति मिलेगी।''

सहेली की सलाह उसे पसन्द नहीं आयी। दूसरे दिन पुनः आत्महत्या करने गयी तो रास्ता भूलकर स्वामीजी के पास पहुँच गयी। वहाँ मन कुछ शान्त हुआ। स्वामीजी से बिना मुलाकात किये चली गयी। तीसरे दिन पुनः चक्कर काटती हुई सहेली के घर चली आयी। बैठक में आकर चुपचाप बैठ गयी। वह यह सोच रही थी कि सहेली आये तो उसे साथ लेकर उस सन्त से मुलाकात करूँ।

ठीक उसी समय बगल के कमरे से एक आवाज आई—''इस कमरे में चली आओ माँ। मेरे पास चली आओ।''

मन्त्रमुग्धा की भाँति एमा उस कमरे में चली गयी जहाँ स्वामी विवेकानन्द बैठे थे। एक कुर्सी पर उसके बैठते ही स्वामीजी एमा के जीवन की समस्त कुत्सित घटनाओं का वर्णन करने लगे। एमा अवाक् होकर उनकी ओर देखती रही। जिस व्यक्ति को जीवन में पहली बार देख रही हूँ, जिन घटनाओं की चर्चा मैंने कभी किसी से नहीं की, वे सारी बातें यह संन्यासी कैसे जान गया?

एमा ने विस्मय से पूछा—''ये सारी बातें आपको कैसे मालूम हुईं?''

स्वामीजी ने कहा—''तुम मेरे सामने एक खुली हुई पुस्तक की भाँति बैठी हो। तुम्हारे बारे में किसी ने कुछ नहीं बताया। केवल तुम्हारा चेहरा देखकर तुम्हारे जीवन की सारी बातें कहता गया।''

काफी देर तक दोनों में बातें होती रहीं। एक प्रकार से स्वामीजी के सम्पर्क में आने के कारण एमा ने पुनर्जन्म प्राप्त किया। उसने एक दिन स्वामीजी के समक्ष आत्मसमर्पण करते हुए कहा—"मं पियार।" फ्रांसीसी भाषा में इसका अर्थ है—मेरे पिता।

स्वयं स्वामीजी ने अपनी पुस्तक में एमा का जिक्र किया है और एमा अपनी पुस्तक में स्वामीजी की अजस्र प्रशंसा कर चुकी है। जब दूसरी बार स्वामीजी अमेरिका गये तब वह उनके साथ मिस्र, टर्की, फ्रांस, ग्रीस आदि देशों की यात्रा करती रही। स्वामीजी के शरीर-त्याग करने के बाद कलकत्ता स्थित बेलुड़ मठ में आकर कहती रही—"मेरे पिता का प्रेमपूर्ण हृदय कितना विशाल था। कितने पवित्र थे वे। कितना आकर्षण था उनमें, कितनी मर्मस्पर्शी बातें करते थे, उनमें शिशु-सुलभ चपलता थी। उन्नत, उदार चरित्र था। अपूर्व तेजोमय मूर्ति थी और कितनी सुन्दर आकर्षक विस्तृत दो उज्ज्वल आँखें थीं।"

स्वामीजी के सम्पर्क में आने के बाद एमा ने दर्शन एवं अध्यात्म का विस्तृत अध्ययन किया था। जितने दिनों तक वह स्वामीजी के साथ रही, उनकी अतीन्द्रिय-शक्ति देखकर चकित रह जाती थी।

इसी प्रकार भगिनी निवेदिता भी स्वामीजी से प्रभावित होकर भारत चली आयी और यहाँ के स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लेती रही। स्वामीजी अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति का प्रयोग बहुत कम करते थे।

जिन दिनों स्वामीजी लन्दन में थे, उन दिनों प्रोफेसर मैक्समूलर इनसे हुई बातचीत से काफी प्रभावित हुए और आगे चलकर उन्होंने भगवान् रामकृष्ण की जीवनी लिखी। स्वामीजी का मैक्समूलर पर कितना प्रभाव पड़ा था, इसका अंदाजा हम एक घटना से लगा सकते हैं।

लन्दन से कहीं जाने के लिए स्वामीजी स्टेशन पर आये। गाड़ी आने में देर थी। सहसा तेज आँधी के साथ-साथ बरफ गिरने लगी। देखते-देखते मौसम खराब हो गया। ठीक इसी समय वहाँ प्रोफेसर मैक्समूलर आ गये।

प्रोफेसर साहब को देखकर स्वामीजी ने पूछा—"आप यहाँ कैसे?"

"आप जा रहे हैं, इसलिए विदा देने आ गया।"

"उम्र को देखते हुए ऐसे मौसम में आपको यहाँ नहीं आना चाहिए था। बेकार आपने कष्ट किया।"

गद्गद स्वर में प्रोफेसर ने कहा—"श्री रामकृष्ण के योग्य शिष्य का दर्शन करना मेरे लिए सौभाग्य की बात है।"

इस मर्मस्पर्शी बात को सुनकर स्वयं स्वामीजी अभिभूत हो उठे। विदेश में एक असाधारण विद्वान् इतना स्नेह और आदर दे रहा है। इस निश्छल प्रेम की तुलना किससे हो सकती है?

स्वामीजी की वक्तृता तथा ज्ञान से प्रभावित होकर मिस मूलर, मिस नोबेल, मिस्टर स्टार्डी आदि अनेक लोग उनके साथ मिलकर भारतीय वेदांत का प्रचार करने लगे। चारों ओर स्वामीजी की धूम मच गयी।

श्रीमती एमा कालवे ने अपनी जीवनी में लिखा है—"मेरे सामने स्वामीजी पादरियों के साथ धर्म-चर्चा किया करते थे। मैं चुपचाप वार्तालाप सुना करती थी। प्रसिद्ध तात्त्विक और पण्डित फादर लयसन से स्वामीजी की बातें होती रहतीं। आश्चर्य की बात है कि स्वामीजी ईसाई धर्मग्रन्थों की ऐसी बातों का विवरण सहज ही प्रकट कर दिया करते जिसका ज्ञान ईसाई-धर्म के उस जाने-माने फादर को भी कदापि नहीं था।

उन्होंने स्वामीजी से पूछा—"आपको इन बातों की जानकारी कैसे हो गयी?"

स्वामीजी ने कहा—"पिछले दस हजार वर्षों से हमारे वेदों के शेषांशों की पूर्ति पुरुषानुक्रम से ऋषि-मुनिगण करते रहे। संप्रदाय के अध्यक्ष अपने जीवन का इतिवृत्त, अध्ययन और अनुभूतियों के द्वारा लिख गये हैं। उन लोगों के देहान्त के बाद श्रेष्ठ ज्ञानी व्यक्तियों ने उनका संशोधन-अध्ययन किया। कुछ लोगों ने एक-दो पृष्ठ में अपने विचार उसमें संलग्न किये। शायद किसी-किसी की पुस्तकें उपनिषदों की श्रेणी में मान ली गयीं। इस दृष्टि से हमारे शास्त्रों का भण्डार विशाल है और पृथ्वी में सबसे बड़ा है।"

× × ×

स्वदेश आकर वे मद्रास गये। जिस दिन वे हावड़ा स्टेशन पर गाड़ी से उतरे, उस दिन उनकी गाड़ी को कलकत्ते के युवक खींचने लगे। देशवासियों ने अपने नरेन्द्र को, अपने विवेकानन्द को और अपनी मातृभूमि के रत्न को पहचान लिया था। अपनी श्रद्धा तथा सम्मान दिखाने के लिए उनकी गाड़ी में अपना कन्धा लगाया था। आज तक ऐसा सम्मान किसी भी अन्य व्यक्ति को नहीं मिला।

स्वामीजी संथालों को बहुत चाहते थे। यहाँ आकर जब बेलुड़ में मठ बनवाने लगे तब अधिकतर संथाल मजदूर काम करते रहे। एक दिन पूरी-तरकारी उन सबको खिलायी। इसके बाद उन्होंने कहा—"ये लोग मेरे नारायण हैं। आज मैंने नारायण को भोग दिया।"

अपनी दृढ़ शक्ति का परिचय देते हुए उन्होंने अपने एक शिष्य से कहा था—आज के संसार में केवल दुनियादारी बाकी रह गयी है। लेकिन जो साहसी हैं, ज्ञानी हैं, उन्हें ऐसी दुनियादारी की बातों से घबराना नहीं चाहिए। जगत् चाहे जो कहे, उसकी क्या परवाह करनी? मैं अपना काम करता चला जाऊँगा। अमुक क्या कहता है, अमुक

क्या लिखता है? अगर ऐसी बातों पर ध्यान दोगे तो कुछ नहीं कर सकोगे। क्या यह श्लोक तुम लोगों ने कभी सुना है—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्॥
अद्यैव मे मरणमस्तु युगान्तरे वा।
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

—नीतिनिपुण स्तुति करें या निन्दा, लक्ष्मी कृपालु हों या न हों, देहान्त आज हो या युग भर बाद, धीर जन न्याय के पथ से कभी विचलित नहीं होते। कितने ही तूफान पार करने के बाद मनुष्य शान्ति के राज्य में पहुँचता है। जो जितना बड़ा हुआ, उसके मार्ग में उतनी ही कठिनाई आई। परीक्षा रूपी कसौटी पर घिसने के बाद जगत् ने उसे बड़ा कहकर स्वीकार किया। जो डरपोक होते हैं, वे समुद्र की लहरों को देखकर ही किनारे पर नाव बाँध देते हैं। लेकिन जो वीर साहसी होते हैं, वे किसी बाधा पर ध्यान नहीं देते। वे अपना इष्ट लाभ करके ही दम लेते हैं।

संक्षेप में विवेकानन्द ने अपनी राम कहानी इन शब्दों में व्यक्त की है। केवल उनतालीस वर्ष की उम्र में वे जितने कार्य कर गये, जो विचार दे गये और सम्पूर्ण विश्व को जिस ढंग से आकृष्ट किया, पिछली दो शताब्दियों में किसी भी व्यक्ति ने नहीं किया। उनकी शक्ति से प्रेरित होकर इंग्लैण्ड-अमेरिका आदि देशों में अनेक मठ-मन्दिर बनवाये गये, जहाँ विश्व-बन्धुत्व की शिक्षा दी जा रही है। मानव को नारायण मान कर उसकी सेवा की जा रही है।

× × ×

सहसा शिष्यों ने अनुभव किया कि अब स्वामीजी उदासीन होते जा रहे हैं। पहले की तरह प्रत्येक कार्य में उत्साह नहीं दिखा रहे हैं। अगर किसी काम के बारे में कोई सलाह लेने जाता तो तुरन्त कह देते—"मुझसे कोई मतलब नहीं। अब मैं इन झंझटों से अलग रहना चाहता हूँ।"

इस प्रकार के उत्तर सुनकर गुरु-भाईयों को शंका हुई। लोगों को याद आया कि एक बार गुरुदेव रामकृष्ण ने कहा था—"जब नरेन्द्र को अपने स्वरूप का ज्ञान हो जायेगा, तब वह शरीर नहीं रखेगा।"

तो क्या नरेन्द्र को अपने स्वरूप का ज्ञान हो गया? एक दिन एक गुरु-भाई ने साहस के साथ पूछा—"स्वामीजी, आप कौन हैं, क्या इस बात को जान गये हैं?"

स्वामीजी ने कहा—"जान गया हूँ।"

अब लोग समझ गये कि पिछले कुछ दिनों से अचानक स्वामीजी के स्वभाव में क्यों परिवर्तन होता जा रहा है और अब पहले की तरह उत्साह से वे काम क्यों नहीं करते।

देहत्याग के एक सप्ताह पूर्व उन्होंने पंचांग मँगवा कर देखा और उसे अपने पास रख लिया। यहाँ तक कि राखाल महाराज, निवेदिता आदि किसी से भी विशेष बात नहीं करते थे।

देहत्याग के तीन दिन पूर्व मठ के अहाते में टहलते हुए अपने एक शिष्य को एक विशेष स्थान दिखाकर कहा—"जब मेरा शरीर छूट जाय, तब यहीं दाह-संस्कार करना।"

शुक्रवार, ४ जुलाई, सन् १९०२ को भोर में स्वामीजी जाग गये। सवेरे आठ बजे रामकृष्ण देव के मन्दिर में जाकर वे सभी दरवाजे-खिड़कियाँ बन्द करके ध्यान करने लगे। दोपहर ११ बजे मन्दिर से बाहर निकले। इसके बाद एक से चार बजे तक छात्रों को व्याकरण पढ़ाते रहे। शाम को स्वामी प्रेमानन्द के साथ बेलुड़ के बाजार में घूमने गये। वहाँ से वापस आकर अपने कमरे में खड़े हो गये। खिड़की के उस पार भागीरथी कल-कल ध्वनि करती हुई बह रही थी।

कुछ देर बाद अपने सेवक को बुलाकर उसे जप करने का निर्देश दिया और स्वयं भी बिछावन पर बैठ कर जप करने लगे। जप करते-करते वे लेट गये। काफी देर बाद उन्होंने एक गहरी साँस ली। एकाएक उनका हाथ काँपा। इसके साथ ही उनका सिर एक ओर लुढ़क गया। भ्रूमध्य में उनकी दृष्टि निबद्ध थी। चेहरे से अपूर्व प्रकाश प्रकट हो रहा था। उस समय रात के ९ बज कर १० मिनट हुए थे।

दूसरे दिन चिता के पास अनेक गुरुभाई, शिष्य खड़े थे। जब चिता में आग लगाई गई तब स्वामी निरंजनानन्द ने कहा—"नरेन चला गया।"

गिरीश घोष ने कहा—"चले नहीं गये, चोला बदल लिया।"





१०

स्वामी ब्रह्मानन्द

रात ९ बजे आफिस से लौटते ही केदारनाथ बसु ने अपनी पत्नी से कहा— "मुझे तुरन्त बेलुड़ जाना है। खाने-पीने में देर हो जायेगी। खाना नहीं खाऊँगा।"

पत्नी ने कहा—"कैसी बात करते हो? सवेरे खाकर गये हो और अब आये हो। खाना खाकर जहाँ जाना हो जाओ।"

केदारनाथ ने कहा—"कह तो दिया कि भोजन करने की इच्छा नहीं है। तुम लोग खाना खा लो।"

इतना कहते ही वे तेजी से बाहर निकले। अचानक इतनी रात को बेलुड़ क्यों जा रहे हैं, पत्नी यह भी नहीं पूछ सकी। सवेरे ९ बजे खाकर जाते हैं। दोपहर को एक कप चाय पीते हैं और फिर रात को ९ बजे तक लौटते हैं।

केदारनाथ बसु रैली ब्रदर्स कम्पनी में क्लर्क हैं। बेलुड़ मठ के अध्यक्ष स्वामी

ब्रह्मानन्द के शिष्य हैं। स्वामीजी को लोग प्राय: राखाल महाराज या 'महाराजा' कहते हैं। आज आफिस से लौटते वक्त केदारनाथ ठीक थे। सहसा मार्ग में न जाने क्यों उनका मन महाराजा का दर्शन करने के लिये व्याकुल हो उठा। घर आते-आते जैसे कोई तीव्र-शक्ति उन्हें तुरन्त बेलुड़ चलने के लिए प्रेरित करने लगी। घर पर सूचना देना आवश्यक था, वर्ना पत्नी रात भर जागती और घबराती रहती।

अहिरी टोला घाट पर आकर केदारनाथ ने देखा—चारों ओर सन्नाटा है। एक भी मल्लाह नहीं। अब सवाल यह उठा कि ऐसी हालत में वे बेलुड़ कैसे जाएँ। नाव के अलावा वहाँ जाने का अन्य कोई साधन नहीं। इसी ऊहापोह में थे कि उस अँधेरे में सामने से एक आदमी आता दिखाई दिया। उन्होंने सोचा—शायद कोई मल्लाह है। उस व्यक्ति के पास आने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि यह अन्य कोई नहीं, उन्हीं के गुरुभाई सुरेन्द्रनाथ सेन हैं।

उन्हें देखते ही सुरेन्द्र बाबू ने विस्मय से पूछा—"आप इस वक्त यहाँ कैसे?"

केदारनाथ ने कहा—"आज आफिस से लौटते वक्त न जाने क्यों महाराजा को देखने के लिए मन बड़ा व्याकुल हो गया। घर पर भी मन न लगा। न जाने कौन-सी शक्ति यहाँ तक खींच ले आयी। लेकिन आप कैसे?"

सुरेन्द्र बाबू ने हँस कर कहा—"यही हाल मेरा भी हुआ। लगता है कि महाराजा अपने पास बुलाना चाहते हैं, वर्ना आधी रात को यह सनक हम पर क्यों सवार होती? चलिये, एक से दो भले।"

मुँहमाँगा किराया देने पर एक मल्लाह राजी हुआ। बहाव के विपरीत नाव खेने में मल्लाह को परेशानी हो रही थी। समय काफी लग रहा था। आधी रात के बाद नाव बेलुड़ मठ के किनारे लगी। ज्योंही ये लोग नाव से उतरे, त्योंही दो नावें और भी किनारे लगीं। एक नाव पर डॉक्टर कांजिलाल और दूसरे पर काली-बाबू थे। ये दोनों श्रीमाँ (शारदा देवी) के शिष्य हैं।

इतनी रात गये सभी एक-दूसरे को देख कर अवाक् रह गये। सभी का कहना था कि पता नहीं क्यों महाराजा का दर्शन करने के लिए मन व्याकुल हुआ और चले आये।

अब चारों व्यक्ति यह सलाह करने लगे क्या इस वक्त महाराजा का दर्शन होगा। उन्हें इस वक्त जगाया नहीं जा सकता। इधर उनके दर्शन के बिना मन शान्त नहीं होगा। आखिर ऐसा क्यों हुआ? इसमें क्या रहस्य है?

इन्हीं बातों की चर्चा करते हुए चारों व्यक्ति घाट की सीढ़ियों को पार कर खुले मैदान में आये। अचानक सभी की निगाहें दो तल्ले पर खड़े महाराजा पर जा टिकीं।

महाराजा जाग रहे हैं? यह दृश्य देखते ही चारों दौड़े हुए भवन के पास आये। महाराजा ने कहा—"सीढ़ी का दरवाजा खुला हुआ है। तुम लोग ऊपर चले आओ।"

सभी ऊपर आये। महाराजा जहाँ खड़े थे, वहीं उनके पास जमीन से माथा टेक कर सभी ने प्रणाम किया। महाराजा का दर्शन पाकर सभी गद्गद हो उठे। यह एक अद्भुत घटना थी।

महाराजा ने अपने कमरे की ओर निर्देश करते हुए कहा—"वहाँ चार व्यक्तियों का भोजन रखा है। जाओ, खाकर तुम लोग सो जाओ।"

सभी लोग भोजन करने के बाद अतिथि-गृह में जाकर सो गये। दूसरे दिन पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि महाराजा ने शाम को अपने सेवक को बुलाकर कहा था—"मेरे कमरे में चार व्यक्तियों का भोजन ढँक कर रख देना।"

इसका अर्थ यह हुआ कि ये लोग आधी रात को आयेंगे, यह बात महाराजा जानते थे, लेकिन आगतों को यह नहीं मालूम हो सका कि आखिर उनका मन एक ही दिन, एक ही समय में महाराजा के दर्शन के लिये क्यों व्याकुल हो उठा था?

× × ×

महाराजा का एक भक्त था। इस भक्त का एकमात्र पुत्र क्लब जाता और वहाँ शराब पीता था। जब वह युवक बलराम मन्दिर आता, तब वह इस बात की प्रतीक्षा करता कि महाराज कब अकेले हैं, उस समय उन्हें प्रणाम कर चुपचाप चला जाता। कभी कुछ नहीं कहता था।

महाराज अन्तर्यामी थे। वे युवक के गुण-दोषों को जान गये थे। एक दिन उन्होंने उस युवक से कहा—"तू जो कुछ कर रहा है, उसे करता रह। मैं तुझे मना नहीं करना चाहता। लेकिन एक बात है कि तुम जो कुछ कर रहे हो, उसे करने के पहले केवल एक बार मुझे स्मरण कर लेना। बस, इससे सब ठीक हो जायेगा।

युवक को समझते देर नहीं लगी कि महाराजा का इशारा किस ओर है। इस वार्तालाप के कुछ दिनों बाद महाराजा का तिरोभाव हो गया। उस युवक ने बलराम मन्दिर में जाना तो बन्द कर दिया, पर महाराजा की चेतावनी उसे याद रही।

प्रत्येक शनिवार की शाम को वह क्लब में जाता, जहाँ नाच, गाना और शराब के दौर चलते थे। एक दिन अचानक शराब का गिलास उठाते ही उसे महाराज की चेतावनी याद आ गयी और उसने उन्हें स्मरण किया।

इसके बाद ज्योंही गिलास वह मुँह के पास लाया तो देखा—भीतर शराब के ऊपर महाराजा का चेहरा तैर रहा है। उसे लगा जैसे महाराजा कह रहे हैं—"जो कुछ कर रहा है, कर। पर करने के पहले हमेशा एक बार मुझे याद कर लेना।"

उसने गिलास नीचे रख दिया। मन उखड़ गया। यह देख कर उसके मित्र उस पर दबाव डालने लगे। लाचारी में गिलास खाली करके वापस चला आया। इसके बाद

वाले शनिवार को महाराजा का स्मरण करते ही पुनः वही दृश्य, वही बात हुई तो बिना पिये वापस चला आया। तीसरी बार जब पुनः महाराजा का चेहरा दिखाई दिया तो गिलास फेंक कर चला आया। इसके बाद फिर कभी क्लब नहीं गया।

× × ×

बशीरहाट महकमा के अन्तर्गत शिकरा गाँव के जमींदार श्री आनन्दमोहन घोष थे। २१ जनवरी, सन् १८६३ की रात को १ बजे घोष महाशय को प्रथम पुत्र की प्राप्ति हुई। लड़के का नाम रखा गया—राखाल। बालक अभी अपने जीवन का पाँचवाँ वसन्त देख पाया था कि सहसा उसकी माता का देहान्त हो गया। बच्चा अवहेलना का शिकार न बने, इसलिए आनन्दमोहन ने पुनर्विवाह किया। विमाता हेमांगिनी देवी की गोद में पलकर राखाल बड़ा हुआ।

राखाल के प्रति आनन्दमोहन का असीम स्नेह था। वे शिक्षा के लिए लड़के को दूर नहीं भेजना चाहते थे। काफी विचार-विमर्श के बाद उन्होंने घर के पास एक स्कूल स्थापित कर दिया। इसी स्कूल में राखाल की शिक्षा प्रारम्भ हुई। स्वभाव से सौम्य होने के कारण कभी किसी मास्टर ने मारा नहीं।

शिक्षा के अलावा राखाल खेल-कूद में भी बराबर भाग लेता रहा। इसके अलावा राखाल में एक विशेषता अपने आपमें पैदा हो गयी थी। अपने मित्रों को लेकर वह गाँव के बाहर स्थित काली मन्दिर में जाता और पूजा करता था। बंगाल के जमींदारों की तरह राखाल के यहाँ भी प्रतिवर्ष दुर्गा-पूजा होती थी। पूजा के समय वह पुरोहित के पीछे बैठ जाता और देवी के ध्यान में मग्न हो जाता था।

सन् १८७५ ई० में उच्च-शिक्षा दिलाने के लिए आनन्दमोहन अपने साथ राखाल को लेकर कलकत्ता आये। उसे यहाँ उसके ननिहाल में रख दिया गया। यहाँ उसका परिचय नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) से हुआ। नरेन्द्र चार क्लास ऊपर पढ़ता था, पर उसके अद्भुत आकर्षण ने राखाल को प्रभावित किया। दोनों एक साथ व्यायामशाला जाते। वहाँ कुश्ती लड़ते, व्यायाम करते और अगले दिन के लिये कार्यक्रम बनाते। यहाँ तक कि दोनों ही एक साथ ब्राह्म-समाज के सदस्य बने। लड़के के इन कार्य-कलापों की सूचना पाकर आनन्दमोहन ने उसका विवाह विश्वेश्वरी नामक लड़की से कर दिया।

यह विवाह राखाल के लिये वरदान प्रमाणित हुआ। राखाल का बड़ा साला मनमोहन दक्षिणेश्वर स्थित परमहंस रामकृष्ण देव का कट्टर भक्त था। उनका नित्य दर्शन करने जाता था। एक दिन मनमोहन के साथ वह भी परमहंस देव के दर्शन करने चला आया। सच तो यह है कि वह अपने आने की पूर्व सूचना देकर आया था।

कहा जाता है कि राखाल देव-पुत्र था। उसके आगमन से कुछ दिन पूर्व रामकृष्ण

देव ने भावावस्था में देखा—बरगद के पेड़ के नीचे एक बालक खड़ा है। इस दृश्य को देखते ही उनके मन में शंका उत्पन्न हो गयी। आखिर ऐसा दृश्य मैंने क्यों देखा? इसका क्या अर्थ है?

इस सम्बन्ध में जब अपने भाँजे रामलाल से चर्चा की तो उसने कहा—"मामा, अब तुम बाप बनने वाले हो। शायद इसीलिये ऐसा दृश्य देखा।"

रामकृष्ण देव ने चौंक कर कहा—"क्या कह रहा है? अरे पगले, मैं तो मातृ-योनि वाला हूँ। मैं कैसे बाप बन सकता हूँ?"

इस घटना के कई दिनों बाद रामकृष्ण देव ने पूजा करने के बाद देवी मूर्ति से कहा—"विषयी व्यक्तियों से बात करते-करते मेरी जीभ जल गयी।"

जगन्माता ने कहा—"चिन्ता करने की जरूरत नहीं। बहुत जल्द त्यागी भक्तों की भीड़ तुम्हारे यहाँ आने वाली है।"

इस घटना के बाद एक दिन जगन्माता उनकी गोद में एक बालक को रखती हुई बोली—"यही है तुम्हारा लड़का।"

रामकृष्ण देव ने चौंक कर पूछा—"यह मेरा लड़का कैसे हो गया?"

जगन्माता ने कहा—"यह अपना निजी पुत्र नहीं, मानस-पुत्र है।"

जिस दिन राखाल पहले पहल आया, उसी दिन सवेरे रामकृष्ण देव ने देखा—गंगा के ऊपर शतदल कमल विकसित है। चारों ओर अपूर्व शोभा है। श्रीकृष्ण भगवान् एक अपरूप बालक का हाथ पकड़कर कमलों के ऊपर नृत्य कर रहे हैं। इस दृश्य को देख कर रामकृष्ण भावविभोर हो गये।

ठीक इसी समय राखाल उनके सामने आकर खड़ा हो गया। रामकृष्ण देव ने आश्चर्य के साथ उसकी ओर देखा—"अरे, यह तो वही बालक है, जिसे मैंने बरगद के पेड़ के नीचे खड़ा देखा था। इसी को जगन्माता ने मेरी गोद में बैठाया था। आज सवेरे इसी बालक को श्रीकृष्ण के साथ नृत्य करते देखा था।"

कुछ देर तक रामकृष्ण देव तीक्ष्ण दृष्टि से राखाल का निरीक्षण करते रहे।

इसके बाद मनमोहन की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—"सुन्दर आधार।"

बाद में राखाल से पूछा—"क्या नाम है तुम्हारा?"

राखाल ने कहा—"राखालचन्द्र घोष।"

इस नाम को सुनते ही रामकृष्ण देव भावाविष्ट होकर सोचने लगे—वही नाम राखाल (श्रीकृष्ण के सखा), ब्रज का राखाल (गाय चराने वाला)। प्रकट रूप में उन्होंने कहा—"फिर आना।"

जिस प्रकार राखाल को देखते ही रामकृष्ण देव भावविभोर हो गये थे, ठीक उसी

प्रकार उनके प्रथम दर्शन से राखाल के हृदय में उथल-पुथल मच गयी थी। ये कौन हैं? क्या ये महापुरुष हैं? इनकी आँखों में जैसा माधुर्य है, ऐसा अन्य लोगों में नहीं है।

रामकृष्ण देव के आकर्षण ने राखाल को इतना प्रभावित किया कि एक दिन वह अकेला दक्षिणेश्वर चला आया।

उसे देखते ही आकुल-भाव से रामकृष्ण देव ने पूछा—"तुझे यहाँ आने में इतनी देर क्यों हुई?"

दोनों एक-दूसरे को अपलक दृष्टि से देखते रहे। इस घटना के बाद राखाल को जब मौका मिलता, तब वह दक्षिणेश्वर चला जाता था। उन दिनों के बारे में श्री परमहंस देव ने कहा है—"प्रारम्भ में राखाल जब मेरे पास आता था, तब चार साल के अबोध शिशु की तरह व्यवहार करता था। दौड़कर मेरी गोद में बैठ जाता था। जल्दी कहीं जाना नहीं चाहता था। मैं प्राय: इसे मक्खन या खीर खिलाया करता था। कन्धे पर बैठाकर घुमाया करता था। इस प्रकार का बचपना करने में इसे कोई संकोच नहीं होता था।"

एक बार नरेन्द्रनाथ और राखाल के स्वभाव का तुलनात्मक परिचय देते हुए रामकृष्ण देव ने कहा था—"राखाल साकार का प्रेमी है और नरेन्द्र निराकार का।"

उन दिनों नरेन्द्र और राखाल एक साथ ब्राह्म-समाज में जाते थे। फिर भी राखाल नरेन्द्र के व्यक्तित्व से डरता रहता था। नरेन्द्र से किसी भी विषय पर बहस करने से कतराता था। राखाल की इस कमजोरी को रामकृष्ण देव समझ गये।

मौका पाते ही एक दिन रामकृष्ण देव ने नरेन्द्र से कहा—"देख, अब आगे से राखाल को कुछ मत कहना। तेरी शक्ल देखते ही वह डर से पीला पड़ जाता है। अब अगर उसका साकार में विश्वास हो गया है तो क्या किया जाय। तेरी तरह सभी निराकार में विश्वास नहीं कर पाते।"

राखाल को अक्सर दक्षिणेश्वर जाते, साधुओं की संगत करते देख आनन्दमोहन का माथा ठनका। गृहस्थ का लड़का है, विवाहित है। कमाने-धमाने की फिक्र छोड़ कर किस चक्कर में फँस गया। क्या वैरागी बनने का भूत सवार हुआ है? एक दिन जब दक्षिणेश्वर से वापस लौटा, तब उसे एक कमरे में बन्द कर दिया गया।

इधर अपने स्नेह-पात्र को लगातार कुछ दिनों तक न देख पाने के कारण रामकृष्ण देव व्याकुल हो उठे। मन्दिर में आकर जगन्माता के सम्मुख प्रार्थना करने लगे—"राखाल को बिना देखे मुझे अपार कष्ट हो रहा है। माँ, मेरे राखाल को वापस बुला दे।"

जगन्माता अपने भक्त की करुण पुकार सुनकर विचलित हो उठीं। एक दिन राखाल को अपने पास बैठाकर आनन्दमोहन एक मुकदमे की मिसिल देखने लगे। धीरे-धीरे उसे देखने में खो गये। मौका देखकर राखाल दबे पाँव बाहर निकला और सीधे दक्षिणेश्वर पहुँच गया।

इधर इस मुकदमे के पीछे आनन्दमोहन बुरी तरह उलझ गये। उन्हें दक्षिणेश्वर जाने का अवसर नहीं मिला। मुकदमा काफी जटिल था और अन्त में अप्रत्याशित रूप से जीत गये। बाद में अवकाश पाने पर दक्षिणेश्वर आये। मुकदमा जीत जाने के कारण एक हद तक वे उद्वेग-हीन हो गये थे।

आनन्दमोहन को आते देख रामकृष्ण देव समझ गये कि राखाल के पिता आ रहे हैं। उन्होंने जब राखाल से कहा, तब वह भय के कारण मकान के भीतर जाकर छिप गया।

यह देखकर रामकृष्ण देव ने कहा—"छिप क्यों रहा है? माता-पिता ईश्वर के बराबर होते हैं। उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करना चाहिए। पिताजी के आने पर उन्हें प्रणाम करना। डरने की कोई बात नहीं है।"

आनन्दमोहन जब आये तब राखाल ने उन्हें नम्रतापूर्वक प्रणाम किया। रामकृष्ण देव उसके पिता के निकट उनके पुत्र की प्रशंसा करने लगे।

सच तो यह है कि रामकृष्ण देव के पास आते ही प्रत्येक व्यक्ति के चित्त में तुरन्त परिवर्तन हो जाता है। ठाकुर के यहाँ अपने पुत्र को प्रसन्नचित्त रहते देख आनन्दमोहन को सन्तोष हुआ। वे आये थे—अपने साथ राखाल को ले जाने के लिये, पर इस वक्त ठाकुर के प्रभाव के कारण उनकी वह इच्छा अपने-आप दब गयी।

इस घटना के बाद अपने पुत्र को देखने के लिए आनन्दमोहन अक्सर दक्षिणेश्वर चले आते थे। एक बार रामकृष्ण देव ने उनसे पूछा—"अगर आप कहिये तो मैं राखाल को यहाँ आने के लिये मना कर दूँ।"

आनन्दमोहन इस प्रश्न के लिये तैयार नहीं थे। क्या जवाब दें? बड़े पसोपेश में पड़ गये। उन्होंने यह भी देखा कि इस सन्त के निकट नगर के अनेक गणमान्य लोग बराबर आ रहे हैं। यहाँ अगर लड़का रह गया तो इन लोगों से परिचय बढ़ेगा। इन सारी बातों पर विचार करने के बाद आनन्दमोहन ने कहा—"राखाल तो आपका लड़का है। आपके यहाँ रखने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। एक कष्ट देना चाहता हूँ, कभी-कभी इसे घर भेज दिया करें।"

इस प्रकार दो वर्ष बीत गये। राखाल का रंग-ढंग उसकी सास को पसन्द नहीं आ रहा था। उन्होंने इस बारे में अपने समधी आनन्दमोहन से शिकायत की, पर कोई लाभ नहीं हुआ। पता नहीं, दक्षिणेश्वर के पागल बाबा ने दामाद को कैसे वश में कर लिया है। दिन-रात वहीं पड़ा रहता है।

आखिर एक दिन अपनी बेटी को लेकर वे दक्षिणेश्वर मन्दिर आयीं। बहू को देखते ही रामकृष्ण देव के मन में विचार उठा कि कहीं इसके कारण उनके राखाल में ईश्वर-भक्ति की कमी तो नहीं होगी?

अपने संशय को दूर करने के लिए रामकृष्ण देव बहू को पास बुलाकर उसके शारीरिक लक्षण देखने लगे। थोड़ी देर बाद वे समझ गये कि घबराने की कोई बात नहीं है। बहू में दैवी-शक्ति है। स्वामी के धर्म पथ पर काँटे नहीं बिछायेगी।

इतना जान लेने के बाद उन्होंने कहा—"इसे माताजी (शारदा माँ) के पास ले जाओ। उनसे कहना कि बहू का मुँह रुपये देकर देखें।"

ठाकुर अपने राखाल को साक्षात् श्रीकृष्ण समझते थे, इसीलिये उसे अपने हाथ से खिलाते थे। पास में सुलाते थे। अगर कोई उसे परेशान करता तो नाराज हो जाते थे। दूसरी ओर राखाल के सारे अवगुणों को नजर अन्दाज कर देते थे।

एक बार ठाकुर को पान खाने की इच्छा हुई। उन्होंने कहा—"जरा एक पान लगाकर ले आ।"

राखाल ने तुरन्त उत्तर दिया—"मुझे पान लगाना नहीं आता।"

ठाकुर ने हँस कर कहा—"इसमें कौन-सा कमाल है जो तुझसे नहीं होगा?"

राखाल ने उत्तर दिया—"देखिये जनाब, यह सब बखेड़ा मुझसे नहीं होगा।"

इतना कहने के बाद वह रामकृष्ण के सामने से हट गया। ठाकुर उसके इस भोलेपन को देखकर हँस पड़े। इसका यह अर्थ नहीं कि उन्होंने राखाल को सिर चढ़ा रखा था। जब कभी कोई गलती करता तो उसे डाँटते भी थे।

एक बार मन्दिर में एक पैसा गिरा मिला। उसने सोचा कि इसे किसी भिखमंगे को दे दूँगा। राखाल ने अपनी इस इच्छा को रामकृष्ण देव के सामने प्रकट किया। इतना सुनते ही रामकृष्ण देव बिगड़ उठे—"जो आदमी मछली नहीं खाता, उसे मछली बाजार में नहीं जाना चाहिए। जब तुझे पैसे की जरूरत नहीं, तब तू क्यों उसे उठाने गया?"

ठाकुर के बिगड़ने पर वह डर गया। राखाल को विश्वास था कि ठाकुर उसे बहुत प्यार करते हैं। उसके अनेक अपराधों को माफ कर देते हैं। यहाँ तक कि उसकी गलती पर अगर कोई कभी डाँटता है तो वे राखाल का पक्ष लेते हुए कहते हैं—"अरे भाई, जाने दो। छोटा बच्चा है, उसे इतना ज्ञान नहीं है।"

ठाकुर के पास उनके भक्त बराबर आते थे जो उनके निर्देश पर जप-ध्यान आदि करते थे। वे अपनी अनुभूति की चर्चा किया करते थे। इन सभी बातों को सुनते रहने के कारण राखाल के मन में आया कि मैं इतने दिनों से ठाकुर की सेवा कर रहा हूँ, पर मुझे इन लोगों की तरह अनुभूति क्यों नहीं होती?

एक दिन ठाकुर को तेल लगाते समय राखाल ने अपने मन की बात प्रकट की। ठाकुर इस बात से परिचित थे कि अभी राखाल के लिए वह समय नहीं आया है, जिसके लिये वह कह रहा है। फलतः ठाकुर ने उसे डाँट दिया।

सन्तान जब अधिक दुलारू हो जाती है, तब वह जिद्दी हो जाती है। तनिक-सी बात पर रूठ जाती है। ठाकुर के बिगड़ने पर वह नाराज होकर मन्दिर से चल पड़ा।

मन्दिर के दरवाजे के पास आते-आते उसके पैर अपने आप रुक गये। लाख कोशिश करने पर भी आगे नहीं बढ़ रहे थे। लाचारी में वह वहीं बैठ गया। ठीक इसी समय रामलाल दादा आये और अपने साथ उसे भीतर लेकर आ गये।

ठाकुर के पास आते ही उन्होंने कहा—"क्यों रे, रूठ कर भाग रहा था न? भाग सका? तू तो बेकार नाराज हो गया। कोई भी काम हो, वह समय पर होता है।"

इस घटना के कुछ दिनों बाद रामकृष्ण देव का पैर दबाते-दबाते राखाल अचानक भावाविष्ट हो गया। बाद में रामकृष्ण देव ने भक्तों से कहा था—"देखो, यह स्थान देख रहे हो न। एक दिन मेरा पैर दबाते-दबाते राखाल प्रथम बार भावाविष्ट हो गया था। कमरे के भीतर पण्डितजी भागवत-पाठ कर रहे थे। उसे सुनते-सुनते वह प्राय: सिहर उठता था।"

× × ×

भाव-समाधि होने पर भी राखाल अतृप्त रह गया। असल में वह रामकृष्ण की सभी प्रवृत्तियों का आकांक्षी था। वह चाहता था ठाकुर की तरह उसे भी देवी का दर्शन हो। एक दिन जब वह भाव-समाधि में था तभी उसके पिता आ गये।

उन्हें देखते ही ठाकुर ने आनन्दमोहन से कहा—"देखिये, देखिये। राखाल का चेहरा कितना सुन्दर है। इस वक्त वह भावाविष्ट है। जरा उसके मुँह को देखिये। ओंठ कैसे हिल रहे हैं। अन्तर में वह भगवान् का नाम ले रहा है। भले ही गृहस्थ घर का लड़का है तो क्या हुआ। चना अगर कूड़े में रहेगा, तब भी वहाँ पौधे के रूप में पैदा हो जायेगा।"

एक बार राखाल ने ठाकुर से शिकायत करते हुए कहा—"उन लोगों की तरह मुझे भी दर्शन क्यों नहीं होता?"

ठाकुर ने कहा—"जरा मन लगाकर जप-ध्यान करो तब होगा न।"

कुछ दिनों बाद एक बार राखाल ठाकुर के साथ मन्दिर में गया। दोनों व्यक्ति वहाँ अलग-अलग कमरे में बैठ कर जप करने लगे। सहसा राखाल ने देखा कि मन्दिर के गर्भगृह से एक अपरूप प्रकाश प्रकट हुआ और क्रमश: दरवाजे को पार करता हुआ उसकी ओर आ रहा है। इस दृश्य को देखते ही वह बुरी तरह डर गया। वह दौड़कर उस कमरे में चला आया जहाँ ठाकुर बैठे जप कर रहे थे।

उनसे लिपटकर उस दृश्य का वर्णन करने लगा। सारी बातें सुनने के बाद ठाकुर ने कहा—"एक ओर कहता है कि तुझे दर्शन-वर्शन नहीं होता और दूसरी ओर जब

कुछ देखता है, तब डरकर भाग आता है। अगर यही हालत रही तो कैसे काम चलेगा?''

कुछ दिन बात एक दिन ठाकुर ने प्रसन्न-भाव से कहा—''ले, यह है तेरा इष्ट और मन्त्र।''

ठाकुर से इष्ट-मन्त्र पाकर राखाल खुशी से नाच उठा। बाद में जप करने पर उसे इष्ट के दर्शन भी हुए। एक दिन अजीब घटना हुई। काफी प्रयत्न करने पर भी उस दिन इष्ट के दर्शन नहीं हुए। खिन्न मन से वह आसन से उठ कर खड़ा हो गया।

ठीक इसी समय ठाकुर आ गये। आसन छोड़ने का कारण पूछने पर राखाल ने कारण बताया। सारी बातें सुनने के बाद ठाकुर मन्त्र की आवृत्ति करने लगे। बाद में राखाल की जीभ पर तीन रेखाएँ उन्होंने खींच दीं।

इस कार्यवाही के बाद से राखाल के लिये फिर कोई समस्या उत्पन्न नहीं हुई। अक्सर वह समाधिस्थ होने लगा। उसकी यह हालत देखकर एक दिन ठाकुर ने कहा ''कहाँ इसको मेरी सेवा करनी चाहिए और कहाँ मुझे ही इससे भोजन-पानी के लिए पूछना पड़ता है। अगर कभी कुछ कहता हूँ तो जवाब देता है—अब यह संसार मुझे फीका लगता है।''

कई वर्ष साधना करने के बाद राखाल अचानक अस्वस्थ हो गया। काफी इलाज करने पर भी स्वस्थ नहीं हुआ। इन्हीं दिनों बलराम बाबू वृन्दावन जाने लगे। जाने के पहले वे ठाकुर के पास आये और कहा कि अगर आप अनुमति दें तो अपने साथ राखाल को लेता जाऊँ। पछांह की जलवायु से स्वस्थ हो जायेगा।

ठाकुर ने अनुमति दे दी। वृन्दावन में आने पर ठाकुर की कृपा से राखाल स्वस्थ हो गया। वहाँ से कलकत्ता वापस आते ही पुनः बीमार हो गया। लाचारी में उसे ठाकुर ने उसके घर भेज दिया। घर पर वे काफी दिनों तक बीमार पड़े रहे और इसी बीच अपनी पत्नी की सेवा से दयार्द्र हो उठे।

इस बारे में ठाकुर ने एक बार कहा था—''मैं जान-बूझ कर उसे अक्सर घर भेज दिया करता था। उसके कुछ भोग अभी बाकी रह गये थे। एक प्रकार से आजकल वह पेंशन का आनन्द ले रहा है। वृन्दावन से आने के बाद से आराम कर रहा है।''

कुछ दिनों तक घर पर आराम करने के बाद राखाल पुनः दक्षिणेश्वर आ गया। इन्हीं दिनों एक दिन श्री महिमाचरण चक्रवर्ती ने आकर ठाकुर से निवेदन किया—''आपके सामने ब्रह्मचक्र बना कर साधना करने की इच्छा है।''

ठाकुर ने आज्ञा दे दी। राखाल, मास्टर, किशोरी आदि ध्यान करने लगे। ध्यान करते-करते जब राखाल भावावस्था में आया, तब ठाकुर तुरन्त उसके वक्षःस्थल पर हाथ फेरने लगे। थोड़ी देर बाद उसे होश आया।

दो दिन बाद ठाकुर ने कहा—"माँ यह दिखा रही थीं कि किसमें कितना प्रभाव विस्तार हुआ।"

जब इस बारे में लोगों ने स्पष्टीकरण करने को कहा, तब ठाकुर मौन रह गये। दरअसल वे उस रहस्य को बताना नहीं चाहते थे। बाद में शारदानन्द को उन्होंने बताया—"राखाल के बारे में माँ ने काफी दिखाया, पर बताने को मना कर गयी हैं।"

× × ×

इस घटना के कुछ दिनों बाद ठाकुर परमहंस रामकृष्ण गले के कैंसर से पीड़ित हो गये। उन्हें अपनी स्थिति की जानकारी हो गयी। एक दिन नरेन्द्र और राखाल के गालों पर हाथ फेरते हुए बोले—"अगर यह शरीर कुछ दिन और रहता तो लोग चैतन्य हो जाते। मगर अब ऐसा नहीं होगा।"

राखाल ने कहा—"आपका शरीर ठीक रहे, इसके लिये आप कुछ करते क्यों नहीं?"

ठाकुर ने कहा—"सब माँ की इच्छा है।"

एक दिन ठाकुर नरेन्द्र को बुलाकर 'रामकृष्ण-संघ' के बारे में बातें कर रहे थे। इस संघ के अध्यक्ष नरेन्द्रनाथ थे। बातचीत के सिलसिले में ठाकुर ने कहा—"जानता है? राखाल में राज-बुद्धि है। अगर वह चाहे तो एक राज्य चला सकता है।"

परमहंसजी का राखाल के प्रति अपार स्नेह है, उसे वे अपना मानस-पुत्र समझते हैं, यह बात न केवल नरेन्द्र, बल्कि सभी शिष्य जानते थे। आज ठाकुर के इस कथन का प्रभाव नरेन्द्र पर व्यापक रूप से पड़ा।

उन्होंने अपने गुरु-भाईयों को बुलाकर कहा—"आज से हम लोग राखाल को 'राजा' नाम से सम्बोधित करेंगे। हम सब उनके अनुचर बनकर उसकी आज्ञा का पालन करेंगे।"

नरेन्द्र की इस घोषणा को सुनकर ठाकुर काफी प्रसन्न हुए। प्रकट रूप से उन्होंने कहा—"राखाल का ठीक नामकरण हुआ है।"

रामकृष्ण की शिष्य-मण्डली में नरेन्द्र सबसे बड़े थे। असल में वे ही वास्तविक नेता थे। इस घोषणा के बाद रामकृष्ण ठाकुर के सभी शिष्य राखाल को 'राजा' कहने लगे।

आखिर एक दिन ठाकुर ने शरीर त्याग दिया। उस दिन महाराजा (राखाल) की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी।

आनन्दमोहन प्राय: मठ में आते और अपने साथ महाराजा को घर ले ज़ाते थे। ठाकुर ने राखाल को आदेश दे रखा था कि जब भी पिताजी यहाँ आयें, तब उनका

यथोचित सम्मान करना। ठाकुर की आज्ञानुसार राखाल अपने पिता का सम्मान बराबर करते रहे, पर उनके साथ घर वापस नहीं जाना चाहते थे।

ठाकुर के देहान्त के बाद एक बार जब श्री आनन्दमोहन आये तब महाराजा (राखाल) ने कहा—"आप बार-बार यहाँ आने का कष्ट क्यों करते हैं? मैं यहाँ आराम से हूँ। अब आप आशीर्वाद दें कि आप लोग मुझे भूल जायें और मैं आप लोगों को भूल जाऊँ।"

आगे चलकर महाराजा सभी को भूल गये थे। कुछ दिनों बाद जब पत्नी के निधन का समाचार आया, तब जरा भी विचलित नहीं हुए। यहाँ तक कि उनका एकमात्र पुत्र सत्यानन्द सन् १८९६ में चल बसा, पर उन्हें वेदना की अनुभूति नहीं हुई।

ठाकुर के देहान्त के बाद महाराजा जोर-शोर से मठ और मिशन के कार्यों में व्यस्त हो गये। अचानक एक दिन उन्हें सनक सवार हुई कि तीर्थयात्रा करनी चाहिए। इस निश्चय के बाद वे पुरी होते हुए द्वारिका धाम आये। यहाँ गोमती नदी में स्नान करने के लिए दो रुपये महसूल देना पड़ता है। राखाल महाराज के पास पैसे नहीं थे।

स्वामीजी बिना स्नान किये चले जा रहे हैं। यह देखकर एक सेठ ने कहा—"स्वामीजी, आप स्नान कर लीजिये। आपका टैक्स मैं दे दूँगा।"

स्वामीजी ने सेठ को मना करते हुए कहा—"गोमती के बदले अगर तीर्थराज समुद्र में स्नान किया जाये तो अधिक पुण्य मिलेगा। व्यर्थ में पैसे क्यों खर्च किये जायें। हम लोग बेट द्वारिका-संगम में स्नान करेंगे।"

स्वामीजी के इस कथन पर सेठ इतना प्रसन्न हुआ कि वह स्वामीजी तथा उनके साथ आये सभी लोगों की तीन दिनों तक सेवा करता रहा। बाद में सेठजी ने चलते समय स्वामीजी को कुछ रकम दान में देनी चाही तो उन्होंने अस्वीकार कर दी।

साथ में सुबोधानन्दजी थे। मन्दिर दर्शन करने के बाद वे भिक्षा माँगने निकले। मन्दिर के महन्त ने भीख की झोली में कई सेर बादाम डाल दिये। उसे लेकर आप राखाल महाराज के पास आये।

उन्होंने पूछा—"इतना बादाम किसने दिया?"

सुबोधानन्द ने कहा—"मन्दिर के अध्यक्ष ने।"

"अपने लिये दो छटाँक रखकर बाकी वापस कर आओ।"

दो छटाँक के लगभग अपने पास रखकर जब शेष बादाम वापस करने गये तब महन्त ने लेने से इन्कार कर दिया। महाराजा संचय नहीं करना चाहते थे। स्थिति विचित्र हो गयी। अन्त में यह निश्चय हुआ कि शेष बादाम गरीबों में बाँट दिया जाय।

द्वारिका से महाराज वृन्दावन आये। यहाँ वे कठोर तपस्या करने लगे। उन दिनों

यहाँ प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी थे। महाराजा की तपस्या की बात सुनकर एक दिन वे आये और पूछा—"परमहंसजी तो आपको सभी प्रकार के साधन, भजन, अनुभूति, दर्शन आदि दे गये हैं, फिर क्यों इतनी कठोर साधना कर रहे हैं?"

महाराजा ने कहा—"उनकी कृपा से सभी प्रकार के अलौकिक दर्शनों की उपलब्धि हो गयी है। इन दिनों उन सबको आयत्त कर रहा हूँ।"

वृन्दावन में रहते समय महाराजा ने एक दिन प्रत्यक्ष रूप से देखा कि भक्तप्रवर बलराम बाबू ज्योतिर्मय शरीर धारण कर हँसते-हँसते दिव्यलोक चले जा रहे हैं। बाद में उन्हें एक पत्र के जरिये ज्ञात हुआ कि गत १३ अप्रैल, १८९० ई० को उनका निधन हो गया था।

वृन्दावन-निवासकाल में एक दिन स्वामी तुरीयानन्द ने कहा—"आज भिक्षा माँगने नहीं जाऊँगा। देखूँ, राधारानी कृपा करती हैं या उपवास करना पड़ता है।"

दोनों गुरु-भाई इसी प्रतीक्षा में चौबीस घण्टे उपवासी रह गये। दूसरे दिन एक तीर्थयात्री आया और बिना याचना के ही प्रचुर खाद्य-सामग्री दे गया।

× × ×

सन् १८९३ ई० में स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका में तूफान मचा दिया, जिसकी जय-ध्वनि भारत तक पहुँच गयी। सन् १८९४ ई० में महाराजा पुनः वृन्दावन आकर तपस्या करने लगे। इस बार वे न कहीं भिक्षा माँगने जाते और न किसी से कुछ माँगते थे। अगर किसी दिन भोजन मिलता तो खा लेते और नहीं तो उपवास करते थे। कभी कोई सेठ कम्बल दे गया तो दूसरे दिन उसे कोई चोर उठा ले गया। चोर को चोरी करते देख कुछ नहीं कहते थे। हमेशा अपने भाव में मगन रहते थे। इस प्रकार दो माह तपस्या करने के बाद कलकत्ता वापस आ गये।

देखते-देखते कई वर्ष बीत गये। इस बीच कई घटनाएँ हुईं। स्वामी विवेकानन्द सन् १९०० के अगस्त माह में विदेश से वापस आ गये थे। मठ में आकर वे मठ तथा मिशन के कागजों को ठीक करने लगे।

परमहंस रामकृष्ण ने कहा था कि जिस दिन नरेन्द्र को अपने बारे में ज्ञान हो जायेगा, उसके बाद वह नहीं रहेगा। स्वामी विवेकानन्द को अपने बारे में जानकारी हो गयी थी। सन् १९०१ ई० के प्रारम्भ में उन्होंने मठ और मिशन के अध्यक्ष-पद को त्याग दिया। उस पद पर राखाल महाराज को स्थापित करते हुए उन्होंने कहा—"आज तक जिस सम्पत्ति की देखभाल करता आया, आज उसे सौंपकर मैं निश्चिन्त हो गया। आज से राखाल राजा नहीं, महाराजा के रूप में कार्य करेगा। हम सब उसके शिष्य के रूप में उसकी आज्ञा का पालन करेंगे।"

एक दिन सचमुच विवेकानन्दजी ने अपनी महानता का परिचय दिया। राखाल महाराज को प्रणाम करते हुए उन्होंने कहा—"गुरुवत् गुरुपुत्रेषु।"

राखाल महाराज इस सम्बोधन से चौंके नहीं। तुरन्त प्रत्युत्पन्न मति से काम लेकर उन्होंने कहा—"ज्येष्ठ भ्राता सम पिता।"

वास्तव में दोनों एक-दूसरे के स्वरूप से अच्छी तरह परिचित थे। राखाल महाराज अध्यक्ष-पद पर रहते हुए भी आजीवन विवेकानन्दजी के प्रति गुरु की तरह श्रद्धा निवेदित करते थे। जब तक स्वामी विवेकानन्द जीवित थे, तब तक उनसे बिना पूछे कोई काम नहीं करते थे।

इधर स्वामी विवेकानन्द अक्सर कहा करते थे—"महाराजा ठाकुर का पुत्र है। हम लोग उसके शिष्य हैं और वह भी सबसे छोटा शिष्य।"

कभी कहते—"ऊपर स्पिरिचुअल डायनामो चल रहा है, उसके अण्डर में हम लोग काम कर रहे हैं।"

स्वामी विवेकानन्द के प्रति महाराजा की कितनी श्रद्धा थी, इसका अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि स्वामी विवेकानन्द ने अपनी एक पुस्तक महाराजा को भेंट की थी। जब कभी उसे पढ़ने की इच्छा होती तब गंगाजल से अच्छी तरह हाथ धोकर पुस्तक को स्पर्श करते थे।

आपस में प्रेम-कलह भी अक्सर होता था। मठ के आँगन में एक काल्पनिक सीमा रेखा बना दी गयी थी। जब एक की बत्तख दूसरे की सीमा में आ जाती तब एक-दूसरे से झगड़ जाते थे। मठ के अन्य लोगों को इस झगड़े में आनन्द मिलता था।

कभी-कभी विवेकानन्दजी सचमुच नाराज हो जाते थे। बराबर अस्वस्थ रहने के कारण मिजाज कुछ चिड़चिड़ा हो गया था। स्वामी विवेकानन्द चाहते थे कि उनकी योजनानुसार काम जल्द समाप्त हो जाय, पर जब समयानुसार काम नहीं होता था, तब झल्ला उठते थे। उनकी यह झल्लाहट अध्यक्ष के प्रति होती। थोड़ी ही देर बाद क्रोध शान्त होने पर अपनी गलती महसूस करते और अध्यक्ष के पास जाकर कहते—"राजा, राजा, मुझसे गलती हो गयी। क्रोध में आकर मैंने तुम्हें गाली दी है।"

दूसरे ही क्षण कहते—"मैं जानता हूँ कि मुझे सभी लोग छोड़ देंगे, पर राजा ऐसा कभी नहीं करेगा। इस दुनिया में अगर कोई मेरी गालियाँ बर्दाश्त कर सकता है तो वह है—एकमात्र राजा।"

विवेकानन्दजी को इस प्रकार का खेद प्रकट करते देख राखाल महाराज व्याकुल हो उठते। कहते—"क्यों आप ऐसी बात कह रहे हैं? अगर आपने गाली दी है तो क्या हुआ? बड़े भाई हैं, आप मुझे प्यार करते हैं, तभी न इतना कहते हैं।"

दो गुरु-भाईयों का ऐसा प्रेम बहुत कम देखने में आता है। इस प्रेम को सामान्य लोग हृदयंगम नहीं कर पाते।

जिस दिन स्वामी विवेकानन्द का तिरोभाव हुआ, उस दिन राखाल महाराज बलराम मन्दिर में थे। समाचार पाते ही वे दौड़े आये और स्वामी विवेकानन्दजी के ऊपर पछाड़ खाकर गिर पड़े। शारदानन्द स्वामी ने बलपूर्वक उन्हें शव से अलग किया।

रोते हुए राखाल महाराज ने कहा—"आज मेरे सामने से हिमालय पहाड़ अदृश्य हो गया।"

× × ×

सन् १९०३ ई० में स्वामी ब्रह्मानन्द कनखल आये। वहाँ स्वामी तुरीयानन्द तपस्या कर रहे थे। स्वयं महाराजा भी १२ बजे उठ कर ध्यान करते थे। एक दिन जब ठीक समय पर उनकी नींद नहीं खुली तब सूक्ष्म शरीर में एक संन्यासी ने आकर उन्हें धक्का देकर जगाया। महाराजा वृन्दावन से इलाहाबाद, विन्ध्याचल आदि तीर्थों का दर्शन करते हुए बेलुड़ आ गये।

ठाकुर के निधन के बाद स्वामी ब्रह्मानन्द (राखाल महाराजा) श्री शारदा माता को उनसे भी महान् समझते थे। उनके सामने जाने से कतराते थे। अगर मजबूरन जाना पड़ता था, तब बहुत काँपते थे।

एक बार श्रीमाँ से एक भक्त ने प्रश्न किया—"सभी संन्यासी आपको प्रणाम करने आते हैं, पर राखाल महाराज कभी नहीं आते।"

श्रीमाँ ने जवाब दिया—"क्या कहती हैं? मेरा राखाल तो साक्षात् नारायण है। जब उसकी इच्छा होती है, तब मुझे देख लेता है।"

बात सही है। श्रीमाँ के सामने आते ही राखाल महाराज की हालत खराब हो जाती है। उनके हाथ और ओठ काँपने लगते हैं। पसीने से भींग जाते हैं। आँखें बन्द कर दोनों हाथ जोड़ते हुए प्रणाम करते हैं। इधर श्रीमाँ के पास जब कोई भक्त आता है और उन्हें प्रणाम करने के बाद जाने लगता है, तब वे कहती हैं—"मेरे राखाल को नहीं देखोगी? उसे देखकर अपना जीवन सार्थक कर लो।"

महाराजा मद्रास आये थे। शशि महाराज उनकी सेवा में व्यस्त थे। इन दिनों महाराजा सम्पूर्ण संसार के रामकृष्ण मठ और मिशन की अध्यक्ष के रूप में देखभाल कर रहे थे।

ठीक इन्हीं दिनों मद्रास मठ का एक शिष्य स्वामी उमाकान्त चेचक से पीड़ित हुआ। उसे अस्पताल में भर्ती कर दिया गया। हालत सुधरने की अपेक्षा खराब होती

गयी। शशि महाराज उसे शान्ति देने के लिए उसके पास बैठकर नित्य परमहंस देव के बारे में तरह-तरह की कहानियाँ सुनाया करते थे।

एक दिन बीमार शिष्य ने कहा—"मैं महाराजा का दर्शन करना चाहता हूँ। आप उन्हें एक बार ले आइये।"

शशि महाराज ने राखाल महाराज से मरीज की इच्छा दुहराई। सारी बात सुनने के बाद राखाल महाराज बच्चों की तरह कह उठे—"नहीं, नहीं, शशि। अगर मैं वहाँ गया तो बीमार हो जाऊँगा।"

शशि महाराज ने काफी समझाया। यह भी कहा कि आप दूर से उसे एक बार दर्शन देकर चले आइयेगा। लेकिन इस पर भी महाराजा राजी नहीं हुए।

दूसरे दिन मरीज के पास आने पर शशि महाराज ने देखा कि उसकी हालत पहले की अपेक्षा अधिक खराब है। मरीज ने आज भी अनुरोध किया—"आप महाराजा को एक बार ले आइये।"

उमाकान्त को रोते देख शशि विचलित हो उठे। तुरन्त महाराजा के पास आकर उन्होंने कहा—"महाराजा, एक बार चले चलो। दो मिनट के लिये। तुम्हें देखने की उसे प्रबल इच्छा है।"

ब्रह्मानन्द स्वामी पहले की तरह इनकार कर गये। यह देखकर शशि महाराज ने कहा—"उमाकान्त यहीं का लड़का है। कम-से-कम एक झलक दिखाकर चले आइये।"

फिर भी महाराज नहीं गये। दूसरे दिन शशि महाराज जब अस्पताल में उमाकान्त को देखने गये तब पता चला कि उसकी मृत्यु हो गयी। शशि महाराज बड़े दुःखी हुए।

महाराजा के पास आकर उन्होंने तीखे स्वर में कहा—"उमाकान्त चला गया।"

महाराजा को चुप रहते देख अत्यन्त क्षोभ के साथ शशि महाराज ने कहा—"महाराजा, तुम कितने निष्ठुर हो। इतनी मिन्नत मैंने की, पर तुम क्षणभर के लिये नहीं जा सके। मैं जानता था कि उमाकांत बचेगा नहीं। वह एक बार तुम्हें देखना चाहता था, उसकी वह इच्छा पूरी नहीं हुई। सचमुच आप हृदय-हीन हैं।

महाराजा चुपचाप सारी शिकायतें सुनते रहे। बाद में हुक्के की नली हटाते हुए उन्होंने कहा—"क्या प्रत्यक्ष देखना ही देखना होता है? क्या मैं वहाँ नहीं गया था?"

महाराजा के इस कण्ठस्वर को सुनते ही शशि महाराज सन्नाटे में आ गये। तुरन्त साष्टांग प्रणाम करते हुए बोले—"मैं अज्ञानी हूँ महाराज, समझ नहीं सका। मुझसे गलती हो गयी। मुझे क्षमा कर दीजिये।"

महाराजा को ज्ञात था कि स्थूल शरीर में जाते ही उमाकान्त का तुरन्त निधन हो

जायेगा। उस समय सभी उसके निधन का आक्षेप मुझ पर लगायेंगे। इस कलंक से बचने के लिए महाराजा स्थूल शरीर में न जाकर सूक्ष्म रूप से गये थे। इन्हें देखते ही उसका शरीरान्त हो गया।

इसी प्रकार की एक घटना एक अमेरिकी व्यापारी के साथ हुई थी। एक अमेरिकी व्यापारी ने महाराजा को स्वप्न में देखा था। स्वप्न में ही उसे निर्देश मिला कि भारत आकर बेलुड़ मठ में महाराजा का प्रत्यक्ष रूप से दर्शन करो।

भारत आने पर वह सर्वप्रथम स्वामी शिवानन्द (महापुरुष महाराज) से मिला। व्यापारी की इच्छा जानकर स्वामी शिवानन्द उसे अपने साथ लेकर बेलुड़ मठ आये। स्वामीजी पहले महाराजा के पास गये और उन्हें अमेरिकी व्यापारी को दर्शन देने की प्रार्थना की।

महाराजा ने तुरन्त इनकार कर दिया। स्वामी शिवानन्द बराबर आग्रह करते रहे, पर महाराजा अपनी बात पर जमे रहे। व्यापारी और स्वामी दोनों ही असमंजस में पड़ गये।

स्वामी शिवानन्द ने सुझाव दिया कि व्यापारी महोदय वक्त गुजारने के लिए कुछ देर कलकत्ता के दर्शनीय स्थानों को देख लें। बाद में शाम को दक्षिणेश्वर से नाव द्वारा बेलुड़ मठ की ओर रवाना होंगे। महाराजा तीसरे पहर मठ के मैदान में टहलते हैं। उस वक्त आसानी से उनके दर्शन हो जायेंगे। इस सुझाव को सुनकर व्यापारी प्रसन्नचित्त हो घूमने चला गया।

शाम के समय निर्दिष्ट समय पर स्वामी शिवानन्दजी व्यापारी के साथ दक्षिणेश्वर से बेलुड़ मठ तक आये। यहाँ आकर उन लोगों ने देखा कि आज महाराजा नित्य की तरह अभी तक टहलने नहीं निकले हैं।

नाव घाट किनारे लगी। स्वामी शिवानन्द तथा व्यापारी किनारे उतरकर सामने देखने लगे। ठीक उसी समय भवन की दूसरी मंजिल पर महाराजा दिखाई दिये।

उन्हें देखते ही व्यापारी 'इयेस-इयेस' कहते हुए चिल्ला उठा और देखते-देखते गिर पड़ा और तत्क्षण उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। महाराजा के दर्शन से उसे मुक्ति मिल गयी।

महाराजा इस बात को जानते थे, इसीलिये उन्होंने मठ में दर्शन नहीं दिया। अगर मठ में एक विदेशी नागरिक की मृत्यु हो जाती तो पुलिस बखेड़ा करती। उन दिनों ब्रिटिश सरकार यह विश्वास करती थी कि मठ में क्रान्तिकारियों का अड्डा है।

× × ×

श्री श्रीमाँ दक्षिण-भारत यात्रा करने के पश्चात् जब लौटीं तब वे मठ के दो तल्ले

वाले कमरे में रहने लगीं। एक दिन नीचे कीर्तन हो रहा था। महाराजा आम के पेड़ के नीचे आरामकुर्सी पर बैठे हुक्का पी रहे थे। कीर्तन सुनते-सुनते महाराजा के हाथ से हुक्के की सटक गिर गयी। वे समाधिस्थ हो गये। कुछ देर बाद लोगों का ध्यान इस ओर गया। तुरन्त कीर्तन बन्द हो गया। सभी लोग एकटक महाराजा की ओर देखने लगे। दो घण्टे गुजर गये, पर महाराजा की समाधि भंग नहीं हुई।

बात श्रीमाँ के पास पहुँची। श्रीमाँ ने एक संन्यासी को एक मन्त्र बतलाकर कहा—"राखाल के कान में यह मन्त्र कह दो।"

मन्त्र सुनते ही महाराज प्रकृतिस्थ हो गये। सहसा गायक-मण्डली की ओर देखते हुए बोले—"हाँ, हाँ, कीर्तन चालू रखो। बन्द क्यों है?"

बंगला-साहित्य के प्रसिद्ध नाटककार श्री क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद महाराजा के दर्शन करने आये। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा—"महाराज, ठाकुर (परमहंस रामकृष्ण) के दर्शन करने का अवसर मिलने पर भी मैं उनका दर्शन नहीं कर सका। उन दिनों मैं तेजी से लेखन-कार्य में लगा हुआ था। एक दिन दक्षिणेश्वर जाने के लिए घर से निकला। आलम बाजार तक आया। एकाएक मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि ठाकुर तो लोगों के मन की बात जान लेते हैं और लोगों के मुँह पर कह भी देते हैं। अगर कहीं मेरे मन की गोप्य बात कह देंगे तो क्या होगा? इसी ऊहापोह में ठाकुर के पास न जाकर मैं वापस लौट गया। बड़ा अभागा हूँ। अगर कुछ दूर और चला जाता तो उनका दर्शन हो जाता।"

महाराजा ने कहा—"जब आप आलम बाजार तक आये थे, तब तो आपको दर्शन हो गया।"

"नहीं, महाराज, मुझे दर्शन नहीं मिला। सचमुच मैं बड़ा अभागा हूँ।" कहने के साथ वे रोने लगे।

"क्षीरोद बाबू, मैं ठीक कह रहा हूँ। आप ठाकुर का दर्शन कर चुके हैं।"

सहसा महाराजा के गम्भीर स्वर को सुनते ही क्षीरोद बाबू ने चौंक कर उनकी ओर देखा। वहाँ राखाल महाराज के स्थान पर स्वयं ठाकुर बैठे थे।

× × ×

महाराजा अपने कई पार्षदों के साथ दक्षिण-भारत-दर्शन करने गये थे। तिरुपति बालाजी मूर्ति दर्शन करते ही महाराजा चौंक उठे। मन्दिर के प्रांगण में आते ही उन्होंने सर्वानन्द से कहा—"सर्वानन्द, मैंने यह क्या देखा? यह तो देवी मूर्ति है। जरा पता लगाओ, बात क्या है। आखिर मैंने देवी मूर्ति क्यों देखी?

काफी पूछताछ करने के बाद मन्दिर के बड़े महन्त ने कहा—"बात ठीक है।

तिरुबाला से मूर्ति को तिरुपति बालाजी बनाया गया है। मूर्ति के त्रिनयन हैं। एक नयन चन्दन से ढँक दिया जाता है। पैरों के गहनों को भी चन्दन से ढँक दिया जाता है।''

प्रत्येक शुक्रवार को विग्रह का महाभिषेक तथा महास्नान होता है। महन्त के प्रबन्ध करने पर महाराजा ने दिगम्बरी मूर्ति के दर्शन किये थे। काले पत्थर की सात फुट ऊँची मूर्ति है। पैरों को साँकल तथा तीसरे नेत्र को रगड़ कर घिस दिया गया है। फिर भी स्पष्ट दिखाई दे रहा था। यह घटना सन् १९१७ ई० की है।

महाराजा के एक शिष्य का नाम था—नवगोपाल घोष। इनके पुत्र का नाम श्यामसुन्दर था। यह भी महाराजा के शिष्य थे। एक दिन महाराजा के पास आकर बोले—''महाराज, आजकल मूड उखड़ा-उखड़ा-सा रहता है। अगर आप अनुमति दें तो काश्मीर घूम आऊँ।''

महाराजा से आज्ञा पाते ही श्यामसुन्दर काश्मीर गये और डल झील में एक किराये की बोट पर अपना रंगीन-जीवन गुजारने लगे। शराब और नृत्य के दौर चलते रहे। एक दिन रात को बाईजी का नृत्य सहसा रुक गया। बोट पर जितने मल्लाह और अन्य लोग थे—तलवार-कृपाण और चाकू लेकर श्यामसुन्दर के आसपास खड़े हो गये। इस दृश्य को देखते ही घोष महाशय का सारा नशा हिरन हो गया। नाव में ऐसा कोई भी नजर नहीं आ रहा था, जिसकी आँखों में दया की झलक हो।

असहाय अवस्था में सहसा भगवान् के साथ गुरुदेव की याद आ गई। सामने मौत को खड़ी देखकर लोगों को भगवान् की याद आती ही है।

महाराजा उस समय बंगलौर के आश्रम में सो रहे थे। अचानक जाग उठे और बगल के कमरे में गये। ठाकुर के भतीजे रामलाल दादा को जगाकर उन्होंने कहा—''अभी तुरन्त बड़े पोस्ट आफिस में जाकर यह तार कर दो। अर्जेण्ट करना। उसमें लिखना किराया मत दो। ब्रह्मानन्द।''

रामलाल दादा काश्मीर के होटल का पता लेकर तारघर चले गये।

इधर घोष महाशय की हालत पल-प्रतिपल खराब होती जा रही थी। लोगों के प्रश्नों का उत्तर देने में उनका गला सूखता जा रहा था। देर होते देख सभी डकैत उन्हें पीड़ा पहुँचाने लगे।

कराहते हुए श्यामसुन्दर ने कहा—''मुझे मार डालने पर तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। हाउस बोट किनारे लगाओ। मैं अभी होटल के मैनेजर के नाम पत्र लिख देता हूँ। आपका कोई आदमी इस पत्र को लेकर मैनेजर को दिखा दे। वह मेरे कमरे से बैग निकालकर दे देगा। आखिर तुम लोग रुपयों के लिये मेरी हत्या करना चाहते हो, सो सहज ही मिल जायेंगे।''

लुटेरों को सुझाव पसन्द आया। जब तक हमारा आदमी रुपयों का बैग लेकर

नहीं आता, तब तक बाबू बोट पर रहेंगे। रुपये पाते ही इन्हें छोड़ दिया जायेगा। पुलिस में जाने से कोई लाभ नहीं होगा।

धीरे-धीरे भोर होने लगा। पत्र लिखा जा चुका था। ठीक इसी समय किनारे से आवाज आई—"बाबू श्यामसुन्दर घोष, काश्मीर होटल वाले क्या इस बोट पर हैं?"

अपना नाम सुनते ही श्यामसुन्दर घोष बोट के बाहर आये। देखा—पोस्टमैन है। उन्होंने पूछा—"क्या बात है? मैं ही काश्मीर होटल का यात्री श्यामसुन्दर हूँ।"

पोस्टमैन ने कहा—"आपका तार है बाबूजी, मैं होटल गया था, वहाँ पता चला कि आप डल झील के किसी बोट पर हैं, इसलिये यहाँ आ गया।"

तार खोलते ही श्यामसुन्दर ने स्वामीजी का भेजा मजमून पढ़ा। अब शेष बातें घोष महाशय की जबानी सुनिये—इस तार को हाथ में लेते ही मेरे शरीर में हाथी जैसा बल आ गया। जूता खोलकर एक सिरे से दनादन लोगों को पीटना शुरू किया। जिसे जहाँ जगह मिली, उधर ही भाग निकला। कुछ तो झील में कूद गये। यह दृश्य देख कर तार-कर्मचारी भी भय के कारण भागने लगा। मैंने उसे सान्त्वना दी। उसे अपने साथ ले आया और पुरस्कार दिया।

महाराजा स्वत: कभी-कभी अलौकिक-दर्शन करते थे। एक बार आप बलराम मन्दिर में थे, उस समय अचानक आपके सिर में भयंकर रूप से दर्द होने लगा। कभी सिर दबाने को कहते और कभी पैर दबाने को। अत्यधिक यंत्रणा के कारण रह-रहकर 'माँ-माँ' कहते भी रहे।

फिर बिछौने पर उठ कर बैठ गये और कहा—"जरा गंगाजल दो।"

इसके बाद ध्यानस्थ होकर कहने लगे—"माँ, तेरा दस विद्या वाला रूप देखूँगा।"

देखते ही देखते कमरे में हवा की कमी हो गयी। अँधेरे में देवी-दर्शन होने लगा। महाराजा कहने लगे—"आहा, काली, तारा, षोडशी, वाह! क्या रूप है?"

थोड़ी देर बाद उन्होंने स्वामी अमृतानन्द से कहा—"जाओ, नीरोद (स्वामी अम्बिकानन्द) को बुला लाओ। उससे भजन सुनना है।"

नीरोद महाराज नीचे थे। समाचार पाते ही उन्होंने अमृतानन्द से पूछा—"इस वक्त महाराज में कैसा भाव है?"

अमृतानन्द ने जो कुछ देखा था, सारी कहानी सुनायी। ऊपर आकर नीरोद महाराज ने पहले काली, दूसरा तारा, तीसरा षोडशी रूपा के भजन सुनाये।

× × ×

स्वामी अखण्डानन्द उन दिनों सारिगाछी में मलेरिया से पीड़ित थे। ठीक इन्हीं

दिनों पता चला कि स्वामी प्रेमानन्द का तिरोधान हो गया है। इस समाचार को सुनकर उसी दिन स्वामी अखण्डानन्द ने सारिगाछी आश्रम में भजन, कीर्तन के बाद दरिद्र नारायण को भोजन कराया।

इसके बाद अपना नश्वर शरीर छोड़ने के लिए वे अपने कमरे में आकर ध्यानस्थ हो गये।

रात्रि के अन्तिम पहर में उन्होंने देखा कि तन पर लाल साड़ी, माँग में सिन्दूर पहने एक मातृ मूर्ति उनके समीप आकर बोली—"तू जायेगा? दादा (स्वामी प्रेमानन्द) के पास जायेगा। आ, मेरे पीछे-पीछे।"

स्वामी अखण्डानन्द उस महिला के पीछे-पीछे चल पड़े। आगे एक बड़ी नदी मिली, जिस पर एक पुल था। पुल के मध्य भाग तक आते ही उन्होंने देखा कि दूसरी ओर से दोनों हाथ फैलाते हुए महाराजा दौड़े हुए आ रहे हैं। अखण्डानन्द को बाहुपाश में लेने के बाद उन्होंने कहा—"गंगाधर (स्वामी अखण्डानन्द), तुम अभी कहाँ जाओगे? तुम्हें तो अभी अनेक कार्य करने हैं। तुम अभी नहीं जा सकते।"

जिस समय स्वामी अखण्डानन्द अपनी यह कहानी लोगों को सुना रहे थे, उस समय महाराजा बरामदे में टहलते हुए इस कहानी को सुन रहे थे। उन्होंने कहा—"गंगाधर, अभी तक तुम पहचान नहीं पाये?"

गंगाधर ने कहा—"नहीं महाराजा, अब पहचान गया हूँ।"

महाराजा में अगर बच्चों जैसी सरलता थी तो बादलों की तरह गम्भीरता भी थी। जिस वक्त वे बरामदे पर चहलकदमी करने लगते, उस वक्त उनकी मुद्रा तेजस्वी सिंह की तरह हो जाती थी। लोग उस चेहरे को देखकर पास जाने का साहस नहीं करते थे।

एक बार महाराजा मद्रास के मठ में कुछ दिनों से निवास कर रहे थे। मठ में एक सेवक फूलों को सजा रहा था, जिसे कोई भक्त दे गया था।

टहलते हुए महाराजा इधर आये और उन्होंने पूछा—"कुछ फूल ठाकुर (परमहंसदेव) के लिए अलग से रख दिये हैं न?"

सेवक ने कहा—"जी नहीं।" उसने मन ही मन सोचा कि ठाकुर के कमरे में तो केवल उनके चित्र की पूजा होती है। श्रीगुरु तो जीवन्त भगवान् हैं।

महाराजा में एक विशेषता यह थी कि वे किसी भी व्यक्ति के मन की बात तुरन्त भाँप लेते थे। सेवक के मन की बातें वे तुरन्त समझ गये। सम्भवतः इस सेवक को आश्रमाध्यक्ष कभी पूजा करने नहीं देते, इसीलिए इसने ऐसा सोचा। उन्होंने आश्रमाध्यक्ष को बुलाकर आवश्यक निर्देश दिया। इसके बाद सेवक से उन्होंने कहा—'मन को एकाग्र करने के लिए ऐसी मूर्ति तुझे कहाँ मिलेगी?"

महाराजा की आज्ञा मानकर सेवक आगे से बराबर पूजा करने लगा और उसे लाभ हुआ।

महाराजा की इच्छा-शक्ति बहुत प्रबल थी। कई साहसी कार्यों को उन्होंने सम्पन्न किया है। एक बार आप स्वामी प्रभवानन्द आदि के साथ घूम रहे थे। अचानक एक ओर से आवाज आइ—"भागो, भागो। साँड़ आ रहा है।"

सभी लोगों ने देखा—एक क्रोधी साँड़ तेजी से दौड़ता हुआ आ रहा है। साथ आये लोग महाराजा की रक्षा के लिए उनके सामने आकर खड़े हो गये।

रक्षकों को अपने सामने से ढकेलते हुए महाराजा शान्त-भाव से खड़े हो गये। साँड़ आपके पास आकर चुपचाप खड़ा हो गया। कुछ देर तक स्थिर-भाव से खड़ा रहा और फिर पीछे वापस चला गया।

ठीक इसी प्रकार एक बार आप स्वामी अखिलानन्द तथा अन्य भक्तों के साथ भुवनेश्वर के जंगलों में घूम रहे थे। अचानक न जाने कहाँ से एक बाघ इन लोगों के सामने आ गया।

सभी भय से पीले पड़ गये। केवल महाराजा स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे। बाघ फिर आगे नहीं बढ़ा। धीरे से पीछे मुड़ कर जंगल की ओर भाग गया।

× × ×

अप्रैल माह, सन् १९२० में स्वामी अद्भुतानन्द के शरीरान्त के बाद एक और दुर्घटना हुई, २१ जुलाई की रात को एक बजे एक सेवक महाराजा के कमरे में आया। उसने देखा कि वे एक चादर ओढ़ कर गम्भीर रूप से आरामकुर्सी पर बैठे हुए हैं।

सेवक को इतना साहस नहीं हुआ कि महाराजा से इस तरह बैठे रहने का कारण पूछे। यह एक प्रकार से अप्रत्याशित दृश्य था। वह शंकित मन से वापस चला गया।

दूसरे दिन आश्रम में तार आया कि ठीक उसी समय श्री श्रीमाँ का महाप्रयाण हुआ था। श्रीमाँ के निधन के बाद महाराजा लगातार कई दिनों तक अबोध शिशु की तरह रोते रहे। बारह दिनों तक नंगे पैर रहते हुए हविष्यान्न खाते रहे।

२४ मार्च, सन् १९२२ के दिन सहसा महाराजा हैजे से पीड़ित हुए। लोगों ने सलाह दी कि महाराजा को होमियोपैथी दवा दी जाय। उससे लाभ न होने पर एलोपैथी, फिर वैद्यगी दवा दी गयी।

एक दिन महाराजा ने हँसते हुए कहा—"सभी प्रकार की दवा दी गयी। अब केवल हकीमी बाकी है। वह भी हो जाय।"

८ अप्रैल के दिन रात ९ बजे सभी शिष्य, साधु-ब्रह्मचारियों को बुलाकर उन्होंने कहा—"डरो मत। ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या। तुम सबका कल्याण हो।"

इतना कहकर वे ध्यानमग्न हो गये।

पुनः कहने लगे—"यह तो पूर्णचन्द्र है। रामकृष्ण, मैं तो ब्रज का राखाल हूँ। मुझे घुँघरू पहनाओ। मैं कृष्ण का हाथ पकड़ कर नृत्य करूँगा। छम, छमाछम। देखो, कृष्ण आये हैं। तुम लोग देख नहीं पा रहे हो। आहा, क्या सुन्दर रूप है मेरे कृष्ण का। ब्रज के कृष्ण हैं। अब खेल समाप्त हुआ। देखो, एक नन्हा बच्चा मेरे पैरों को सहला रहा है। वह कह रहा है—"मेरे पास चले आओ।"

इसके बाद महाराजा नीरव हो गये। दूसरे दिन भी चुप रहे। तीसरे दिन रात पौने नौ बजे श्री रामकृष्ण देव के मानस-पुत्र राखाल महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) ने अपना शरीर त्याग दिया।





११

स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस

सन् १९४८-४९ की बात है। अपने नगर के एक दैनिक पत्र में काशी के बारे में लेख माला प्रकाशित होने लगी। इस पत्र के संपादक भाई मोहनलाल गुप्त के अनुरोध पर लेख लिखने लगा। अद्‌भुत घटनाओं की तलाश में निरन्तर चक्कर काटा करता था। उन्हीं दिनों एक पुस्तक हाथ लगी जिसके लेखक थे—ब्रिटेन के प्रसिद्ध पत्रकार, डॉक्टर पाल ब्रंटन। इनकी पुस्तक का नाम है—'गुप्त भारत की खोज'।

इस पुस्तक में एक अध्याय है—'बनारस का मायावी'। इस लेख में स्वामी विशुद्धानन्द की जीवनी के अलावा कुछ अलौकिक घटनाओं का वर्णन था। स्वामी विशुद्धानन्दजी के नाम से परिचित था। मलदहिया स्थित 'विशुद्धानन्द कानन' सड़क से गुजरते हुए अनेक बार देख चुका था।

पाल ब्रंटन के लेख से ज्ञात हुआ कि महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज

स्वामी विशुद्धानन्द के शिष्य हैं। कविराजजी मेरे पड़ोसी थे और उनके यहाँ मैं बराबर जाया करता था! उनके मानस-पुत्र सीताराम पाण्डेय अब दादा सीताराम मेरे सहपाठी थे। इस कारण भी अक्सर जाना पड़ता था।

मैंने सोचा कि स्वामीजी के बारे में कविराजजी से जानकारी प्राप्त करके एक लेख लिखूँगा। मेरा उद्देश्य सुनते ही कविराजजी ने कहा—"मैंने पाँच खण्डों में अपने गुरुदेव की जीवनी लिखी है। तुम एक लेख में कितना लिख सकोगे?"

इस प्रश्न का उत्तर मैं नहीं दे सका। एक तो उनके व्यक्तित्व से घबराता था, दूसरे वे स्वभाव से इतने गम्भीर थे कि उनसे खुलकर बातें करने का साहस नहीं होता था। उनके निवासस्थान पर जाकर स्वामीजी की जीवनी पढ़ता रहा।

सम्पूर्ण जीवनी पढ़ने के बाद लगा जैसे नानी-दादी की जबानी सुनी कहानियों की तरह यह जीवनी लिखी गयी है। कोई व्यक्ति अपने आप आकाश में उड़ सकता है? रात भर में पैदल ढाका शहर से विन्ध्याचल कैसे आ सकता है? मेरे अविश्वासी मन ने इन बातों पर विश्वास नहीं किया।

लगभग १४-१५ वर्ष बाद चीन ने तिब्बत पर हमला किया। दलाई लामा भारत आये। इन्हीं दिनों भाई मोहनलाल का आदेश हुआ कि मैं तिब्बत पर एक लेख लिखने के लिए कविराजजी से अनुरोध करूँ। कविराजजी ने कहा—"मैं लिख नहीं सकूँगा। जरा ठहर जाओ। कोई शिष्य आ जाय तो उसे बोल कर लिखवाऊँ।"

एक दिन गया तो देखा—डॉ० जगन्नाथ उपाध्याय लिपिक का कार्य कर रहे हैं। अपने लेख में उन्होंने कहा है—"तिब्बत में ऐसे अनेक मठ और आश्रम हैं जो अलक्ष्य हैं। सामान्य जन वहाँ पहुँच नहीं पाते। अगर वहाँ पहुँच जाते हैं तो उन्हें कुछ दिखाई नहीं देता। वहाँ सभी प्रकार के साधन सुलभ हैं। वहाँ रहने वाले योगी दीर्घजीवी होने के अलावा कभी-कभी सूक्ष्म रूप में आकाश-मार्ग से यात्रा करते हैं।"

इस तरह की अद्भुत बातों को वे लिखवाते रहे। मैं मन ही मन उनकी कपोल-कल्पना पर मुस्कराता रहा। जिस भूमि को चीनी सैनिकों ने रौंद डाला है, वहाँ अलक्ष्य मठ कहाँ होंगे?

लेख छपने के बाद प्रति लेकर उनके यहाँ गया। बातचीत के सिलसिले में उद्दण्डों की तरह अपनी शंका प्रकट की।

उन्होंने कहा—"तुम्हारी जानकारी कम है। तुम्हारी शंका दूर करने के लिए एक घटना का विवरण बताता हूँ। द्वितीय महायुद्ध के समय दो जर्मन यात्री भारत आये थे। सहसा हिटलर ने युद्ध की घोषणा कर दी। शत्रु देश के यात्री होने के कारण वे घबरा कर हिमालय की ओर भागे।"

मैंने पूछा—"इकाई कावागुची तो नहीं।"

उन्होंने कहा—"नहीं। वह जापानी था। ये दोनों जर्मनी के थे। एक और जर्मन गया था, जिससे पूज्य दलाई लामा विदेशी भाषा का अध्ययन करते रहे। वे दोनों यात्री तिब्बत नहीं गये थे। वहाँ किसी मठ में ५-६ वर्ष तक आराम से थे। युद्ध समाप्त होने के बाद दोनों पैदल पुनः भारत की ओर चले। लेकिन मार्ग भूल कर बर्मा निकल गये। यहाँ आकर उन्होंने लोगों को अपने अज्ञातवास की कहानी सुनाई। अधिकांश लोगों ने इस पर विश्वास नहीं किया। कुछ साहसी लोग इस बात पर तैयार हुआ कि वे भी उस मठ को देखना चाहते हैं। दोनों जर्मन यात्री उनके साथ पुनः यात्रा पर निकल पड़े। जिस रास्ते से चलकर वे आये थे, उसी से गुजरे। गन्तव्य स्थान पर आकर उन्होंने देखा कि वही पहाड़, वही झरने, वृक्ष सभी कुछ हैं, पर मठ गायब है।"

थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा—"देवात्मा हिमालय का रहस्य अज्ञात है। आज भी वहाँ अनेक योगी-महात्मा तपस्या कर रहे हैं, जिनके बारे में हम नहीं जानते। शायद किनथूप का नाम सुना होगा। मैकमोहन रेखा का उसी ने निर्धारण किया था। यद्यपि वह मठ में नहीं, किसी लामा के यहाँ कई वर्ष तक था।"

कविराजजी द्वारा कही गयी कहानी सुनने के बाद इस सम्बन्ध में कई कहानियाँ पढ़ने में आयीं। इनमें योग-सम्बन्धी एक रचना को पढ़ने के बाद मेरी धारणा पक्की हो गयी कि हिमालय में आज भी ऐसे अनेक सन्त हैं, जो योग के द्वारा चमत्कार दिखाते हैं।

काश्मीर में एक ब्राह्मण बालक का जन्म हुआ। यह १९०५ ई० की घटना है। आगे चलकर किसी कारणवश बालक ने मुस्लिम-धर्म ग्रहण कर अपना नाम खुदाबख्श रखा। वह श्रीनगर में एक स्थान पर नौकरी करता था। उसने अपने बारे में लिखा है—

"नौकरी करते हुए भी मुझे योग के चमत्कारों से परिचय करने की इच्छा बराबर बनी रही और इस बीच सन् १९२२ में मुझे हरिद्वार के एक योगी का पता चला।"

"मैं उनके पास गया और उनसे शिक्षा ग्रहण करने लगा। प्रारम्भ में उन्होंने मुझसे कुछ श्वास और आसन-सम्बन्धी क्रियाएँ करानी शुरू कीं। मैं भी उनके निर्देशानुसार सभी क्रियाएँ करता रहा। कुछ दिनों बाद मैंने उनसे निवेदन किया कि मुझे ऐसी कोई क्रिया बताएँ जिसके जरिये मस्तिष्क की शक्ति बढ़ा सकूँ।"

पहले तो उन्होंने मुझसे कहा—'शरीर के नियंत्रण से मस्तिष्क की भी शक्ति स्वतः बढ़ेगी।' मगर जब मैंने उनसे कहा कि मैं दोनों शक्तियों को साथ-साथ प्राप्त करना चाहता हूँ और शारीरिक-शक्ति पर अधिक समय बिताना नहीं चाहता, तब उन्होंने मेरा शिक्षा क्रम बदल दिया। नयी क्रिया बताते हुए उन्होंने कहा—'इससे चेतन मन पर तुमको नियंत्रण प्राप्त हो जायेगा।'

"यह 'चेतन' शब्द मुझे अजीब लगा। मेरे पूछने पर गुरुदेव ने कहा कि मनुष्य के दो मन होते हैं। एक चेतन और दूसरा अचेतन। मनुष्य का चेतन मन बड़ा भ्रामक होता है। उस भ्रामक मन को नियंत्रण करने से मनुष्य का मस्तिष्क ऐसी क्रियाएँ कर सकता है, जिस पर कोई भी इन्सान जल्दी विश्वास नहीं कर सकता।"

"प्रत्येक दिन सन्ध्या के समय मैं वह प्रयोग करता था। ढाई वर्षों तक प्रयोग करने का फल निकला कि मैं हरिद्वार में बैठे-बैठे दो मिनट तक अपने उस भाई को देख सकता था जो काश्मीर में था।"

आगे चलकर खुदाबख्श ने ब्रिटेन तथा यूरोप के कई देशों में अनेक चमत्कारों के प्रदर्शन किये। वहाँ की जनता, वैज्ञानिक और डॉक्टर उनके करिश्मे देख कर चकित रह गये, जबकि उन्हें योग की साधारण जानकारी थी। ऐसी हालत में महान् योगी कितने साधनसम्पन्न होते हैं, इसका अन्दाजा अनायास लगाया जा सकता है।

× × ×

एक अर्से के बाद पुनः पाल ब्रंटन की पुस्तक पढ़ने के लिए मंगवायी। पाल ब्रंटन के भारत आने का एकमात्र उद्देश्य था—"यहाँ के योगियों के बारे में जानकारी प्राप्त करना। स्वामी विशुद्धानन्द से किये साक्षात्कार के बारे में उन्होंने लिखा है—

"स्वामीजी ने मुझे पास बुलाया। मैं उनकी गद्दी के निकट बैठ गया।"

उन्होंने मुझसे पूछा—"मेरी कोई करामात देखना चाहते हो?"

मैंने कहा—"जी हाँ, आपका बड़ा आभारी रहूँगा।"

"अपना रूमाल दो। रेशमी हो तो अच्छा है। जैसी खुशबू चाहते हो, पा सकते हो। केवल एक आतशी शीशा और सूर्य का प्रकाश चाहिए।"

सौभाग्य से मेरी जेब से रेशमी रूमाल निकल आया। मैंने उसे जादूगर के हाथ में दिया। उन्होंने एक आतशी शीशा निकाल कर कहा—"मैं इसमें सूर्य की किरणें केन्द्रीभूत करना चाहता हूँ। कहिये कौन-सी सुगन्ध चाहिए?"

"क्या आप बेले की सुगन्धि पैदा कर सकते हैं?"

उन्होंने कुछ ही पलों में रूमाल वापस दिया तो उसे लेकर सूँघा। उसमें बेले की सुगन्ध थी। रूमाल को मैंने बड़े गौर से देखा। नमी का कहीं नाम तक नहीं था। कोई इत्र छिड़का गया हो, ऐसी बात भी नहीं थी। मैं हैरानी से उनकी ओर देखने लगा। इस बार मैंने गुलाब की गन्ध चाही। प्रयोग करने के बाद जब रूमाल वापस मिला, तब उसमें गुलाब की खुशबू थी। इस बार मैं बड़े गौर से उनकी क्रियाओं को देख रहा था, पर मुझे कोई करामात नजर नहीं आयी।

मैंने प्रयोग किये जाने वाले काँच को भी हाथों में लेकर देखा। वह एक मामूली

काँच था। तार के ढाँचे में बँधा था। उसमें सन्देह का कोई स्थान नहीं था। यहाँ यह बता दूँ कि मैं वहाँ अकेला नहीं था। प्रेक्षकों में छह-सात व्यक्ति मौजूद थे। कविराजजी ने बातचीत के सिलसिले में कहा—"गुरुदेव मुझे अद्भुत योग-विभूति दिखलाना चाहते हैं। जिसे बहुत कम लोग कर पाते हैं। इसके लिए कड़ी धूप की जरूरत होती है। आप किसी दिन दोपहर के वक्त आइये तब आपको वह चमत्कार दिखाया जायेगा। तत्काल मुरदे को जिन्दा करके आपको दिखाया जायेगा।"

घर आकर मैंने वह रूमाल कई सज्जनों को दिखाया। सभी को खुशबू आती मालूम पड़ी। इसलिए इन सारी बातों को सम्मोहन-विद्या कहकर एक चुटकी में उड़ा नहीं दे सकता था। न इसे छल-कपट ही कहकर मैं तुष्ट हो सकता था।

दूसरे दिन मैं जादूगर के घर गया। उन्होंने मुझे पहले ही बता दिया था कि वे छोटे जानवरों को जिला सकते हैं। ऐसा प्रयोग वे केवल चिड़ियों पर करते हैं।

एक गौरैया को पकड़कर उसकी गर्दन मरोड़ डाली गयी। एक घण्टे तक उसकी लाश मेरे सामने पड़ी रही ताकि यह विश्वास हो जाय कि वास्तव में वह मर गयी है। एक भी ऐसा चिह्न न था कि हमें उसके जीवित होने का भ्रम हो। कुछ देर बाद जादूगर ने काँच निकाला और सूर्य की किरणों को चिड़िया की आँखों पर केन्द्रित कर दिया। कुछ देर तक कोई विशेषता नजर नहीं आयी। वृद्ध जादूगर अपने विचित्र प्रयोग में लगे रहे। उनका चेहरा निर्लिप्त था। अचानक ओंठ खुले और किसी अजीब भाषा में मन्त्र पढ़ने लगे। थोड़ी देर बाद चिड़िया की लाश कुछ-कुछ हिलने लगी।

मैंने मरणासन्न कुत्ते को इस प्रकार झटका खाते देखा है। धीरे-धीरे पंख फड़फड़ाने लगी और फिर बँगले के पेड़ की डाल पर जा बैठी।

यह सारी घटना इतनी गजब की मालूम होने लगी कि मैं एकदम चकित होकर अपने दिमाग को ठिकाने पर लाने की चेष्टा करने लगा। मैं अपने में खोया हुआ था कि अचानक एक बात प्रकट हुई जिसने मुझे चौंका दिया। वह गौरैया फिर नहीं उड़ी। मरकर हमारे पैरों के पास गिर पड़ी। मैंने गौर से देखा। वह अब सचमुच में मर गयी थी।

मैंने जादूगर से प्रश्न किया—"इसको और कुछ समय तक जीवित रख सकते हैं?"

उन्होंने कहा—"अभी तो मैं इससे अधिक नहीं दिखा सकता।"

कविराजजी ने कहा—"विशुद्धानन्दजी अपने भावी प्रयोगों से और अधिक आशा रखते हैं। वे और भी विचित्र बातें करके दिखा सकते हैं।"

बाद में मुझे मालूम हुआ कि वे हवा से अंगूर पैदा कर सकते हैं, शून्य से मिठाइयाँ मँगा सकते हैं। यहाँ की सामग्री तिब्बत भेज सकते हैं। मुरझाये फूलों को हरा-भरा कर सकते हैं।

अचानक उन्होंने एक ऐसी बात कह डाली, जिसकी मुझे तनिक भी आशा नहीं थी।

उन्होंने कहा—"जब तक मुझे तिब्बत स्थित गुरु से अनुमति प्राप्त नहीं होगी तब तक मैं यदि चाहूँ भी तो तुमको दीक्षा नहीं दे सकता। इसी शर्त पर मुझे काम करना पड़ता है।"

क्या स्वामीजी मेरे मन की बात ताड़ गये? मैंने उनकी ओर गौर से देखा। उनके उन्नत ललाट पर कुछ अस्पष्ट सिकुड़न थी।

मैंने उनसे पूछा—"आपके गुरु यदि सुदूर तिब्बत में हैं तो आप उनसे अनुमति कैसे ले सकते हैं?"

उन्होंने जवाब दिया—"हम दोनों के बीच आत्मिक-जगत् में व्यवहार अच्छी तरह चलता है।"

इसके बाद पाल ब्रंटन ने कई महत्वपूर्ण प्रश्न किये जिनका जवाब स्वामीजी ने दिया। वस्तुतः पाल ब्रंटन ने जिन योगियों की चमत्कारपूर्ण घटनाएँ देखीं या जिनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुआ, उनके बारे में निष्कपट-भाव से उल्लेख किया है। जो लोग धूर्त नजर आये, उन्हें बख्शा नहीं।

× × ×

बंगाल का वर्धमान जिला साधकों के लिए पवित्र भूमि है। इस जिले में अनेक मन्दिर तीर्थस्थल बन गये हैं। इसी जिले के बण्डुल गाँव में श्री अखिल चट्टोपाध्याय सपरिवार रहते थे। इनकी पत्नी का नाम श्रीमती राजराजेश्वरी देवी था। कुलीन ब्राह्मण होने के कारण पूरा परिवार देव-द्विजों के प्रति भक्ति करता और पूजा-पाठ बराबर करता रहता था।

२१ मार्च, सन् १८५६ को राजराजेश्वरी देवी की कोख से एक पुत्र ने अवतार लेकर माँ के नाम को सार्थक बनाया। माता-पिता ने नवजात शिशु के स्वभाव को देखते हुए उसका नाम रखा—भोलानाथ। बालक अभी छह महीने का भी नहीं हुआ था कि उसके सिर पर से पिता का साया उठ गया। फलतः बालक की सारी जिम्मेदारी माँ पर आ गयी। माँ से अत्यधिक स्नेह पाने के कारण बालक कट्टर मातृभक्त बन गया।

बड़े होने पर भोलानाथ अक्सर कहा करते थे—"मेरे आध्यात्मिक-जीवन की उन्नति माँ के आशीर्वाद से हुई है।"

बचपन से ही ईश्वर-भक्त होने के कारण भोलानाथ सर्वदा पूजा-पाठ में लगा रहता था। यहाँ तक कि 'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' कहावत के अनुसार भोलानाथ बचपन से ही अपना चमत्कार दिखाने लगा था। हैजे से पीड़ित होने पर अपनी माँ को उन्होंने बचाया था।

तेरह वर्ष की उम्र तक भोलानाथ दिगम्बर रहते थे। अगर उन्हें डाँट-डपट कर धोती पहना दी जाती थी तो उसे दान कर देते थे। भोलानाथ को नंगा देख कर जब चाचाजी फटकारते तब वह कहता—"धोती न पहनकर अगर उलंग रहता हूँ तो क्या दोष है? व्यर्थ के आवरण की क्या जरूरत है?"

कहा जाता है कि कभी-कभी जीवन की दुर्घटनाएँ वरदान बन कर आती हैं। इटली का 'द' एंजलो यदि नटबाजी में न गिरता और उसके मस्तिष्क को गहरी चोट न लगती तो वह साधारण नट बना रहता। इस दुर्घटना के कारण वह अपने स्पर्श से गूँगे को आवाज, बीमारों को स्वस्थ बनाने लगा। यह चमत्कार उसे ईश्वर से प्राप्त हुआ था।

ठीक इसी प्रकार एक दिन भोलानाथ अपने घर में दो तल्ले से नीचे उतर रहा था, तब सीढ़ी के नीचे सोते हुए कुत्ते ने उसे काट लिया। वह कुत्ता पागल था। इस दुर्घटना के कारण घर में तहलका मच गया। बड़े भाई स्वयं डॉक्टर थे। उनके इलाज से कोई लाभ नहीं हुआ।

उन दिनों चन्दननगर स्थित गोंदलपाड़ा में एक सज्जन पागल कुत्ते के काटे मरीजों का इलाज करते थे। उनका इलाज होने लगा। यह इलाज भी बेकार सिद्ध हुआ। दिन-प्रतिदिन भोलानाथ का कष्ट बढ़ता गया। बाद में लोग उसे हुगली ले आये। यहाँ के बड़े-बड़े डॉक्टरों को दिखाया गया। लेकिन मर्ज ठीक नहीं हुआ।

घर के लोगों ने एक प्रकार से भोलानाथ के जीने की आशा छोड़ दी। उन्हें अब उनकी इच्छा के अनुसार घूमने-फिरने की आजादी दे दी गयी थी। एक दिन भोलानाथ गंगा तट पर उदास बैठा था। बीच नदी में एक संन्यासी स्नान कर रहे थे। सहसा एक विचित्र दृश्य देख कर भोलानाथ अवाक् रह गया। संन्यासी जब स्नान के लिए जल में गोता लगाते तब नदी शान्त रहती और ज्योंही ऊपर निकलते, त्योंही जलस्तम्भ का दृश्य उपस्थित हो जाता। उनके नदी के बाहर आते ही जलस्तम्भ गायब हो जाता।

कई बार यह दृश्य देखकर भोलानाथ उत्सुकतावश नदी के किनारे आकर खड़ा हो गया। स्नान से निवृत्त होकर संन्यासी जब तट पर आये तब उनकी दृष्टि भोलानाथ पर पड़ी। पता नहीं, उन्हें कैसे मालूम हो गया कि भोलानाथ को कुत्ते ने काटा है।

उन्होंने कहा—"बालक, मैं समझ रहा हूँ। कुत्ते के विष से तुम्हें बड़ा कष्ट हो रहा है। घबराओ मत। अभी दवा देता हूँ। कष्ट कम हो जायेगा।"

इतने कहने के बाद संन्यासी ने भोलानाथ के सिर पर हाथ रखा। उनके स्पर्श से भोलानाथ ने अनुभव किया कि उसकी पीड़ा में कमी हो गयी। थोड़ी देर बाद जंगल से कोई जड़ी लाकर उसे दी और कहा—"अब तुम घर चले जाओ। इससे शाम तक तुम्हारा रोग दूर हो जायेगा।"

उसी दिन शाम को भोलानाथ ने अनुभव किया कि अब उसे कोई कष्ट नहीं है।

रात को अपनी माँ से संन्यासी की सारी घटना कहने के पश्चात् उसने पैर के घाव को दिखाया। बेटा कष्ट से मुक्ति पा गया है, जानकर माँ को असीम आनन्द मिला।

दूसरे दिन भोलानाथ पुनः उसी घाट पर आया तो संन्यासी से मुलाकात हुई। उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम करने के बाद भोलानाथ ने कहा—"आपकी कृपा से मुझे नया जीवन प्राप्त हुआ है। मेरे घर के लोग निराश हो चुके थे। आज से यह शरीर आपका है। मेरा निवेदन है कि मुझे दीक्षा देकर आप मुझे अपनी सेवा में रख लीजिये।"

संन्यासी ने कहा—"वत्स, मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ। तुम्हारे जो गुरु हैं, वे ही तुम्हें ठीक समय पर दीक्षा देंगे। अभी वह समय नहीं आया है। अभी तुम्हें मैं एक आसन बता दे रहा हूँ। साथ ही एक बीजमन्त्र भी दूँगा। आसन बराबर करते रहना और बीजमन्त्र का जप करना। इससे तुम्हारा शरीर शुद्ध हो जायेगा। जिस दिन तुम्हारे गुरु तुम्हें दीक्षा देंगे, उसी दिन से तुम उन्नति करोगे और शीर्ष स्थान प्राप्त करोगे। तुम्हें इसके लिये प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इस समय मैं गंगासागर जा रहा हूँ। फिर कभी तुम्हें अपने साथ ले जाऊँगा।"

संन्यासी के जाने के बाद भोलानाथ घर वापस आ गया। पूर्ण रूप से स्वस्थ होने के बाद माँ ने उसे उच्च-शिक्षा के लिए शहर भेज दिया। वर्धमान शहर के मेस में वह रहने लगा।

कुछ दिनों बाद अपने एक सहपाठी के अस्वस्थ होने पर बाजार से कुनैन खरीदने के लिए विश्वरूप नामक दुकानदार के यहाँ आया। उसने देखा कि एक मुसलमान युवक किसी असाधारण संन्यासी के बारे में अद्भुत बातें लोगों को सुना रहा है।

जलस्तम्भ की घटना सुनते ही भोलानाथ को विश्वास हो गया कि यह वही संन्यासी हैं, जिनकी कृपा से उसे जीवन-दान मिला है। उक्त मुसलमान युवक से पूछने पर पता चला कि उसने उक्त संन्यासी को ढाका में देखा था। वे अभी तक वहीं हैं। उक्त संन्यासी से मिलने के लिए भोलानाथ का हृदय व्याकुल हो उठा। वर्धमान से ढाका काफी दूर है। दूसरे दिन गाँव जाकर ढाका जाने के लिए माँ से अनुमति माँगी।

बेटे का उद्देश्य समझ कर माँ ने आशीर्वाद देते हुए कहा—"जिन्होंने तुम्हें नया जीवन दिया है, उनसे मिलने जाओगे, यह तो हर्ष की बात है। मैं आशीर्वाद देती हूँ, भगवान् तुम्हारा मंगल करें।"

मेस में भोलानाथ के साथ हरिपद नामक एक छात्र रहता था। भोलानाथ की जबानी उनकी प्रशंसा सुन चुका था। वह भी भोलानाथ के साथ ढाका रवाना हो गया। ढाका आकर दोनों युवक सरगर्मी के साथ संन्यासी महाराज को खोजने लगे। एक दिन रमना के मैदान में अचानक उनके दर्शन हो गये।

दौड़कर उनके चरणों पर गिरते हुए भोलानाथ ने कहा—"महाराज, अब मुझे ग्रहण कर लीजिये। जब तक आप हमें ग्रहण नहीं करेंगे, तब तक मैं आपको नहीं छोड़ूँगा।"

संन्यासी ने कहा—"यह तो ठीक है, पर पहले यह बताओ कि तुम अकेले न आकर इस बालक को क्यों साथ ले आये हो?"

भोलानाथ ने विनय के साथ कहा—"महाराज, यह मेरा सहपाठी है। इसकी भी इच्छा है कि दीक्षा लेकर संन्यास-जीवन अपनाऊँ।"

कुछ देर मौन रहने के बाद संन्यासी ने कहा—"अच्छा एक बात बताओ। क्या तुम दोनों दुर्गम-पथ पर चल सकते हो? बालक हो, इसलिए पूछ रहा हूँ। नदी-नाले, जंगल-पहाड़ पार करने पड़ेंगे। भूख को सहन करना पड़ेगा। अगर तुम लोगों में इतना साहस हो तो शाम को यहीं पर पुनः मिलना।"

भोलानाथ ने हरिपद की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा। उसने सिर हिलाकर अपनी स्वीकृति दी। भोलानाथ तो पहले से ही तैयार था। दिनभर इधर-उधर चक्कर काटने के बाद दोनों शाम को उसी जगह पर आकर संन्यासी के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

कुछ देर बाद संन्यासी महाराज आये और दोनों बालकों की आँखों पर पट्टियाँ बाँधते हुए बोले—"अब चुपचाप मेरे सहारे तुम लोगों को पैदल चलना होगा।"

दोनों बालक संन्यासी के दोनों तरफ हाथ पकड़ कर चलने लगे। कब तक चलते रहे, इसका अनुभव उन्हें नहीं हुआ। जब उनकी आँखों की पट्टियाँ खोली गयीं तब उन लोगों ने देखा—सवेरा हो गया है। चारों ओर निविड़ जंगल, पहाड़ी स्थान, सामने कोई मन्दिर है जहाँ दर्शनार्थी जा रहे हैं।

संन्यासी ने कहा—"अब तुम लोग यहीं विश्राम करो। मैं कुछ दिनों बाद आकर तुम्हें अन्यत्र ले चलूँगा। डरने की कोई बात नहीं। सारी व्यवस्था यहाँ है।"

× × ×

संन्यासी के जाने के बाद दोनों यह पता लगाने लगे कि इस वक्त वे कहाँ आ गये हैं। पूछने पर पता चला कि इस स्थान का नाम विन्ध्याचल है। सामने का मन्दिर अष्टभुजा देवी का है। उन्हें इस बात पर आश्चर्य हुआ कि एक रात में ढाका से इतनी दूर पैदल कैसे आ गये। मार्ग में नदी-नाले, पहाड़ आदि कुछ भी पार नहीं करने पड़े। कोई परेशानी भी नहीं हुई।

अनजान स्थान, पास ही श्वापद संकुलों का भय, केवल इने-गिने लोग मन्दिर की सीढ़ियों पर चढ़ते नजर आये। वे स्थानीय भाषा में बातें कर रहे थे। उनकी भाषा भी समझ में नहीं आ रही थी। रातभर भूखे-प्यासे पैदल तो वे चलते रहे। सवेरे नाश्ता भी

नहीं मिला। भूख के कारण पेट में चूहे कूदने लगे। एक अनजाने भय से दोनों घबराने लगे।

कुछ देर बाद एक काला-सा आदमी हाथ में दो थालियाँ लिये इनके पास आता हुआ दिखाई दिया। लम्बी चोटी, गले में जनेऊ, कमर में धोती लपेटे था। बालकों के सामने थालियाँ रख कर वह चुपचाप चला गया।

भोजन के पश्चात् दोनों को नींद आने लगी। थकावट के कारण गहरी नींद आ गयी। शाम के समय पुनः वही ब्राह्मण भोजन देकर चला गया। भोजन के बाद दोनों को इस बात की चिन्ता सताने लगी कि रात को कहाँ रहेंगे? रह-रह कर जंगल के भीतर से जानवरों की आवाजें आ रही थीं। भय के कारण दोनों की आँखों से आँसू निकल पड़े। भावुकतावश इस तरह चले आने का अफसोस होने लगा।

इसी समय पश्चिम दिशा में एक अपूर्व प्रकाश दिखाई दिया। वह ज्योतिर्मय प्रकाश धीरे-धीरे इनके पास आकर ठहर गया। उसमें से एक नारी-मूर्ति प्रकट हुई।

अभय मुद्रा में इन्हें आशीर्वाद देती हुई बोली—"तुम लोग इतना क्यों रो रहे हो? तुम लोगों के करुण क्रन्दन से मैं विचलित हो उठी और यहाँ चली आयी।"

भोलानाथ ने साहस के साथ पूछा—"माँ, आप कौन हैं? कहाँ रहती हैं?"

उस महिला ने कहा—"प्रकृति का रहस्य तुम लोगों के लिए दुर्बोध्य है। मैं कौन हूँ, अभी यह नहीं बताऊँगी। बस, इतना जान लो कि मैं तुम्हारी माँ की तरह हूँ और तुम दोनों मेरे पुत्र हो। मैं चाहे जहाँ भी रहूँ, तुम दोनों सर्वदा मेरे पास रहोगे। डरने की कोई बात नहीं है। जिस महापुरुष के साथ तुम लोग आये हो, मैं उन्हीं के सम्प्रदाय की हूँ। अब अगर पुनः व्याकुल होगे तभी मैं आऊँगी। यों जब भी स्मरण करोगे तभी आ जाऊँगी।"

इतना कहकर वह महिला वहाँ से चली गयीं। बाद में पता चला कि उनका नाम उमा भैरवी था।

विन्ध्याचल में ५-६ दिन निवास करने के बाद संन्यासी महाराज आये और पहले की तरह उन दोनों की आँखों पर पट्टी बाँध कर एक आश्रम में ले आये। इन्हें इस आश्रम में रख कर पता नहीं, फिर कहीं चले गये। इस आश्रम से पता चला कि उक्त संन्यासी का नाम नीमानन्द है। इस बार नीमानन्द आये तो इन दोनों बालकों को लेकर तुकली पहाड़ पर रहने वाली श्यामा भैरवी माता के आश्रम में ले आये। यहाँ एक दिन ठहरने के बाद पुनः आँखों पर पट्टी बाँध कर आगे ले गये। सवेरे जब आँखों पर से पट्टी हटायी गयी तो उन दोनों ने अपने को एक अपूर्व स्थान पर देखा। कुछ दिन यहाँ निवास करने पर इन्हें पता चला कि इस स्थान का नाम ज्ञानगंज है। इस आश्रम के बारे में केवल कुछ सिद्ध महायोगी ही जानते हैं।

कुछ दिन यहाँ विश्राम करने के बाद एक दिन स्वामी नीमानन्द आये और दोनों बालकों को साथ लेकर अपने गुरुदेव पूज्यपाद महातपा के पास पहुँचे।

कहा जाता है कि पूज्यपाद महातपा महाराज की उम्र उन दिनों १२०० वर्ष के ऊपर थी। उनका कोई मठ नहीं है। वे अत्यन्त शक्तिशाली महात्मा हैं। तिब्बत में वे जहाँ रहते हैं, वहाँ एक गुफा है। इस स्थान पर राजराजेश्वरी देवी की पाषाण-मूर्ति है।

योगियों की उम्र निःसन्देह काफी होती है। श्री पाल ब्रंटन की मुलाकात एक ऐसे योगी से हुई थी, जिनके गुरु तिब्बत में रहते हैं। उनकी उम्र ४०० वर्ष थी। उन्होंने पानीपत (सन् १५२६ ई०) का प्रथम युद्ध और प्लासी का युद्ध (सन् १७५७ ई०) स्वयं देखा था। वर्तमान काल में लोकनाथ ब्रह्मचारी तथा तैलंग स्वामी ३५० वर्ष तक जीवित थे।

हठयोग की साधना से दीर्घायु प्राप्त होती है। इससे शरीर सबल होता है। हठयोग की साधना के कारण ही हमारे यहाँ के योगी अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति को बढ़ाते हैं। इस बारे में महर्षि दत्तात्रेय का कथन है—

शोधनं दृढ़ता चैव स्थैर्यधैर्यं च लाघवम्।
प्रत्यक्षं निर्लिप्तं च घटस्य सप्त साधनम्॥

यह सप्त-साधन क्या है, इस पर टीकाकारों तथा योगियों ने कहा है—

(१) सप्त-साधनों में शरीर-शोधन के लिए षट्कर्म करना पड़ता है—धौती, वस्ति, नेती, लौलिकी, त्राटक और कपालभाती। इन क्रियाओं के बारे में महातन्त्र में विस्तार से उल्लेख है।

(२) बृहत् तन्त्र के अनुसार शरीर के निर्माण के लिए आसन (८४ प्रकार) करना चाहिए।

(३) स्थैर्य-प्राप्ति के लिए मुद्राएँ (२४ प्रकार) करनी पड़ती हैं।

(४) धैर्य के लिए प्रत्याहार।

(५) शरीर को लघु बनाने के लिए प्राणायाम।

(६) प्रत्यक्ष अनुभूति के लिए ध्यान-धारणा।

(७) निर्लिप्तता के लिए समाधिस्थ होना पड़ता है।

इन सप्त-साधनाओं में प्रथम पाँच साधकों के लिए अनिवार्य हैं। शेष दोनों क्रियाएँ केवल मन को एकाग्र करती हैं।

ये सभी क्रियाएँ हठयोग की हैं। राजयोग के ध्यान, धारणा, समाधि अलग ढंग की होती है। हठयोग से शरीर स्वस्थ तथा दृढ़ होता है। इन साधनों के अलावा आहार, संयम, जितेन्द्रियता, नियमानुवर्तिता, यम तथा नियम का पालन करना पड़ता है।

यम के भी दस भेद हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, दया, ऋजुता, मिताहार और शौच।

इसी प्रकार नियम के दस भेद हैं—तपस्या, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वरोपासना, वेदांत-वाक्य-श्रवण, लज्जा (असत् कर्मानुष्ठानों में) साधुबुद्धि, जप और होम।

हठयोग से नाना प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। इसे योग-शक्ति कहा गया है। उदाहरण के लिए त्राटक-योग अभ्यास करने पर दृष्टि-शक्ति में वृद्धि होती है। काफी दूर रखी सामग्री या अँधेरे में छोटी वस्तु दिखाई देती है। यहाँ तक कि स्नायुओं, शरीर की इन्द्रियों तथा प्राण में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो जाता है। प्रौढ़-योगी अट्ठारह वर्ष का किशोर-सा दिखाई देने लगता है। यह शक्ति प्रत्येक मनुष्य के भीतर है, जिसे वह योगाभ्यास के द्वारा विकसित कर सकता है। यह गुण पूज्यपाद लोकनाथ ब्रह्मचारी ने अर्जित किया था।

हठयोग के माध्यम से हरिदास साधु (राजा रणजीत सिंह के राज्य में) ने अद्भुत-शक्ति प्राप्त की थी। वे चालीस दिनों तक जमीन के भीतर समाधिस्थ रहे। ऊपर सशस्त्र पुलिस तथा सेना का पहरा था। वे अपने शरीर के किसी भी अंग को मनमाने ढंग से मोड़ लेते थे। यहाँ तक कि रबड़ की तरह खींच कर बढ़ा लेते रहे। लेकिन इससे परमार्थ की प्राप्ति नहीं होती। हठयोग के बाद उच्च-स्तर के साधक राजयोग करते हैं।

हठयोग से स्वास्थ्य बनता है, शरीर सबल होता है, पर आध्यात्मिकता प्राप्त नहीं होती। अगर सबल स्वास्थ्य से आध्यात्मिकता प्राप्त होती तो अनेक पहलवान तथा जंगली जानवर इसे अनायास प्राप्त कर लेते। राजयोग तक पहुँचने के लिए हठयोग सीढ़ी मात्र है। उच्च-स्तर के योगी इसे अपने सद्गुरु से प्राप्त करते हैं। सामान्य लोग उस स्तर तक नहीं पहुँच पाते। जब तक इन क्रियाओं का गुरु न मिले तब तक अधकचरे ज्ञानी या पुस्तकीय ज्ञान से यह सब क्रियाएँ नहीं करनी चाहिए वर्ना अनर्थ हो जाता है। लोग पागल तथा लकवे आदि के शिकार हो जाते हैं। जिस प्रकार हम बिजली के कार्यों को देखते हैं, पर उसे देख नहीं पाते, ठीक उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य में छिपी शक्ति है, जिसे अनुभवी गुरु के माध्यम से जाग्रत किया जा सकता है।

× × ×

ज्ञानगंज में वर्षों तक भोलानाथ और हरिपद योग और विज्ञान की शिक्षा अपने गुरुओं से प्राप्त करते रहे। परमहंस भृगुराम से योग, परमहंस श्यामानन्द से चन्द्र-विज्ञान, सूर्य-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, वायु-विज्ञान आदि की शिक्षा ग्रहण करते रहे। इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी के लिए पण्डित गोपीनाथ कविराज की 'श्री श्री विशुद्धानन्द प्रसंग' का अध्ययन आवश्यक है।

स्वयं महातपाजी ने इन दोनों बालकों के मस्तक पर हाथ रखकर शक्ति-संचार किया। बाद में दीक्षा देकर इन्हें बीजमन्त्र दिया। इस प्रकार दोनों को ही पूज्यपाद महातपा ने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया।

जिस विज्ञान की शिक्षा इन्हें यहाँ दी जाती रही, उसके बारे में पण्डित गोपीनाथ कविराज ने लिखा है—"यह विज्ञान पश्चिमी जड़-विज्ञान नहीं है, 'विशिष्ट-ज्ञान' की शिक्षा यहाँ दी जाती है। जिसे जड़ और चेतन कहा जाता है। सूर्य ही सभी विज्ञानों का मूल स्वरूप है। सृष्टि, स्थिति और संहार सूर्य के अधीन हैं। इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति और क्रिया-शक्ति का प्रसार सूर्य से ही होता है। योग का चरम उद्देश्य यही विज्ञान है। कहने का आशय यह है कि जिसे हम योग कहते हैं, वह भी एक प्रकार का विज्ञान है। केवल प्रणाली में भेद है। योग-मार्ग में विज्ञान और विज्ञान-मार्ग में योग एक-दूसरे के सहायक हैं। चन्द्र-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, वायु-विज्ञान, स्वर-विज्ञान, देव-विज्ञान आदि सौर-विज्ञान के अन्तर्गत खण्ड-विज्ञान मात्र हैं।"

भोलानाथ और हरिपद ने अपनी असाधारण प्रतिभा के माध्यम से सभी क्षेत्रों में सफलता प्राप्त की। इसके लिए उन्हें अक्लांत श्रम, असीम धैर्य और अध्यवसाय करना पड़ा था। इस प्रकार के संयोग कम सुनने में आये हैं। दोनों युवकों को लगातार १२ वर्ष तक कठोर तप करना पड़ा था।

जिस प्रकार जीवन में सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य, फिर गृहस्थ, बाद में प्रौढ़ और अन्त में वृद्धावस्था आती है, ठीक इसी प्रकार योगियों को पहले ब्रह्मचारी, बाद में दण्डी स्वामी बनना पड़ता है। चार साल दण्डी स्वामी रहने के बाद दोनों ने संन्यास ग्रहण किया। ब्रह्मचारी साधना से उन्नीत होते ही गुरुदेव ने भोलानाथ को आज्ञा दी कि भारत के सभी तीर्थों का दर्शन कर आओ। तीर्थ-दर्शन के कारण भोलानाथ में विशेष विकास हुआ।

कविराजजी को बाबा ने एक बार तपस्वी जीवन के बारे में कहा था—"जिन दिनों मैं गिरनार पर्वत पर था, उन दिनों तीन दिनों तक अनाहार था। पास में कहीं बस्ती नहीं थी, जहाँ से भीख माँग कर पेट भरता। ब्रह्मचारी को शरीर-रक्षा के लिए उत्कट पुरुषाकार अवैध है, इसीलिये आहार-संग्रह के लिये कहीं दूर नहीं जा सकता था। लाचारी में इष्ट मन्त्र जपते हुए गुफा के भीतर जाकर सो गया। मुझे लगा कि अब अनाहार के कारण मृत्यु अवश्य हो जायेगी। इसके कई कारण हैं। एक तो पथहीन घोर वनभूमि, जहाँ चारों ओर जंगली जानवर विचरण कर रहे हैं। ऐसे स्थान पर कोई पथिक भूलकर भी नहीं आयेगा। अगर कोई इधर आ भी गया तो उससे भीख माँगना व्यर्थ है। मैंने मन ही मन गुरुप्रदत्त इष्ट नाम जपना शुरू किया। थोड़ी ही देर में नींद आ गयी। जब मेरी आँखें खुलीं तब अपने सामने का दृश्य देख कर मैं आश्चर्यचकित रह गया। मैंने देखा—दस-पन्द्रह मिट्टी के बरतनों में नाना प्रकार के सुस्वादु भोजन रखे हुए हैं—खीर, चिउड़ा, लाई, तरह-तरह की मिठाई, फल, शरबत आदि यह सब

देखकर मैं जगदम्बा की कृपा समझ कर उन्हें मन ही मन स्मरण करते हुए अश्रुपात करने लगा।

संन्यास-जीवन समाप्त कर लेने के बाद गुरुदेव ने भोलानाथजी को घर जाने की आज्ञा दे दी। संन्यासियों को जीविका के लिए कोई कार्य नहीं करना चाहिए। जब यह प्रश्न गुरुदेव के सामने आया, तब उन्होंने भोलानाथ से कहा कि तुम जीविका के लिए चिकित्सा-कार्य कर सकते हो।

संन्यास-ग्रहण करने के बाद भोलानाथ ने अपना नाम विशुद्धानन्द रख लिया। वे ज्योतिष-विज्ञान के अच्छे ज्ञाता थे। उनसे चिकित्सा कराने के लिए जितने मरीज आते थे, सबसे पहले वे ज्योतिष-विज्ञान के जरिये यह जानकारी प्राप्त कर लेते थे कि रोग असाध्य तो नहीं है। अगर किसी रोगी की मृत्यु होने वाली होती तो उसका इलाज नहीं करते थे। रोगी भी समझ जाता था कि उसका रोग अब दूर नहीं होगा।

ज्योतिष-विज्ञान पर उनका असाधारण अधिकार था। एक बार एक सज्जन बाबा का दर्शन करने आये। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा—"बाबा, मैं सोच रहा हूँ कि एक बार आपको जन्मकुण्डली दिखाऊँ। अगली बार आऊँगा तो साथ ले आऊँगा।"

विशुद्धानन्द ने कहा—"तुम्हें जन्मकुण्डली लाने की जरूरत नहीं। तुम्हारी कुण्डली तो मेरी कापी में तैयार रखी है।"

इतना कहने के बाद स्वामीजी एक कापी खोल कर उन्हें दिखाने लगे। भक्त को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि जीवन में प्रथम बार मैं बाबा के पास आया हूँ, इन्हें मेरा नाम-धाम, जन्म-तिथि, राशि आदि की जानकारी कैसे हो गयी?

बाबा के शिष्य और डॉ० गोपीनाथ कविराज के घनिष्ठ मित्र डॉ० शोभाराम मेहता थे। इनके पुत्र डॉ० लक्ष्मणराम मेहता थे। पिता और पुत्र दोनों ही बाबा के शिष्य थे। एक बार कलकत्ता से चलते समय मुझे पता चला कि लक्ष्मणराम मेहता बाबा के आश्रम में जा रहे हैं। उन्होंने बाबा के बारे में अनेक कहानियाँ सुनाईं।

× × ×

एक बार विशुद्धानन्दजी गुस्करा से वर्धमान नगर में श्री उपेन्द्र चौधुरी के यहाँ आये। उपेन्द्र बाबू उन दिनों वहाँ पुलिस सब इंस्पेक्टर थे। इनका सबसे बड़ा अफसर था—आर०एफ० गाइज। वह बहुत ही कठोर प्रकृति का व्यक्ति था।

बातचीत के सिलसिले में बाबा ने एक दिन उपेन्द्र बाबू से कहा—"आज तुम्हें एक आश्चर्यजनक घटना दिखाऊँगा। सुना है कि तुम्हारा बड़ा अफसर तुमसे काफी नाराज रहता है। हर वक्त तुम्हारा अनिष्ट करने को सोचता है।"

उपेन्द्र बाबू ने मुरझाये हुए स्वर में कहा—"हाँ बाबा, मैं तो उससे इतना डरता हूँ कि उसके सामने जाने से कतराता हूँ, पर कभी-कभी लाचारी में जाना पड़ता है।"

बाबा ने कहा—"आज तुम एक काम करो। अपने प्रमोशन के लिए उसे एक आवेदन-पत्र दे दो।"

इतना सुनते ही उपेन्द्र बाबू ने कहा—"अरे बाप रे, तब तो वह मुझे जिन्दा ही कच्चा चबा डालेगा। यह मुझसे नहीं होगा।"

बाबा ने कहा—"डरने की कोई बात नहीं है। आज मेरे लिए थोड़ा-सा अपमान सह लेना। लेकिन अपना आवेदन-पत्र आज ही दे देना।"

अब गुरुदेव की आज्ञा मानने के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं था। उपेन्द्र बाबू आवेदन-पत्र अपने साथ लिखकर ले गये। आफिस के कागजों को पेश करने के बाद धीरे से अपना आवेदन-पत्र 'जय गुरु' कहकर सामने रख दिया। आवेदन-पत्र को लेकर साहब देर तक पढ़ते रहे। बाद में सिर झुका कर एक पेज में अपनी सम्मति लिखने के बाद उसे पढ़ कर सुनाया।

साहब की सम्मति सुनकर उपेन्द्र बाबू गद्‌गद हो उठे। साहब ने कहा—"तुम्हारे लिये डबल प्रमोशन की सिफारिश कर दी है। अगर इससे काम हो जाता है तो ठीक, वर्ना कुछ दिनों बाद मैं उस पोस्ट पर जाऊँगा, तब मैं स्वयं तुम्हें प्रमोशन दूँगा।"

उपेन्द्र बाबू के लिए यह एक अविश्वसनीय घटना थी। वस्तुतः बाबा आगमजानी थे। इस कार्य के लिए उन्होंने कोई चमत्कार नहीं किया था। महापुरुष जान-बूझ कर इच्छा-शक्ति का प्रयोग नहीं करते। इससे परमार्थ की हानि होती है।

इस बारे में एक बार बाबा ने अपने एक भक्त से कहा था—"विभूति-प्रदर्शन करके तुम लोगों की श्रद्धा जाग्रत करूँ या अपने ऐश्वर्य की तुम सब पर धाक़ जमाऊँ—यह मेरा उद्देश्य नहीं है। मैं केवल यही चाहता हूँ कि इसे देखकर शिष्य तथा भक्तगण महाशक्ति में, ईश्वर में, धर्म में, सन्तों में भक्ति-भावना रखें। वे धर्मपरायण हों, सन्मार्ग पर चलें। पूजा-पाठ करें। विभूति-प्रदर्शन करना एक प्रकार से अपराध है, क्योंकि जो लोग इसके अधिकारी नहीं हैं, उनके सामने प्रदर्शन करना पड़ता है।"

लोक-कल्याण के लिए योगी कभी-कभी योग-विभूति (चमत्कार) दिखाते हैं, परन्तु अपनी शक्ति दिखाने या किसी लाभ के लिए ऐसा नहीं करते। इससे उनकी शक्ति क्षय हो जाती है। इस सम्बन्ध में महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने लिखा है—"ऋषि और महापुरुषों के जीवन-चरित्र से यह ज्ञात होता है कि उनके जीवन में अनेक अलौकिक घटनाएँ हुई हैं। इन घटनाओं पर अविश्वास नहीं किया जा सकता। कहीं-कहीं साम्प्रदायिक या व्यक्तिगत कारणों से महापुरुषों का जीवन विकृत हो जाने पर भी सभी स्थानों में ऐसी बातें हुई हैं, ऐसा सोचना गलत होगा। फलतः इन

घटनाओं के कारण-निर्णय के बारे में इच्छा-शक्ति के प्रयोग की आशंका लोगों के मन में उदित हो सकती है। वस्तुत: यह बात नहीं है। जो वास्तव में योगी हैं, जो अपनी ऐसी इच्छा-शक्ति के साथ अपनी व्यक्तिगत इच्छा-शक्ति को संयत कर अभिमान-रहित हुए हैं, ऐसे योगी कभी स्वार्थ-साधना के लिए इच्छा-शक्ति का प्रयोग नहीं करते। ज्ञानी कभी परमार्थ की हानि कर स्वार्थ के प्रति आकृष्ट नहीं होते। एक जरूरी बात है। वे लोग अधिकांश समय परमात्मा के साथ युक्त रहते हैं। उस वक्त उनकी इच्छाएँ पृथक् नहीं होतीं। उस स्थिति में यदि उनमें इच्छा-शक्ति उत्पन्न होती है तो उसे ऐश्वरिक इच्छा समझना चाहिए। इसके निमित्त उनका कोई उत्तरदायित्त्व नहीं होता। क्योंकि उस स्थिति वे ऐश्वरिक-सत्ता के साथ अभेद-सम्बन्ध बनाये रखते हैं। लेकिन जब वे युक्तस्थिति में न रहकर, युंजानस्थिति में रहते हैं, उस समय क्षीण होने पर भी उनकी व्यक्तिगत इच्छा उभर सकती है।

गुरुवर विशुद्धानन्दजी के वर्धमान आश्रम के कुछ नियम हैं। इन नियमों का पालन कड़ाई से होता है। इन नियमों के निर्माता महागुरु भृगुराम परमहंस हैं। इन नियमों में एक नियम यह है—"किसी की कोई बीमारी या अन्य किसी बात पर इच्छा-शक्ति का प्रयोग मत करना। अगर तुमने ऐसा किया तो तुम्हारी क्रिया नष्ट हो जायेगी।"

कोई काम गलत ढंग से न हो, इसलिए ऐसे नियम बनाये गये हैं। इच्छा कामनाविशेष है। जिस प्रकार यह अध्यात्म-जगत् का सर्वप्रधान मित्र है, उसी प्रकार प्रधान शत्रु भी। परमार्थ के लिए जो भी कामना की जाय, वह मंगलकारी हो। विषय-कामना आदि सारे अनर्थों की जड़ है। परमार्थ के अलावा शेष सभी स्वार्थ है। यही विषय है। विषय की कामना उत्पन्न होते ही चित्त विषय के साथ सम्बन्धित हो जाता है, उसका कुछ अंश संलग्न रहता है, फलस्वरूप चित्त विक्षिप्त हो जाता है। लेकिन आत्म-कामना के कारण चित्त का विक्षेप दूर हो जाता है, एकाग्रता आती है, अन्त में चित्त निरुद्ध होकर विशुद्ध चैतन्य से साक्षात्कार करता है।

× × ×

सन् १९२९-३० की घटना है। कविराजजी की पत्नी सख्त बीमार हो गईं। गुरुभाई डॉ० शोभाराम का इलाज चलता रहा। इसके अलावा अन्य कई डॉक्टरों का इलाज हुआ पर लाभ नहीं हो रहा था। इसी बीच लोगों ने कविराजजी को सलाह दी—"आप अपने गुरुजी को पत्र क्यों नहीं लिखते?" उनकी आप पर कृपा है। अगर वे दया करें तो आपकी पत्नी अच्छी हो जायेंगी।"

कविराजजी इसके लिये तैयार नहीं हुए। ऐसे कर्मों के लिए वे गुरुदेव को कष्ट देना नहीं चाहते थे।

दूसरे दिन पत्नी का हालचाल पूछने के लिए ऊपर पत्नी के कमरे में आये तो

उसे पद्‌म-फूल की महक महसूस हुई। समझते देर न लगी कि गुरुदेव सूक्ष्म रूप में आये थे। गुरुदेव इस प्रकार जहाँ पहुँचते हैं, वहाँ इस प्रकार की गन्ध हवा में तैरती है। गुरुदेव की गन्ध पाकर कविराजजी ने जयगुरु कहकर प्रणाम किया। उसी दिन से पत्नी ठीक होने लगीं।

तीसरे दिन कविराजजी नीचे वाले कमरे में बैठे थे। अचानक घर के नौकर ने आकर सूचना दी कि माँ आपको ऊपर बुला रही हैं।

कविराजजी घबराये हुए ऊपर आये और पत्नी से पूछा—"क्या बात है? तबीयत तो ठीक है न?"

पत्नी ने कहा—"अभी कुछ देर पहले गुरुदेव यहाँ आये थे।"

कविराजजी ने पुनः पद्‌म-फूलों की महक महसूस करते हुए कहा—"गुरुदेव तो कल भी यहाँ आये थे तभी तो तुम स्वस्थ दिखाई दे रही हो। बहरहाल अपनी बात कहो।"

पत्नी ने कहा—"मैं बाथरूम से जब वापस आने लगी तब कमजोरी के कारण गिरने ही जा रही थी कि अचानक स्थूल शरीर में आकर गुरुदेव ने मुझे पकड़ लिया। उनकी दाढ़ी मेरे शरीर को स्पर्श करती रही। चलते समय दवा की दस गोलियाँ मुझे दे गये और खाने की विधि बता गये, पर मैं अत्यधिक प्रसन्नता के कारण सेवन विधि भूल गयी।"

कविराजजी ने कहा—"जब सेवन-विधि भूल गयी तब खाओगी कैसे? मैं गुरुदेव को पत्र लिख कर पूछ लूँगा।"

कुछ दिनों बात कविराजजी कलकत्ता गये। वहाँ बातचीत के सिलसिले में उन्होंने पूछा—"गुरुदेव, मेरी एक शंका का निवारण कर दीजिए। आप कलकत्ते में रहते हुए काशी कैसे पहुँच गये? वहाँ जाकर आपने मेरी पत्नी की प्राण-रक्षा की। एक साथ दोनों जगह रहना कैसे सम्भव हुआ?"

बाबा ने हँसते हुए कहा—"बहू बाथरूम में गिरने जा रही थी, ठीक उसी समय मैं मुँह धोने गया था। मैंने देखा कि बहू गिरने जा रही है, तब मैंने उसे सहारा दिया।"

कविराजजी ने कहा—"मैंने अपनी पत्नी की बीमारी के बारे में कोई समाचार नहीं भेजा, फिर भी आप ५०० मील दूर बैठे कैसे उसके बारे में जान गये?"

बाबा एक क्षण कविराजजी की ओर देखते रहे, फिर बोले—"तुमने योगी का अर्थ क्या समझा है? योगी का अर्थ है—अखण्ड सत्ता के साथ नित्ययुक्त होना। देश-काल या किसी अवस्था में वे अवरुद्ध नहीं होते। मैं इसी शरीर से सर्वत्र तथा सर्वकाल में वर्तमान रहता हूँ। काशी तक पहुँचने में कोई असुविधा नहीं होती।"

महायोगी विशुद्धानन्दजी से जब प्रथम बार कविराजजी मिलने गये तब परमहंसजी ने इनकी ओर देखते हुए पूछा—"क्या तुम्हें हार्ट की बीमारी थी? अभी तक तुम्हारे हार्ट को दुर्बल देख रहा हूँ।"

यह सन् १९१८ की घटना है, जब कि वे सन् १९१२ में पीड़ित हुए थे। डॉक्टर भी बिना स्टेथोस्कोप लगाये या बिना एक्सरे चित्र के हार्ट के बारे में इस तरह बता नहीं पाते।

थोड़ी देर बाद परमहंसजी ने कहा—"चिन्ता की बात नहीं, दीक्षा लेने के बाद यह ठीक हो जायेगा।"

दीक्षा लेने के बाद कविराजजी इस रोग से मुक्त हो गये थे। यह उन दिनों की घटना है, जिन दिनों परमहंसजी हनुमानघाट पर रहते थे। यहाँ एक बार एक विचित्र घटना हो गयी थी। बातचीत के सिलसिले में एक सज्जन ने कहा—"हमारे धार्मिक ग्रन्थों में इतनी कल्पित बातें लिखी गयी हैं कि उन पर आज के युग में विश्वास करना कठिन है। उदाहरण के लिये भगवान् विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति। अब कोई कैसे इस बात पर विश्वास कर सकता है?"

बाबा ने कहा—"देखो, जो बात तुम लोगों की बुद्धि के परे है, अगोचर है, उसे अस्वीकार नहीं करना चाहिए। अगर तुम लोग नाभि से कमल का निकलना देखना चाहते हो तो मैं अभी इसी जगह दिखा सकता हूँ।"

लोगों का कुतूहल देख कर बाबा मसनद के सहारे पलंग पर लेट गये। इसके बाद धीरे-धीरे अपनी नाभि पर हाथ फेरने लगे। लोगों ने आश्चर्य से देखा कि नाभि में एक गड्ढा बन गया। देखते ही देखते उसमें से लाल कमल निकला। उसके गन्ध से कक्ष गमकने लगा।

बाबा ने कहा—"इस वक्त सूर्य की रोशनी कम है, वर्ना यह कमल और बड़ा हो जाता।"

इसके बाद जिस प्रकार उनकी नाभि से कमल निकला था, ठीक उसी प्रकार धीरे-धीरे वह उसमें प्रवेश कर गया। बाबा ने कहा—"इस प्रकार नाभि में अनेक कमल हैं। हमारे धार्मिक ग्रन्थों में वर्णित बातें असत्य नहीं हैं।"

श्री रोहिणीकुमार चेल ने परमहंसजी से हुई पहली मुलाकात के बारे में लिखा है—"उन दिनों मैं कलकत्ता में रहता था। बहुत दिनों से मेरी इच्छा थी कि किसी सद्ब्राह्मण के चरणों का सहारा लूँ। साधु-संन्यासियों के प्रति मेरे मन में श्रद्धा नहीं थी। मैं कल्पना करता था कि ऐसे ब्राह्मण की शरण में जाऊँगा जो सन्ध्या-पूजा करते हों, आचारवान् और संयमी हों। अगर कभी इस तरह के पण्डित से मुलाकात हुई तो उन्हें अपना लूँगा।"

ठीक इन्हीं दिनों श्री मनीन्द्र भट्टाचार्य नामक एक सज्जन से मेरा परिचय हुआ। उनकी जबानी परमहंसजी के बारे में अद्भुत बातें मालूम हुई। उन्होंने बताया कि भोलानाथ बाबू अद्भुत व्यक्ति हैं। वे एक ही समय में हम लोगों के साथ ताश खेलते हैं और बारहदरी में बड़े-बूढ़ों के साथ बातचीत करते हैं।

इस प्रकार की कई घटनाएँ उन्होंने सुनाई। इन घटनाओं को सुनकर मेरा कुतूहल बढ़ गया और मैंने निश्चय किया कि इनका दर्शन अवश्य करूँगा। भट्टाचार्य महाशय से भोलानाथजी का पता लेकर मैंने गुस्करा के पते पर जवाबी तार भेजा। मैंने तार में लिखा था—"मैं श्री चरणों का दर्शन करना चाहता हूँ। अभी आऊँ या नहीं, कृपया सूचित करें।"

गुस्करा से उत्तर आया—"अभी नहीं।"

यह जवाब पाकर मैं निराश हो गया, पर मेरा हृदय उतावला हो उठा। मैं तुरन्त गुस्करा रवाना हो गया। वहाँ पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि बाबा इस समय क्रिया कर रहे हैं। कुछ देर बाद जब आप बाहर आये तब आपके शरीर से पद्म-फूलों की सुगान्ध निकल रही थी। दोनों आँखें लाल और अपूर्व ज्योतिर्मय मूर्ति थी। मैं उनके समीप जाकर बैठ गया।

मेरी ओर नजर पड़ते ही बाबा ने पूछा—"क्यों जी, कब आये?"

मैंने कहा—"अभी-अभी आ रहा हूँ। आपके निषेध करने पर भी मेरा मन नहीं माना और चला आया।"

इतना कहने के बाद मैंने अपने झोले से अपनी और पत्नी की जन्मकुण्डली निकाली।

बाबा ने पूछा—"क्या निकाल रहे हो?"

मैंने कहा—"जन्मकुण्डली।"

बाबा तुरन्त उठ कर भीतर गये और एक कापी लेकर वापस आये। मैंने आश्चर्य से देखा कि एक पृष्ठ पर मेरी पत्नी प्रभावती दासी का नाम, जन्मकाल और समस्त फल लिखा है।

मैंने विस्मय से पूछा—"आपको मेरा नाम कैसे मालूम हो गया? मेरी पत्नी का नाम आपने कैसे जान लिया? मैं यहाँ आऊँगा, यह आपने कैसे मालूम किया? मैं स्वयं ही नहीं जानता था कि आज मैं यहाँ आ सकूँगा। ऐसी हालत में आप मेरी जन्मतिथि कैसे जान गये?"

उन्होंने हँसकर कहा—"मैंने तुम्हें यहाँ आने को मना किया था। फिर भी तुम रवाना हो गये। जब यह बात मालूम हो गयी तब मैंने तुम दोनों की जन्मकुण्डली बना डाली। अब अपनी जन्मकुण्डली से मिलाकर जाँच लो।"

मैंने नक्षत्र-ग्रह सब कुछ मिलाया तो देखा कि सारी बातें ठीक हैं। केवल कुछ गलतियाँ थीं।

इस ओर बाबा का ध्यान आकर्षित करने पर उन्होंने कहा—"मेरी कुण्डली ठीक है। तुम्हारी कुण्डली में कई गलतियाँ हैं। अगर तुम्हारी कुण्डली वास्तव में ठीक होती तो तुम एक अवतार पुरुष होते। तुम्हारी कुण्डली में जो जन्म-समय लिखा है, अगर वह सही होता तो मैं स्वयं ही तुम्हारे पास आता। तुम मेरे पास न आते। यह विलक्षण समय है।"

गुरुदेव के एक शिष्य श्री मुनीन्द्रमोहन कविराज ने अपने गुरुभाई श्री सूरजप्रकाश मुशरानी के बारे में लिखा है—"मुशरानीजी एक बार सख्त बीमार पड़े। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया। मुशरानी के पिताजी ने व्याकुल होकर गुरुदेव को पत्र लिखा—"बाबा, बड़ी मुसीबत में हूँ। यदि मेरे घर आपका चरण-रज पड़े तो बड़ी कृपा होगी।" बाबा ने जवाब दिया—"अच्छा, देखा जायेगा।"

उसी रात को बाबा सूक्ष्म रूप से मुशरानी के घर गये। उनके आगमन से मुशरानी का घर पद्म-फूल की गन्ध से गमकने लगा। मुशरानी ने चीखते हुए कहा—"बाबा आ गये हैं पिताजी।"

घर के सभी लोग सूरजप्रकाश के कमरे में आये और पद्म-गन्ध महसूस की। दूसरे ही दिन से सूरजप्रकाश स्वस्थ होने लगा। पाँच-छह दिन बाद बिल्कुल ठीक हो गया। अपने बेटे को स्वस्थ होते देख मुशरान के पिताजी एक लिफाफे में पाँच सौ रुपये ले जाकर बाबा को देते हुए बोले—"ये रुपये ज्ञानगंज की कुमारी माताओं के भोजन के लिये हैं।"

उस समय वहाँ अनेक शिष्य उपस्थित थे। बाबा जिस आरामकुर्सी पर बैठे थे, उसी के हत्थल पर लिफाफा रखने के बाद तीन बार आघात किया। देखते ही देखते लिफाफा अदृश्य हो गया। पाँच मिनट के बाद खाली लिफाफा जमीन पर आ गिरा।

बाबा ने कहा—"तुम्हारा लिफाफा लौट आया। इसे घर ले जाओ।"

काशी के एक पण्डित को बाबा ने नाभि से कमल उत्पन्न करके दिखाया था। ठीक इसी प्रकार झालदा के एक शिष्य को बाबा ने महाभारतकाल में प्रचलित अग्निबाण का करिश्मा दिखाया था। बाबा के शिष्य उद्धवनारायण ने पूछा था—"बाबा, महाभारत में अग्निबाण-वायुबाण आदि के प्रयोग होते थे। क्या यह बात सही है?"

बाबा ने कहा—"बिल्कुल सही है। अगर देखना चाहते हो तो करके दिखा दूँ।"

अन्धे को क्या चाहिए—दो आँखें। उपस्थित लोग इस दृश्य को देखने के लिए तैयार हो गये। बाबा ने कहा—"ठीक है। सामने सरकण्डे के पौधे हैं। उनमें से तीन टुकड़े काट लाओ।"

तीन टुकड़ों में से एक को धनुष बनाया गया। बाबा ने कुछ मन्त्र पढ़े और वह धनुष देखते ही देखते धातु का बन गया। बाद में एक सरकण्डे को लेकर मन्त्र पढ़ा तो वह स्टील का तीर बन गया। बाबा ने कहा—"यह सामान्य तीर-कमान है। अब इसका कमाल देखो।"

धनुष पर बाण चढ़ा कर बाबा ने कुछ मन्त्र पढ़ा और फिर उसे सामने खड़े बरगद के पेड़ की ओर छोड़ दिया। क्षणमात्र में तीर बरगद के वृक्ष को छेदता हुआ उस पार निकल गया। तुरन्त वृक्ष में आग लग गयी।

बाबा ने कहा—"इस आग को तुम्हारा फायर ब्रिगेड पूरी शक्ति लगाकर भी बुझा नहीं सकता।"

इसके बाद तीसरा सरकण्डा लेकर उसे भी अभिमन्त्रित करके वृक्ष की ओर छोड़ा। देखते ही देखते पेड़ की आग बुझ गयी।

बाद में बाबा ने कुछ और मन्त्र पढ़े, जिसकी वजह से धनुष और छोड़े हुए दोनों बाण पुनः सरकण्डे के टुकड़े बन गये।

× × ×

ठीक इसी प्रकार की एक घटना वर्धमान में क्षेत्रगोपाल बनर्जी के साथ हुई थी। बनर्जी महोदय फलित ज्योतिष् के विद्वान् थे। वे अक्सर रानीगंज स्थित बाबा के निवासस्थान पर आते थे। बाबा का अपना निर्दिष्ट आसन था, जिस पर बैठ कर आगत शिष्यों और भक्तों को उपदेश देते और बातचीत करते थे। बनर्जी महोदय कुलीन ब्राह्मण थे और अपने को बाबा के समकक्ष मानते थे। फलतः उच्च आसन पर बैठने की आकांक्षा उनके मन में बराबर बनी रहती थी।

एक दिन वे आये और बाबा की बगल में बैठ गये। उस दिन बाबा ने कुछ नहीं कहा, पर दूसरे दिन बाबा के खाली आसन पर बैठने के लिए ज्योंही बढ़े, त्योंही बाबा ने अपने एक शिष्य को आदेश दिया कि इनके लिये अलग से एक आसन दे दो।

बाबा के इस व्यवहार से बनर्जी महोदय ने अपने को अपमानित अनुभव किया। उन्होंने प्रतिवाद करते हुए कहा—"बाबा, आप भी ब्राह्मण हैं और मैं भी। आपकी तरह मेरे भी अनेक शिष्य हैं। समाज में प्रतिष्ठा है। इसके अलावा मैं आपसे वय में बड़ा हूँ। आपका यह व्यवहार मेरे लिये अपमानजनक है।"

बाबा ने कहा—"बनर्जी महोदय, सच्चा ब्राह्मण कौन है, क्या इसे आप बता सकते हैं? अगर आप इसे जानते तो यह बात कदापि नहीं कहते। आप कुलपरम्परागत जन्मना ब्राह्मण हैं, उसी के अहंकार से पूर्ण हैं। वास्तविक ब्राह्मण में ब्रह्मतेज होता है। वह गुणातीत हो जाता है और उसे अन्यान्य गौरव तुच्छ-बोध होता है। स्वयं विष्णु भगवान् ने महर्षि भृगु के चरण-रज को वक्षःस्थल पर धारण किया था।"

बनर्जी बाबू ने कहा—"इस कलियुग में वैसे ब्राह्मण कहाँ हैं जो अपने ब्रह्मतेज से अग्नि प्रस्फुटित कर सकें?"

बाबा ने कहा—"आपका कहना ठीक है। लेकिन आप यह मत भूलिये कि संसार में ऐसे ब्राह्मण नहीं हैं?"

इतना कहने के साथ बाबा ने तिरछी नजर से बनर्जी बाबू की ओर देखा। बनर्जी बाबू ने जो चादर गले में डाल रखी थी, उसमें आग लग गयी। तुरन्त उसे उन्होंने फेंक दिया। देखते ही देखते वह चादर जल कर भस्म हो गयी। बाबा का यह तेज देखकर वे आश्चर्यचकित रह गये। तब बनर्जी बाबू ने अनुभव किया कि बाबा के कथन में कितनी सच्चाई है।

× × ×

एक दिन बाबा के कतिपय शिष्य बैठे थे। बातचीत के सिलसिले में चर्चा चल पड़ी कि सूर्य-विज्ञान के माध्यम से पदार्थों की जो सृष्टि होती है, वह आँखों का भ्रम है, जिसे सादे शब्दों में मायाजाल कहते हैं।

बाबा ने कहा—"सूर्य-रश्मियों में कितनी शक्ति है, इसका ज्ञान तुम लोगों को नहीं है। तुम लोगों ने केवल पढ़ना-लिखना सीखा है। अभी तुम्हारे सामने मैं प्रयोग करके दिखा सकता हूँ। किसी भी असम्भव को अविश्वास की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। पहले उसकी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।"

इतना कहकर बाबा ने थोड़ी-सी रूई मँगवाई। उस पर लेंस के सहारे सूर्य-रश्मि फेंकने लगे। देखते ही देखते रूई जमने लगी। लोगों ने चकित-भाव से देखा कि अन्ततः वह रूई लकड़ी के रूप में परिणत हो गई।

बाबा ने कहा—"यह तो एक पर्व हुआ। इसके बाद दूसरा पर्व दिखाऊँगा।"

सभी लोगों ने रूई से बनी लकड़ी के टुकड़े को देखा। बाद में बाबा ने पुनः लेंस का प्रकाश उस पर फेंका। इस बार लकड़ी का वह टुकड़ा सख्त पत्थर का टुकड़ा बन गया।

उपस्थित लोगों में अभयचरण सान्याल महोदय थे, जो स्थानीय क्वींस कालेज में अध्यापक थे। उन्होंने कहा—"बाबा, क्या आप यह पत्थर मुझे देने की कृपा करेंगे? मैं इसे अपनी प्रयोगशाला में ले जाकर जाँच करूँगा।"

बाबा ने कहा—"ले जाओ।"

बाबा ने अभयबाबू से कहा—"तुम योगबल या इच्छा-शक्ति का तत्व कुछ जानते हो? जो व्यक्ति इच्छा-शक्ति नहीं जानता, सूर्य-विज्ञान नहीं जानता, उसे चाहिए कि किसी भी बात पर अविश्वास न करे।"

ठीक इसी समय एक और शिष्य आ गया। बाबा ने एक फूल को लेकर उसे विभिन्न फूलों के रूप में बदलकर दिखाया। बाद में उसे भी पत्थर बनाकर दिखाया। पुनः उसी फूल की पंखुड़ियों को भिन्न-भिन्न फूलों की पंखुड़ियों के रूप में बनाकर दिखाया। एक ही फूल में एक गुलाब, दूसरा जवा, तीसरा कमल, चौथा चम्पा था। शेष अंश पत्थर था।

× × ×

इसी प्रकार एक संन्यासी महाशय के अभिमान को बाबा ने दूर किया था। उक्त संन्यासी महाशय के पास एक शिवलिंग था। वे साधकों के पास जाकर उनकी शक्ति-परीक्षा लेते थे। जब बाबा के पास आये तब बाबा ने उनके मनोभाव को भाँप लिया।

उनके हाथ से शिवलिंग लेकर बाबा ने उसे हाथ पर उछालते हुए तिरछी नजर से देखा। तुरन्त लिंग के कई टुकड़े हो गये। यह देखकर संन्यासी महोदय की आँखों से आँसू निकल पड़े।

बाबा ने पूछा—"क्या बात है? आप रोने क्यों लगे?"

संन्यासी ने कहा—"बाबा, यह शिवलिंग मेरा अपना नहीं था। दूसरे का था। अब उसे क्या जवाब दूँगा?"

बाबा हँसते हुए पुनः उन टुकड़ों को हवा में उछालने लगे। क्षणभर बाद पुनः वह शिवलिंग बन गया। बाबा की इस योग-शक्ति को देखकर संन्यासी महाशय पानी-पानी हो गये।

महायोगी जिस प्रकार अपनी इच्छानुसार सभी चीजों को प्रकट कर सकते हैं, ठीक उसी प्रकार सद्गुरु भी सब कुछ अपने भीतर उत्पन्न कर सकते हैं अर्थात् ईश्वर-भाव प्राप्त न होने तक सद्गुरु-भाव प्राप्त नहीं होता। महायोगी सद्गुरु होते हैं। कविराजजी ने अपने गुरुदेव की विभूति-प्रदर्शन के सम्बन्ध में एक अपूर्व उदाहरण दिया है—

"शरीर को इच्छानुसार संकुचित और प्रसारित कर पाने पर अणिमा, महिमादि सिद्धि अपने-आप आ जाती है। बाबा के शरीर में तीन-चार सौ स्फटिक के गोले हैं। मस्तक के भीतर बाणलिंग, शालिग्राम शिला, स्फटिक की बड़ी माला आदि हैं। आवश्यक होने पर उन्हें बाहर निकाल कर पुनः भीतर रख लेते थे। इस दृश्य को मैंने ही नहीं, अनेक लोगों ने देखा है। जप की माला मस्तक के भीतर रखने का नियम है, यह शास्त्रों में लिखा है, पर देखने का अवसर किसी को नहीं मिला है। मैंने बड़े-बड़े स्फटिक के गोलों को उन्हें अपने रोमकूप के भीतर घुसेड़ कर बाहर निकालते देखा है। कभी-कभी संकोच-प्रसारण के कारण दो-चार गोले बाहर छिटक जाते थे। छिटक कर बाहर गिरने वाले गोलों में तीव्र पद्म-गन्ध रहती थी। तीव्र रूप से योग-क्रिया करने से

शरीर के भीतर का ताप भयंकर रूप से बढ़ जाता है, उसे शान्त करने के लिए शीत स्पर्श स्फटिकों को शरीर के भीतर धारण करना पड़ता है। जब तक किरात-योगों में सक्षम न हो, तब तक ये गोले धारण नहीं किये जा सकते। इसे मैंने अपनी आँखों से देखा और समझा है।''

× × ×

कलकत्ता के महेन्द्रनाथ सरकार अपने युग के प्रसिद्ध डॉक्टर थे। परमहंस भगवान् रामकृष्ण से लेकर तत्कालीन अनेक योगी-महात्माओं से मिल चुके थे। अध्यात्म, दर्शन, योग के प्रति उनकी दिलचस्पी थी। सहसा उन्हें पता लगा कि गुस्करा में एक उच्च-कोटि के महात्मा रहते हैं जो महान् योगी पुरुष हैं। उनके बारे में कई अलौकिक कहानियाँ सुनने के बाद वे इस योगी से मिलने आये।

स्टेशन से सीधे परमहंस विशुद्धानन्दजी के घर पधारे। काफी देर तक बातचीत करने के बाद उन्हें विश्वास हो गया कि वास्तव में स्वामीजी ऊँचे दर्जे के साधक हैं।

बातचीत के सिलसिले में अतीन्द्रिय-शक्ति सम्पन्न योगिराज विशुद्धानन्द ने कहा—''मनुष्य के शरीर में कई द्वारों के अलावा अन्य अनेक द्वार हैं। हमारा प्रत्येक लोमकूप भी एक-एक द्वार है। इसे जनसामान्य नहीं देख पाते। केवल योगी पुरुष देखते हैं।''

डॉ० सरकार ने कहा—''क्या आप मुझे इन द्वारों को दिखा सकते हैं?''

परमहंसजी यह जान चुके थे कि डॉ० सरकार का यहाँ आने का उद्देश्य क्या है? यही वजह है कि उन्होंने इस प्रसंग को छेड़ा ताकि उनके मन की बात पूरी हो जाय। मुस्कराते हुए परमहंसजी ने कहा—''जरूर दिखा सकता हूँ। आप तैयार हैं?''

डॉक्टर सरकार ने कहा—''इसीलिये तो आया हूँ।''

''अच्छी बात है।''

इसके बाद परमहंसजी ने अपनी लीला प्रारम्भ की। दोनों हाथ मलने लगे। देखते ही देखते कई स्फटिक के दाने उनके हाथों में आ गये। उन दानों को उन्होंने अपने रोमकूपों में घुसेड़ना शुरू किया। इसके बाद उन स्थानों पर हाथ रगड़ने पर स्फटिक के दाने बाहर निकल आये।

यह दृश्य देखकर डॉ० सरकार विस्मय से अवाक् रह गये। इसके बाद परमहंसजी ने कपड़े का एक लम्बा टुकड़ा लेकर उसमें काफी मात्रा में घी चुपड़ा। उस कपड़े को मुँह के भीतर डालकर नाभि से निकालने लगे। स्वयं डॉक्टर ने उनकी नाभि से कपड़े को खींच कर निकाला—अपना सन्देह मिटाने के लिए।

सन् १९१७ ई० की घटना है। परमहंसजी के आसन के पास एक गुलाब का

फूल रखा था। उन्होंने पं० गोपीनाथ कविराजजी से पूछा—"यह फूल स्त्री है या पुरुष? इसमें किसका हिस्सा अधिक है?" इसके बाद उस फूल को उठाकर पुन: उन्होंने कहा—"यह स्त्री-पुष्प है। क्या तुम एक पुरुष-पुष्प ला सकते हो? अगर ले आओ तो तुम्हें एक नयी चीज दिखाऊँ।"

वहाँ अन्य कोई फूल नहीं था। कविराजजी ने कहा—"यहाँ तो नहीं है। आज्ञा दें तो बाहर से ले आऊँ।"

परमहंसजी ने कहा—"रहने दो। अब तुम एक काम करो। इस फूल की एक-एक पंखुड़ियाँ नोच कर शेष भाग मुझे दो।"

कविराजजी ने आज्ञा का पालन किया। परमहंसजी शून्य में फूल की गाँठ को दो बार हिलाकर बोले—"सूर्य-रश्मि से पुंबीज लेकर मैंने इसमें गर्भाधान कर दिया। अब इसे कोमल आवरण में रखना है। तुम अपनी मुट्ठी में रख लो। बाहर की ठंडी हवा इसे न लगने पाये।"

कविराजजी ने आज्ञा का पालन किया। थोड़ी देर बाद मुट्ठी खोलते ही वे अवाक् रह गये। उनकी मुट्ठी में पहले वाले गुलाब से दुगुने आकार का फूल मौजूद था।

× × ×

पुलिस अफसर उपेन्द्रनाथ चौधुरी को बाबा अध्यात्म की बातें सुना रहे थे—बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा—"जैसे तुम्हारे सामने जवाफूल है। क्या वास्तव में वह जवाफूल है?"

सामने एक पौधे में जवाफूल खिले हुए थे। उपेन्द्रनाथ ने कहा—"उसे तोड़ लाऊँ? देखिये, जवा है या नहीं।"

परमहंसजी ने हँस कर कहा—"ठीक है, ले आओ। देखो, क्या वह जवाफूल है?"

बड़े आत्मविश्वास के साथ उपेन्द्रबाबू जवाफूल के पौधे के पास आये। काफी देर से इस पौधे को देख रहे थे, जिसमें जवा के अनेक फूल खिले हुए हैं। हाथ बढ़ा कर उन्होंने एक फूल को तोड़ा और तभी उन्हें चकित रह जाना पड़ा। हाथ में जवा के बदले गुलाब का फूल था। अब तक वे इसी स्थान पर जवा के पौधे देख रहे थे और अब वहाँ गुलाब के पौधे नजर आ रहे हैं।

इधर परमहंसजी मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। उपेन्द्रनाथ जब पास आये तब उन्होंने कहा—"बात क्या है जानते हो? तुम्हारी आँखों का जो रंग है, वही तुम देख रहे हो। यही है गुण-वैषम्य का परिणाम। सूक्ष्म-सूक्ष्म परमाणु के मिश्रण से इस जगत् का निर्माण हुआ है। हमारी मानसिक वृत्तियाँ चित्त-सागर में तैरते हुए कायिक जीवों की

आँखों में कर्म रूप से प्रकट होकर किसी को आनन्द देती हैं तो किसी की अतृप्ति का कारण बनती है। यही है गुण-वैषम्य।''

उपेन्द्रनाथ ने पूछा—''आप सामने बैठे हैं, क्या यह भी झूठ है?''

परमहंसजी ने कहा—''मेरा अस्तित्व कहाँ है?''

सहसा उपेन्द्रनाथ ने देखा—परमहंसजी गायब हैं। अभी वे उनका पैर दबा रहे थे और क्षणभर में कहाँ गायब हो गये। तभी दरवाजे की ओर से भीतर प्रवेश करते हुए परमहंसजी ने कहा—''हुक्का तैयार कर।''

इस चमत्कार से उपेन्द्रनाथ अभिभूत हो उठे।

सहसा परमहंसजी ने कहा—''एक ब्रह्म ही सत्य है। तुम अपना कार्य ठीक-ठीक करते जाओ तभी धीरे-धीरे सारी बातें समझ सकोगे।''

इसी प्रकार वर्धमान जिले के मजिस्ट्रेट रमेशचन्द्र दत्त के साथ एक मजेदार घटना हुई थी। अपने जिले के एक योगी पुरुष के चमत्कार की कहानियाँ सुनकर उन्हें आजमाने के लिए आये। कहीं वह लोगों को मूर्ख तो नहीं बना रहा है?

एक दिन गुस्करा के अधिकारियों को सूचना मिली कि मजिस्ट्रेट साहब यहाँ अमुक दिन दौरे पर आ रहे हैं। खासकर वे बाबा विशुद्धानन्दजी से मुलाकात करेंगे। इस समाचार से सरकारी कर्मचारियों में नहीं, बल्कि स्थानीय भूस्वामियों में तहलका मच गया। मानों प्याली में तूफान आ गया। जिलाधीश का किस ढंग से स्वागत किया जाय, उन्हें कैसे बाबा के पास ले जाया जायेगा।

लोग परमहंसजी के पास जाकर कहने लगे—''जिलाधीश महोदय आपके यहाँ आ रहे हैं। आप उनके स्वागत के लिये तैयार रहें।''

परमहंसजी ने निस्पृह-भाव से कहा—''वे आ रहे हैं तो आयें। मुझे क्या लेना-देना है? जिलाधीश हैं तो तुम्हारे लिये हैं। मेरे लिये क्या हैं?''

बाबा के दो टूक जवाब को सुनकर सभी की बोलती बन्द हो गयी। इधर रमेशचन्द्र दत्त गुस्करा रवाना होने के पूर्व अपनी पत्नी को चुपचाप पाँच गिन्नी दे आये थे। उद्देश्य यह था कि परमहंसजी अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति से इस तथ्य को प्रकट कर सकते हैं या नहीं।

परमहंसजी से नाना प्रकार की बातें होती रहीं। इधर मन में उथल-पुथल हो रही थी कि मेरी कारसाजी का योगी ने अभी तक उल्लेख नहीं किया। जब उनसे नहीं रहा गया, तब रमेशचन्द्र ने कहा—''सुना है कि आप अक्सर योग-विभूति दिखाते हैं।''

परमहंसजी अन्तर्यामी थे। मुस्कराते हुए बोले—''आपने ठीक सुना है। जैसे तुम अपनी पत्नी के पास पाँच गिन्नी रख आये हो और यह सोच रहे हो कि योगीजी इस

रहस्य को बता क्यों नहीं रहे हैं। तुम्हारा ख्याल था कि मैं भण्ड साधु हूँ। मेरा भण्डा फोड़ने आये हो। क्या इसमें तुम्हें सफलता मिलेगी?''

जिलाधीश की हालत काटो तो खू नहीं जैसी स्थिति हो गयी। उन्हें स्वप्न में भी विश्वास नहीं था कि यह योगी इस तरह लोगों के सामने अपमानित करेगा। अगर इनकी अतीन्द्रिय-शक्ति से वे परिचित होते तो पहले से ही सावधानी बरतते। अब अविश्वास ने श्रद्धा का स्थान ले लिया और फिर उनसे सूर्य-विज्ञान पर चर्चा करने लगे।

इस तरह की घटनाएँ परमहंसजी के साथ एक-दो बार नहीं, अनेक बार हुई हैं। लोग आपकी अलौकिक-शक्ति पर विश्वास नहीं करते थे। ऐसे ही लोगों में चन्द्रशेखर काली और अक्षयकुमार दत्त थे। इन लोगों ने सुना कि सूर्य-रश्मि के सहारे नाना प्रकार के रत्न परमहंसजी बना लेते हैं। इस बात पर भला कौन विश्वास करता?

एक बार वे इस बात की जानकारी के लिए परमहंसजी के पास आये और चमत्कार दिखाने की प्रार्थना की। वहाँ उपस्थित अन्य भक्तों ने भी आग्रह किया।

परमहंसजी इस अनुरोध को टाल नहीं सके। एक लेन्स को लेकर खिड़की से आती सूर्य-किरण से एक विराट् प्रवाल बनाया। यह दृश्य सभी प्रत्यक्ष रूप से देख रहे थे, पर इन दोनों के शंकाकुल मन ने सोचा कि इसमें कोई हाथ की सफाई तो नहीं है। इस सोच के कारण अक्षय दत्त ने परमहंसजी के हाथ को दबाया।

परमहंसजी उसके मन की बात ताड़ गये और तुरन्त एक झापड़ उसके गाल पर मारते हुए कहा—''अविश्वासियों को समझाना कठिन नहीं होता। अब देखो, क्या करता हूँ।'' कहने के साथ ही अपने आसन से कुछ बालों को नोंचते हुए बोले—''अब मेरे हाथ की ओर देखो। अपने आसन से इन्हें नोचा है। अब इसे यौगिक-क्रिया के द्वारा मैं प्रवाल बनाऊँगा।''

इतना कहने के बाद उन्होंने उन बालों को मुट्ठी में बन्द कर लिया। मुट्ठी को खोलते ही देखा गया कि उनके हाथ में प्रवाल है।

प्रत्यक्ष रूप से इस क्रिया को देखने पर भी वे दोनों हाथ की सफाई समझते रहे। इस बात का अनुभव करने पर परमहंसजी बिस्तर पर लेट गये और अपने नाभि-द्वार को स्फीत करने लगे। पास ही रखे एक तकिये को उठा कर उन्होंने नाभि पर रखा। इसके बाद उसे धीरे-धीरे भीतर ढकेलने लगे। आधी तकिया पेट के भीतर चली गयी। इस दृश्य को देख कर दोनों अविश्वासी हैरान रह गये। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि यह मैजिक नहीं, यौगिक-क्रिया है।

× × ×

परमहंसजी के बड़े भाई भूतनाथ चटर्जी वर्धमान में अपना दवाखाना चलाते थे। कभी-कभी अपने छोटे भाई से मिलने के लिये चले आते थे। एक बार आये तो उन्होंने

परमहंसजी से कहा—"सुना है कि तुम बड़े शक्तिधर हो। अगर तुम मेरी एक आकांक्षा पूर्ण कर दो तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।"

परमहंसजी नीरव रह गये। यह देख कर भूतनाथजी ने कहा—"मैं कोई महत्वपूर्ण वस्तु नहीं माँग रहा हूँ। मेरी इच्छा है कि एक बार पिताजी के दर्शन हो जायँ। सुना है, जीव नित्य आत्मा अविनश्वर है। मेरा विश्वास है कि अगर तुम चाहोगे तो ऐसा कर सकते हो।"

परमहंसजी ने कहा—"दादा, तुम जो कह रहे हो, वह सत्य है। योग तथा विज्ञान के माध्यम से असम्भव कार्य भी सम्पन्न हो सकते हैं। व्यासदेव ने कुरुक्षेत्र-युद्ध के अन्त में शोकातुर गांधारी को परलोकवासी आत्माओं का दर्शन कराया था। योगी की अगर इच्छा हो तो वह ऐसा कर सकता है। लेकिन इससे क्या लाभ होगा? आपने जो रूप देखा है, अगर उसे एक बार पुनः देखेंगे तो अपने को सम्हाल नहीं सकेंगे। इससे अच्छा है कि जो हो गया, उसे जाने दें।"

भूतनाथ ने कहा—"मैं यह सब तर्क नहीं सुनना चाहता। मुझे एक बार दिखा सको तो दिखाओ।"

बड़े भाई का अनुरोध स्वीकार कर उन्होंने तैयारी की। एक कमरे में बिस्तर लगाया गया। उसी पर पिताजी प्रकट हुए। आवश्यक प्रश्नों के उत्तर भी दिये। पन्द्रह मिनट बाद वह मूर्ति गायब हो गयी। अपने पूज्य पिता को देख कर भूतनाथजी बेहोश होकर गिर पड़े।

परमहंसजी ने कहा—"मैंने पहले ही कहा था कि मृतात्मा को देखने पर अपने को सम्हालना कठिन हो जायेगा।"

× × ×

इस प्रकार की अनेक योग-विभूतियाँ विशुद्धानन्दजी के शिष्यों ने समय-समय पर प्रकाशित करायी हैं। आज भी ऐसे अनेक शिष्य हैं जो अपने गुरुदेव के पुण्य संस्मरण को सुनाया करते हैं। अधिकांश मूढ़ तथा भौतिकवादी असम्भव कहकर मजाक उड़ाते हैं। यह ठीक है कि योग-विभूति का प्रदर्शन केवल सिद्ध योगी ही करते हैं, साधक या महापुरुष नहीं।

इस सम्बन्ध में विशुद्धानन्दजी ने कहा है—जिसको लोग सामान्यतः योग-विभूति कहते हैं, वह योग में प्रतिष्ठित न होने तक प्रकाशित नहीं होती। लोहा जब गर्म होकर जलाने का सामर्थ्य-लाभ कर ले तभी उस जलाने की शक्ति को लोहे की विभूति कहा जा सकता है। विभूति परमेश्वर की स्वाभाविक-शक्ति का स्वरूप है। आवरण करने के साथ-साथ ही जीव को अपना परिचय ज्ञात हो जाता है। तब वह परमात्मा के साथ मुक्त होकर उसकी शक्ति का विकास करता है।

विभूति ऐसे नहीं आती, उसके लिये प्रयास करना पड़ता है। यद्यपि उसकी आकांक्षा नहीं करनी पड़ती। चित्त-शुद्धि तथा ज्ञान-उन्मेष के साथ वह अपने-आप प्रकट होने लगती है। रोग-मुक्त होने पर व्यक्ति के शरीर में पुनः शक्ति का संचार होने लगता है, ठीक इसी प्रकार अविद्या दूर होने पर आत्मशक्ति का स्फुरण होने लगता है, यही अविद्या-निवृत्ति का लक्षण है।

अनेक लोगों का विश्वास है कि योग कठिन होता है। यहाँ तक कि योग-साधना करते हुए कुछ लोग पागल हो गये हैं, कुछ लोगों की इन्द्रियाँ गड़बड़ हो गयी हैं। इसमें तनिक सन्देह नहीं कि योग कठिन अभ्यास है, पर सिद्ध योगी द्वारा निर्देश प्राप्त कर लेने पर वह अति सरल हो जाता है। इससे कोई हानि भी नहीं होती। पुस्तकों में वर्णित या अनाड़ियों द्वारा निर्देशित प्रणाली पर अभ्यास करने पर शारीरिक हानि अवश्य होती है। जो लोग योग के रहस्य तथा मानव-देह की उपादान-शक्ति का ठीक से अनुमान नहीं लगा पाते, उन्हें योग नहीं सिखाना चाहिए। योग्य शिक्षक आधार समझकर सारी क्रियाएँ कराता है जो सरल होता है और उससे कुछ हानि की सम्भावना नहीं रहती। यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि योग के बिना आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती। अन्य किसी कर्म के द्वारा यौगिक-क्रियाएँ उपलब्ध नहीं होतीं।

योग का स्थान किसी प्रकार का कर्म नहीं ले सकता। योग के अलावा अन्य किसी भी क्रिया से चित्त और देह की शुद्धि नहीं होती।

एक बार योगिराज विशुद्धानन्दजी से कविराजजी ने इस बारे में प्रश्न किया था—"योगियों को अपनी-अपनी शक्ति या योग-विभूति प्रकट करना उचित है या नहीं?"

विशुद्धानन्दजी ने कहा—"जो लोग शिक्षार्थी हैं एवं योगराज्य में उन्होंने हाल ही में प्रवेश किया है, उनके लिये योग-शक्ति या योग-विभूति का प्रदर्शन करना हानिकारक है। इससे आसक्ति या अहंकार में वृद्धि होती है। यहाँ तक कि अतिनिकटतम व्यक्ति को भी यह बात नहीं कहनी चाहिए, ताकि वे लोग योग-विभूति की बात जान सकें। जहाँ तक हो सके, योग-शक्ति या योग-सम्पत्ति गुप्त रखना उचित है। जो लोग सिद्धयोगी, अधिकारी की महाकृपा प्राप्त कर चुके हैं, उनके लिये नियम नहीं है, क्योंकि उनमें अहंकार नहीं होता और न इसकी सम्भावना रहती है। अपने लिये उस शक्ति की आवश्यकता सभी को नहीं होती। वह इसलिये कि वे महाकरुणा प्राप्त कर सभी पर विजय प्राप्त कर, अब तृप्ति का अनुभव कर रहे हैं। प्रथम प्रविष्ट तथा जिज्ञासा के लिए प्रदर्शन और अभ्यास आवश्यक होता है। दिखावा करने या इसकी क्रमधारा वस्तु के रहस्य को समझने के अलावा इसके कठिन तत्व में प्रवेश करना कठिन कार्य है। प्रथम प्रवेशार्थियों के लिए दृढ़ विश्वास स्थापना के निमित्त कुछ

दिखाना आवश्यक होता है। पहले पहल जिसे असम्भव समझा जाता है, वही आगे चलकर दुरूह या असम्भव प्रतीत नहीं होता। सिद्धयोगी के लिये कुछ भी असम्भव नहीं है। शक्ति के अधीन सब कुछ है, इसलिये शक्ति पर अधिकार रहने पर सब कुछ हो सकता है। जो अघट प्रतीत होता है, वह भी घटना के रूप में महाशक्ति के अधीन है। महाशक्ति के द्वारा ही सब चलायमान होते हैं। योग-मार्ग में उत्कर्षता प्राप्त करने के लिए शक्ति और सरल विश्वास में किसकी विशेष आवश्यकता होती है? योग-मार्ग में दोनों प्रकार के सिद्धान्तों की मीमांसा हुई है। पहली स्थिति में चित्त चंचल रहता है, इसलिये निष्ठा, विश्वास कैसे आ सकता है? प्रत्यक्ष-दर्शन एक बार नहीं, बार-बार विभिन्न अवस्था में करने को मनुष्य का मन होता है। ऊपर के स्तर में विश्वास ही प्रधान वस्तु है। प्रथम अवस्था में प्रत्यक्ष ज्ञान का होना आवश्यक है। जिससे विश्वास का आविर्भाव हो सके।''

कविराजजी ने पूछा—''योग-मार्ग में विभूतियों में भीतर कौन-सा श्रेष्ठ होता है?''

बाबा ने कहा—''इच्छा, ज्ञान और क्रिया यही तीनों श्रेष्ठ हैं। इनमें इच्छा-शक्ति सर्वोपरि स्थान प्राप्त कर चुकी है। ज्ञान-शक्ति प्राप्त होने के बाद अशेष और विशेष ज्ञान प्राप्त होता है अर्थात् सभी विषयों का ज्ञान हो जाता है—इसमें सन्देह नहीं। क्रिया-शक्ति के प्रभाव से सभी प्रकार के कर्तृत्व किये जा सकते हैं। मेरी इच्छा-शक्ति के प्रभाव से ही ज्ञान-शक्ति और क्रिया-शक्ति कार्य करती है। इच्छा-शक्ति प्राप्त होने के बाद, प्राकृतिक उपादानों को लेकर, ज्ञान-शक्ति और क्रिया-शक्ति कर्म कर सकती है। यही है विज्ञान। विज्ञान के अनेक भेद हैं—सूर्य-विज्ञान, चन्द्र-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, वायु-विज्ञान, समय-विज्ञान आदि। पर इच्छा-शक्ति विज्ञान नहीं है।''

विभूतियों के बारे में प्रश्न करने पर बाबा ने कहा—''बचपन में मैं विभूतियों की बातों पर विश्वास नहीं करता था। इस बारे में शास्त्रों में वर्णित बातों को काल्पनिक समझता था। किन्तु ज्ञानगंज जाने पर देखा कि वहाँ सब कुछ विचित्र है। लगा जैसे वह मायापुरी है। वहाँ क्या होता है और क्या नहीं होता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह सब शक्ति का चमत्कार देख कर उसे प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प मन में पैदा हो गया। जब वे शक्तियाँ मुझे मिल गयीं तब उन्हें लोगों को दिखाने का बड़ा भाव था और मैंने दिखाया भी। वह इसलिये कि उन्हें देख कर लोगों में यह विश्वास जगे कि हमारे शास्त्रों में लिखित बातें सत्य हैं। लेकिन अब कुछ भी दिखाने की इच्छा नहीं होती।''

× × ×

विशुद्धानन्दजी एक ओर योगी पुरुष थे तो दूसरी ओर चिकित्सक। साधना करते हुए वे तरह-तरह की सामग्री बनाते थे। इस बारे में कविराजजी ने लिखा है—''मैंने

बाबा को कीमती हीरे, नाना प्रकार की मणियाँ, मुक्ता, सन्देश, रसगुल्ला, कुनैन टेबलेट, गरी का तेल, गाय का घी, कार्बलिक एसिड, फिनायल, अंगूर, वेदान्त, कुंकुम, कर्पूर, ग्रेफाइट पत्थर, यूक्लिप्टस तेल, महाशंखवटिका, च्यवनप्राश, मकरध्वज आदि बनाते देखा है। वे रूई, फूल, पत्तों को पत्थर बना देते थे। सूर्य-रश्मि के माध्यम से वे मक्खी, गोजर, चमगादड़ बना देते थे।''

बाबा का कहना था—''अगर एक लोटा दूध गंगा के किसी तट पर गिरा दो तो दूसरे किसी घाट पर विश्लेषण करने पर वह दूध बाहर निकाला जा सकता है। इस दृष्टि से किसी वस्तु की स्वरूप-निवृत्ति नहीं होती। यही वजह है कि जब जीव ब्रह्मलोक या अन्यत्र कहीं चला जाता है, तब क्षमतावान् विज्ञानविद् उसे आकर्षित कर वापस बुला लेते हैं। सूर्य-विज्ञान पर अधिकार हो जाने पर सभी विज्ञान आसानी से समझा जा सकता है।''[१]

× × ×

पूज्यपाद गुरुदेव की आज्ञा से भोलानाथजी चिकित्सा का कार्य करने लगे। यहाँ आप आम लोगों में 'डॉक्टर बाबू' या 'भोलानाथ बाबू' के नाम से परिचित थे। आप एक महान् योगी हैं और आपमें अशेष प्रतिभा है, इसे कोई नहीं जानता था। भोलानाथजी इस ओर से सतर्क रहते थे और अपने को छिपा कर रखते थे। केवल अन्तरंग लोगों को आपके बारे में जानकारी थी।

गुस्करा वर्धमान जिले का एक गाँव है जो वर्धमान-क्यूल लूप लाइन के बीच शान्तिनिकेतन के पूर्व है। जिन दिनों आप गुस्करा में चिकित्सक के रूप में प्रसिद्ध हो रहे थे, उन्हीं दिनों माँ ने आग्रह किया कि वे विवाह कर लें।

माँ के इस आग्रह को सुनकर भोलानाथजी चिन्तित हो उठे। उनकी पहले से ही इच्छा थी कि जीविका के लिये कोई कार्य नहीं करूँगा। आजीवन साधना करूँगा। लेकिन गुरुदेव की आज्ञा से चिकित्सा कार्य करना पड़ रहा है। अब माँ ने यह झंझट उत्पन्न कर दी।

माँ के बार-बार आग्रह करने पर भोलानाथजी ने इस सम्बन्ध में गुरुदेव से राय लेना उपयुक्त समझा। गुरुदेव भोलानाथ के मातृ-प्रेम से अवगत थे। उन्होंने विवाह करने की अनुमति दे दी।

गुरुदेव सहज ही अनुमति दे देंगे, इस बात पर उन्हें विश्वास नहीं था। अब एक ओर माँ का आग्रह और दूसरी ओर गुरुदेव का आदेश। फलतः उन्होंने इन आदेशों को स्वीकार कर लिया।

---

१. 'सूर्य-विज्ञान' के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए पं० गोपीनाथ कविराज तथा श्री नन्दलाल गुप्त की बाबा पर लिखी पुस्तकें पढ़ना आवश्यक है।

यहाँ एक घटना का उल्लेख करना आवश्यक है। भोलानाथजी के सतीर्थ हरिपद को भी गुरुदेव ने विवाह करने की आज्ञा दी थी। लेकिन उन्होंने इस आदेश की अवहेलना की। नतीजा यह हुआ कि इतने दिनों की उनकी साधना, तपस्या नष्ट हो गयी। वे शक्ति-हीन हो गये। अपने को इस स्थिति में पाकर हरिपद बुरी तरह घबरा उठे। अपनी भूल के लिए बार-बार गुरु से क्षमा माँगते रहे, पर उन्हें ज्ञानगंज से क्षमा नहीं मिली।

वहाँ से उत्तर मिला—"हरिपद, तुम्हारा यह जन्म जरूर निष्फल हो गया, पर अगले जन्म में जरूर सफल होगे। अब धैर्यपूर्वक शेष जीवन व्यतीत करो।"

जब इस घटना की सूचना भोलानाथ को मिली तब वे सशंकित हो उठे। विवाह के बाद उन्होंने गुरुदेव से पूछा—"गुरुदेव, आपके आज्ञानुसार गृहस्थ-जीवन अपनाने जा रहा हूँ। कृपया मुझे यह बताइये कि इससे मेरी साधना या तपस्या में कोई विघ्न तो नहीं होगा?"

गुरुदेव ने कहा—"नहीं। तुम्हारी तपस्या में कभी कोई विघ्न नहीं आयेगा, बल्कि तुम उत्तरोत्तर उन्नति करोगे।"

विवाह के बाद भोलानाथ ने अपने नाम में 'तीर्थ' उपाधि ग्रहण की।

अब उनका दैनिक कार्यक्रम नियम से चलने लगा। प्रातःकाल उठ कर सबसे पहले क्रिया करते, बाद में टहलने निकल जाते। दस बजे भोजन के पश्चात् आगन्तुकों से वार्तालाप धर्म-चर्चा करते। कभी-कभी मरीज देखने बाहर चले जाते थे। सूर्यास्त के बाद कहीं नहीं जाते थे। उस समय एक कमरे में जाकर भीतर से दरवाजा बन्द कर साधना में लीन हो जाते थे। रातभर पूजा-गृह में समाधिस्थ रहते थे। जिस वक्त उस कमरे से निकलते थे, उनके शरीर से पद्म-पुष्पों की तीव्र गन्ध निकलती थी।

उस समय कोई उन्हें हवा करता तो कोई पैर दबाता था। बाहर बरामदे में रोगी, साधु, बालक और वृद्धों की भीड़ प्रतीक्षा में बैठी रहती। वहाँ आते ही प्रत्येक से पूछते—"कहो, कैसे हो?"

सभी अपनी बात कहते। बच्चे प्रसाद के लिए शोर मचाते। एक प्रकार से उस समय अजीब दृश्य उपस्थित हो जाता था।

विशुद्धानन्दजी को जब 'तीर्थ-स्वामी' की उपाधि प्राप्त हुई तब वे कठोर-साधना करने लगे। इनकी साधना से सन्तुष्ट होकर 'ज्ञानगंज' से इन्हें 'परमहंस' की उपाधि दी गयी। यद्यपि इसके लिए इम्तहान हुआ था। परीक्षक थे—स्वामी नीमानन्द परमहंस।

जब साधक परमात्मा की उपलब्धि कर लेता है, तब उसमें हंस से ऊपर परमहंस भाव का उन्मेष होता है। इस अवस्था तक पहुँचने पर सांसारिक द्वन्द्व नहीं रहता। निर्द्वन्द्व पद की प्राप्ति होती है। परमहंस-पद प्राप्त करते ही सारा अभिमान दूर हो जाता है। केवल एक बोध मात्र रहता है।

काशी में 'विशुद्धानन्द कानन' साधकों के लिए तीर्थस्थान है। यहाँ नवमुण्डी आसन है। ऊँचे दर्जे के साधक ही इस आसन पर बैठ कर साधना कर सकते हैं। साधारण व्यक्ति अगर भूल से उधर चला जाता है तो उसे झटका खाना पड़ता है। नवमुण्डी सिद्धासन पर केवल ज्ञानगंज के ब्रह्मचारी, भैरवी और सिद्ध साधक आकर पूजा करते हैं। सामान्य साधक वहाँ बैठ कर पूजा करने का साहस नहीं कर पाता। बाबा वहाँ क्रियाशील लोगों को लेकर बैठते थे। इस आसन के नीचे मनुष्य, वनमानुष, हाथी, शेर, बाघ, सियार, सजारू, बिल्ली और सर्प के मस्तक पड़े हुए हैं।

बाबा में एक खूबी यह थी कि वे स्वरचित गीत अक्सर रात को गाते थें। इसका उल्लेख उनके भक्त मुनीन्द्रमोहन कविराज तथा उपेन्द्र चौधरी ने किया है।

२७ आषाढ़, रविवार, सन् १९३७ के दिन इस महान् योगी ने कलकत्ता के भवानीपुर मुहल्ले में समाधि ले ली। आपके शरीरान्त के बाद भी अनेक भक्त आज तक आपका कृपा-प्रसाद प्राप्त करते आ रहे हैं।



भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

चौदह भाग, 7 जिल्द में

अजिल्द : प्रत्येक सौ रुपये, **सजिल्द :** प्रत्येक दो सौ पचास रुपये

भारत योगियों, संतों, साधकों और महात्माओं का देश है। देश के सभी भागों में अनेक योगी तथा संत हुए हैं जिन्होंने देश की चिन्तनधारा और जीवन को प्रभावित किया है। अपने चमत्कारी जीवन से जनमानस को चमत्कृत भी किया है। ऐसे योगियों का जीवन-चरित चौदह भागों (७ जिल्द) में प्रस्तुत किया गया है।

भाग : १-२ तंत्राचार्य सर्वानन्द, लोकनाथ ब्रह्मचारी, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी, वामा खेपा, परमहंस परमानन्द, संत ज्ञानेश्वर, संत नामदेव, संत रविदास, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस।

भाग : ३-४ योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी, महर्षि रमण, भूपेन्द्रनाथ सान्याल, योगी वरदाचरण, नारायण स्वामी, बाबा कीनाराम, तैलंग स्वामी, परमहंस रामकृष्ण ठाकुर, जगद्गुरु शंकराचार्य, सन्त एकनाथ।

भाग : ५-६ स्वामी रामानुजाचार्य, रामदास काठिया बाबा, राम ठाकुर, साधक रामप्रसाद, भूपतिनाथ मुखोपाध्याय, स्वामी भास्करानन्द, स्वामी सदानन्द सरस्वती, पवहारी बाबा, हरिहर बाबा, साईं बाबा, रणछोड़दास महाराज, अवधूत माधव पागला।

भाग : ७-८ किरणचन्द्र दरवेश, स्वामी अद्‌भुतानन्द (लाटू महाराज), भोलानन्द गिरि, तंत्राचार्य शिवचन्द्र विद्यार्णव, महायोगी गोरखनाथ, बालानन्द ब्रह्मचारी, प्रभु जगद्बन्धु, योगिराज गंभीरनाथ, ठाकुर अनुकूलचन्द्र, बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ, मोहनानन्द ब्रह्मचारी, कुलदानन्द ब्रह्मचारी, अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी, स्वामी प्रणवानन्द, बाबा लोटादास।

भाग : ९-१० भक्त नरसी मेहता, सन्त कबीरदास, नरोत्तम ठाकुर, श्रीम, स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ, सन्तदास बाबाजी, बिहारी बाबा, स्वामी उमानन्द, पाण्डिचेरी की श्रीमाँ, महानन्द गिरि, अन्नदा ठाकुर, परमहंस योगानन्द गिरि, साधु दुर्गाचरण नाग, निगमानन्द सरस्वती, नीब करौरी के बाबा, परमहंस पं० गणेशनारायण, अवधूत अमृतनाथ, देवराहा बाबा।

भाग : ११-१२ बालानंद ब्रह्मचारी, श्री भगवानदास बाबाजी, हंस बाबा अवधूत, महात्मा सुन्दरनाथजी, मौनी दिगम्बरजी, गोस्वामी श्यामानन्द, फरसी बाबा, भक्त लाला बाबू, श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी, नंगा बाबा, तिब्बती बाबा, गोस्वामी लोकनाथ, काष्ठ-जिह्वा स्वामी, रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, अवधूत नित्यानन्द।

भाग : १३-१४ श्री मधुसूदन सरस्वती, आचार्य रामानुज, आचार्य रामानन्द, अद्वैत आचार्य, चैतन्यदास बाबाजी, भक्त दादू, गुरुनानक देव, सिद्ध जयकृष्ण दास, शैवाचार्य अप्पर, साधक कमलाकान्त, राजा रामकृष्ण, यामुनाचार्य, आचार्य मध्व, स्वामी अभेदानन्द, भैरवी योगेश्वरी, सिद्धा परमेश्वरी बाई।

भारत की महान साधिकाएँ — विश्वनाथ मुखर्जी

पुरुष साधकों के साथ-साथ साधना के क्षेत्र में महिलाओं का योगदान कम नहीं है। प्रस्तुत संग्रह की सभी साधिकाएँ अपने-आप में अद्‌भुत हैं। चाहे वह **श्री माँ शारदामणि, गौरी माँ, दुर्गा माँ, गोपाल की माँ हों या श्री माँ आनन्दमयी, श्री सिद्धिमाता, शोभा माँ।** प्रत्येक की साधना अलग-अलग ढंग की है।

मूल्य : साठ रुपये

(1-2)

अनुराग प्रकाशन
विशालाक्षी भवन,
चौक, वाराणसी - 221001
Phone & Fax : **(0542) 2404282**
Shop at : **www.vvpbooks.com**

₹ 100.00
ISBN:978-81-89498-33-7

